139

शुष्क क्षेत्रों में सूखा प्रबन्धन नीति एवं आय उपार्जन

हरपाल सिंह
मनजीत सिंह
नन्दलाल व्यास
जबरदान कविया
प्रताप नारायण

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

शुष्क क्षेत्रों में सूखा प्रबन्धन नीति एवं आय उपार्जन

संकलन एवं सम्पादन

हरपाल सिंह

मनजीत सिंह

नन्दलाल व्यास

जबरदान कविया

प्रताप नारायण

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली)

प्रकाशक :
निदेशक
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
जोधपुर – 342 003

दिसम्बर, 2004

जिल्द के मुख पृष्ठ पर : सोनामुखी की खेती

जिल्द के मुख पृष्ठ पर बायीं ओर दर्शाये गये चित्र (ऊपर से नीचे)

1. ट्रैक्टर चलित छः कतारो वाला कूंड की ढ़लान पर बुवाई के लिये यंत्र
2. विशेष प्रकार की कूडों में वर्षा जल संग्रहण
3. फलों से लदा बेर वृक्ष
4. मेहंदी की फसल की कटाई के पारम्परिक औजार
5. कुमट वृक्ष से निकलता गोंद
6. ग्वार पाठा
7. खुम्बी की ढींगरी प्रजाति
8. सौर ऊर्जा आधारित बिजली से बूँद–बूँद सिचाई

जिल्द के अन्तिम पृष्ठ पर दायीं ओर दर्शाये गये चित्र (ऊपर से नीचे)

1. काजरी द्वारा विकसित उन्नत टांका
2. सौर ऊर्जा के प्रयोग से मोमबत्ती बनाना
3. बूँद–बूँद सिंचाई पद्धति
4. कैर के फलों की तुड़ाई
5. गौशाला में पशु प्रबंधन
6. धामण घास की उन्नत किस्म
7. खुम्बी उगाने का प्रशिक्षण लेती महिलाएँ
8. शुष्क क्षेत्रों में पाये जाने वाले फलों पर आधारित विभिन्न पेय एवं व्यंजन

मुद्रक :
एवरग्रीन प्रिन्टर्स
14–सी हैवी इण्डस्ट्रीयल एरिया
जोधपुर – 342 003

प्राक्कथन

मरुक्षेत्र के निवासी सदियों से सूखे की त्रासदी झेलते आये हैं और इन प्रतिकूल परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिए इस क्षेत्र के पूर्वजों ने उपलब्ध सीमित संसाधनों के उपयोग से सूखे से मुकाबले के विशिष्ट तरीके विकसित किए हैं। बढ़ती आबादी, बढ़ता पशुधन, ट्रैक्टरों की बाहुल्यता और शहरीकरण से यहाँ के संसाधनों पर निरन्तर दबाव बढ़ता जा रहा है। पश्चिमी राजस्थान में प्रति परिवार जोती जाने वाली भूमि पिछले पाँच दशकों में लगभग 58 प्रतिशत घटी है, यद्यपि कृषि के अंतर्गत लगभग 38 प्रतिशत भूमि अधिक जोती जा रही है, जो कि पड़त भूमि और चारागाहों को निरन्तर कृषि भूमि में परिवर्तन के कारण है। पिछले दशक में चारे में लगभग 30 प्रतिशत कमी आई है। ऊँट और भेड़ों की संख्या में कमी, जबकि भैंसों की संख्या में बढ़ोतरी हुई है। अधिक से अधिक उत्पादन की होड़ में मरुस्थलवासियों ने अधिक पानी चाहने वाली फसलें लेना शुरू कर दिया है। भूमि उपयोग में निरन्तर परिवर्तन हो रहा है, फलस्वरूप भूजल के अत्यधिक दोहन से पानी की ज्वलन्त समस्या खड़ी हो गई है, जो सूखे के समय भयंकर रूप धारण कर लेती है।

इस स्थिति में यह आवश्यक हो गया है कि हम पारम्परिक ज्ञान को वैज्ञानिक सोच के साथ मिलाकर इन बदलती परिस्थितियों का, विशेष रूप से सूखे का, मुकाबला करें। साथ–साथ यहाँ पर पाये जाने वाले कृषि उत्पादों में आवश्यक संवर्द्धन करें एवं विश्व के बदलते स्वरूप के अनुरूप यहाँ की फसलों और खेती में विभिन्नता लाएँ ताकि हम पैदावार में स्थिरता व आय में बढ़ोतरी ला सकें। इसके अलावा यह भी आवश्यक है कि हम अपने संसाधनों का सदुपयोग करके प्राकृतिक चक्र में स्थिरता लायें जिससे हमारी आने वाली पीढ़ियाँ हमारे ऊपर गर्व अनुभव कर सकें। इस प्रकाशन में संग्रहित सूखा प्रबन्धन नीति एवं आय उपार्जन से संबन्धित लेख उपरोक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने एवं वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा देने में बहुमूल्य साबित होगें।

मैं इस ज्ञानवर्धक प्रकाशन के संपादन के लिए डॉ. प्रताप नारायण, डॉ. हरपाल सिंह, डॉ. मनजीत सिंह, डॉ. नन्दलाल व्यास एवं श्री जबरदान कविया, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर एवं अन्य वैज्ञानिकों को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। इसमें प्रकाशित लेख बहुत सामयिक हैं'। आशा करता हूँ कि इस प्रकाशन में दर्शाये ज्ञान का मरुक्षेत्र के निवासी भरपूर उपयोग कर लाभान्वित होंगे।

(डॉ. एस.एल. मेहता)
राष्ट्रीय निदेशक
राष्ट्रीय कृषि तकनीकी परियोजना, नई दिल्ली

दिनांक : 28 सितम्बर, 2004

प्रस्तावना

मरु क्षेत्रों में सूखा कोई आश्चर्य नहीं परन्तु एक सत्य है। पश्चिमी राजस्थान में औसतन हर दो–तीन साल में से एक साल सूखा पड़ता है। सूखा पड़ने के समय पानी, चारा तथा खाद्यान्न की कमी तो होती ही है साथ ही आय की कमी से इनको खरीदने की क्षमता भी घट जाती है। मौसम पूर्वानुमान, वर्षा जल संग्रहण एवं जल के उचित उपयोग से सूखे का मुकाबला किया जा सकता है। विषम परिस्थितियों में आय उपार्जन सूखे से लडने की अद्‌भुत कला है। इस क्षेत्र में रह रहे जन–मानस ने जल संग्रहण एवं प्रबन्धन के कई तरीके जैसे, टांका, तलई, खड़ीन आदि निर्मित किये हैं। इन्ही परम्पराओं और इन पर किये गये शोध कार्यों को मिलाकर अकाल प्रबन्धन के लिये पानी, जो इस क्षेत्र की जीवन रेखा है, को प्रभावी तरीके से पर्याप्त मात्रा में एकत्रित करना व उपयोग करना आवश्यक है। इसी दिशा में जलग्रहण–क्षेत्र प्रबन्धन, नमी संरक्षण एवं फसल उत्पादन की तकनीकियाँ, बूँद–बूँद सिंचाई और उन्नत कृषि यंत्रों के बारे में विभिन्न शोध किये गये हैं । इन शोध कार्यों को पारम्परिक खेती के ज्ञान और विभिन्न स्रोतों से आय अर्जित कर सूखे से मुकाबले की उचित रणनीति तैयार की जा सकती है।

मरु क्षेत्रों में पशुधन आजीविका का मुख्य स्रोत रहा है। अकाल की स्थिति में चारे की कमी एक मुख्य समस्या बन जाती है। घास आधारित उपयुक्त कृषि पद्धति अपनाकर चारागाहों को विकसित एवं पुनर्जीवित करके और खेतों में बहुउपयोगी वृक्ष लगाकर तथा कम पानी से उत्पन्न होने वाली अथवा चारा देने वाली फसलों से इस समस्या को कम किया जा सकता है। वैज्ञानिक विधियों द्वारा चारे की पौष्टिकता बढ़ाई जा सकती है और कम्पोस्ट खाद, केंचुआ खाद आदि निर्मित की जा सकती है। अच्छी गुणवत्ता के चारे के साथ–साथ पशुओं की बीमारी के प्रबन्धन से मरु क्षेत्र के पशुधन को अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है।

सूखाकाल में जीवनयापन के लिए आय उपार्जन विभिन्न प्रकार से जैसे मजदूरी, हस्तकला, शासन के अनाज के बदले काम कार्यक्रम के अन्तर्गत मजदूरी आदि के द्वारा किया जाता है। इस तरह सूखा पड़ने के समय आय के अनगिनत स्रोत हैं और मरुस्थलवासी इन्ही आधारों पर सूखे से मुकाबला करते हैं। विश्व में बदलती परिस्थितियों को देखते हुए और मरुक्षेत्र की पादप सम्पदा के प्रभावी उपयोग के लिये खेती में विभिन्नता लाना आवश्यक हो गया है। मरुक्षेत्र में कई प्रकार के औषधीय पौधे पाये जाते हैं जिनकी खेती एक लाभकारी व्यवसाय सिद्ध हो सकती है। पिछले कुछ वर्षो में सोनामुखी का प्रचलन, गुग्गुल की ओर बढ़ता रूझान, मेहंदी की खेती का विस्तार इसके कुछ उदाहरणं है।

पारम्परिक खेती के अलावा अनेकों ऐसी क्रियाएं हैं जिन्हें अपनाकर अलग–अलग परिस्थितियों में आय अर्जित की जा सकती है । उन्नत बेर उद्यान विकास इसका एक मुख्य उदाहरण है। उचित फसल चक्र अपनाकर, कुमट के पेड़ों को उपचारित करके गोंद उत्पादन से, खरपतवारों की सही पहचान कर इन्हें औषधि के लिये एकत्रित करके, अथवा विलायती बबूल, जो इस क्षेत्र में बहुतायत में पाया जाता है, की लकड़ी, फलियां आदि के उपयोग से आय अर्जित की जा सकती है। विश्व भर में रसायनिक खादों और कीट नाशकों के उपयोग सीमित अथवा नहीं करने के लिये एक मुहिम चली है। हम जैविक खाद, कम्पोस्ट खाद और केंचुआ खाद तथा रसायनरहित कीट प्रबन्धन से खेती की उपज में मूल्य संवर्द्धन कर सकते हैं। सर्दी के मौसम में खुम्बी की खेती से और फल एवं सब्जियों के उचित परिरक्षणों से भी मूल्य संवर्द्धन किया जा सकता है। इसी प्रकार दूध के उचित उपयोग से कई उत्पाद बनाये जा सकते हैं।

ऊर्जा किसी भी कार्य के लिये जरूरी संसाधन है। मरुक्षेत्र में सौर ऊर्जा की बाहुल्यता है। इसके विभिन्न उपकरणों के सही उपयोग से मसाले एवं सब्जियों को सुखाने, अपने एवं पशुओं के आहार को पकाने आदि के कार्य में इस ऊर्जा का लाभ उठाया जा सकता है। सौर प्रकाश वोल्टीय उपकरण अपनाकर दूर दराज के गांवों में रोशनी और सिंचाई की जा सकती है। सौर ऊर्जा का उपयोग लघु उद्योगों जैसे मोमबत्ती बनाना, पॉलिश बनाना आदि में किया जा सकता है। राष्ट्रीय कृषि तकनीकी परियोजना के अन्तर्गत इन सभी विकल्पों के लिए 10–10 दिन के दो प्रशिक्षण केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में किये गये जिसमें 36 (20+16) किसानों को सूखे से लड़ने के व्यवहारिक ज्ञान को बतलाया गया और प्रमाणिक जानकारी दी गयी। यह प्रकाशन इन प्रशिक्षणों में दिये गये बहुमूल्य तकनीकों और आय अर्जित करने के स्रोतों का पाठ्यक्रम और व्यवहारिक ज्ञान का संकलन है। जो मरुस्थलवासियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

दिनांक : 16 दिसम्बर, 2004

लेखकगण

आभार

"शुष्क क्षेत्रों में सूखा प्रबन्धन नीति एवं आय उपार्जन" का प्रकाशन मरुक्षेत्र में स्थित विभिन्न शोध संस्थाओं में कार्यरत व सेवानिवृत वैज्ञानिकों एवं प्रगतिशील किसानों के अथक प्रयास व सहयोग से संभव हो पाया है। अतः लेखकगण इन सभी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

इस प्रकाशन का मुद्रण कृषि परिस्थिति प्रणाली निदेशक (शुष्क) के सहयोग एवं मार्गदर्शन से ही संभव हो पाया है। उन्ही के साथ कार्यरत डॉ. मोहम्मद शरफुद्दीन खान, प्रधान उत्पादन प्रणाली वैज्ञानिक के अथक प्रयास से इस पुस्तक के मुद्रण के लिए वित्तीय सहायता प्राप्त हो सकी, लेखक इनका हार्दिक धन्यवाद करते है और इस प्रकाशन के मुद्रण के लिए वित्तीय संसाधन उपलब्ध करवाने के लिए राष्ट्रीय कृषि तकनीकी परियोजना, नई दिल्ली के आभारी हैं।

डॉ. दिनेश चन्द्र ओझा, वरिष्ठ पुस्तकालय अधीक्षक, काजरी, डॉ. महावीर प्रसाद राजोरा, वरिष्ठ वैज्ञानिक विभाग चतुर्थ, काजरी को इस संग्रहण के दौरान दिये गये सहयोग के लिए लेखक कृतज्ञ हैं। श्रीमति मधुबाला चारण, सहायक निदेशक, राजभाषा, श्री नटवरलाल पुरोहित, आशुलिपिक एवं श्री अमित सिंह, तकनीशियन (टी–II–3) विभाग षष्टम और श्री करण सिंह, हिन्दी प्रकोष्ठ का इस पुस्तक में दिए गए सहयोग के लिए साधुवाद के पात्र हैं।

हरपाल सिंह
मनजीत सिंह
नन्दलाल व्यास
जबरदान कविया
प्रताप नारायण

विषय सूची

क्र.सं.	विवरण	पृ. सं.
I	**मौसम पूर्वानुमान, वर्षा जल संग्रहण, नमी संरक्षण एवं उपयोग**	
1.	जलवायु, मानसून एवं मौसम पूर्वानुमान रविशंकर सिंह एवं सुरेन्द्र पूनिया	1
2.	मरुक्षेत्र में जल प्रबन्धन द्वारा सूखे से निपटने की रणनीति प्रताप नारायण, जबरदान कविया एवं हरपाल सिंह	7
3.	रेगिस्तान में जलग्रहण क्षेत्र प्रबन्धन – एक अध्ययन मोहम्मद अल्लाउद्दीन खान	13
4.	बारानी खेती में नमी संरक्षण एवं फसल उत्पादन के उपाय रिद्ध करण बेनीवाल एवं राम पाल जांगिड़	19
5.	बूँद – बूँद सिंचाई पद्धति और दबाव तकनीक से सिंचाई अनिल कुमार सिंह एवं हरपाल सिंह	25
6.	सूखा प्रबन्धन हेतु उन्नत कृषि यंत्र हरपाल सिंह एवं दिनेश मिश्रा	29
7.	बिरानी बाड़ी : पश्चिमी राजस्थान में सीमित जल से तरबूज व खरबूजे की पारम्परिक खेती जबरदान कविया, नरेन्द्र देव यादव एवं हरपाल सिंह	33
II	**चारा उत्पादन एवं पशुधन प्रबन्धन**	
8	भू–उपयोग योजना : शुष्क क्षेत्रों हेतु एक घास आधारित कृषि पद्धति कालीचरण सिंह	37
9.	रेगिस्तान में चारागाह स्थापन तथा फसल, घास एवं वृक्षों की प्रजातियों का चयन एवं प्रबन्धन महावीर सिंह यादव एवं सन्तोष कुमार शर्मा	45
10.	चारे को अधिक पोषक बनाने की प्रक्रिया आशुतोष कुमार पटेल, सतीश कुमार कौशिश एवं तेजेन्द्र कुमार भाटी	53
11.	गौशाला और प्रव्रजन द्वारा पशुधन प्रबन्धन रतन लाल डागा	57

12. मरुक्षेत्र में पशुओं की बीमारियों के रोकथाम हेतु प्रबन्धन 65
बसन्त कुमार माथुर एवं आलोक चन्द माथुर

III औषधीय पौधे

13. बारानी क्षेत्रों में सोनामुखी की खेती 71
प्रहलाद राय कोठारी, मनजीत सिंह एवं अजीत सिंह शेखावत

14. पश्चिमी राजस्थान में मेहंदी की व्यवसायिक खेती 75
प्रनव कुमार राय, सज्जन सिंह राव एवं खेमचन्द

15. गुग्गुल – एक औषधीय पौध 79
सुभाष कुमार जिन्दल एवं मनजीत सिंह

16. औषधीय पौधों की खेती – एक लाभकारी व्यवसाय 83
सुरेश कुमार एवं फरजाना परवीन

IV बागवानी एवं अन्य क्रियाएँ

17. उन्नत बेर उद्यान विकास 87
पुरखा राम मेघवाल

18. शुष्क क्षेत्रों में पारम्परिक फसल–चक्र में उन्नत किस्मों का समावेश 91
जबरदान कविया एवं तेजेन्द्र कुमार भाटी

19. कुमट से गोंद उत्पादन 95
हामिद अली खान एवं लक्ष्मीनारायण हर्ष

20. खरपतवारों से आय उपार्जन 97
सुरेश कुमार एवं फरजाना परवीन

21. विलायती बबूल के उपयोग 101
जीवन चन्द्र तिवारी एवं लक्ष्मीनारायण हर्ष

22. कीट प्रबन्धन का रसायन रहित तरीका 107
सत्यवीर

V खुम्बी उत्पादन

23. खुम्बी – एक परिचय 111
मनजीत सिंह एवं नन्दलाल व्यास

24. खुम्बी के बीज का उत्पादन, भण्डारण एवं परिवहन 115
नन्दलाल व्यास एवं मनजीत सिंह

25. ढींगरी की खेती 119
मनजीत सिंह एवं नन्दलाल व्यास

26. ढींगरी की खेती का आर्थिक विश्लेषण 125
नन्दलाल व्यास

27. खुम्बी के विभिन्न व्यंजन 127
मनजीत सिंह एवं नन्दलाल व्यास

VI कटाई पश्चात् प्रौद्योगिकी प्रबन्धन

28. फल एवं सब्जियों का निर्जलीकरण द्वारा परिरक्षण 131
पुरखा राम मेघवाल

29. सूखे में आय उपार्जन के विकल्प – फल एवं सब्जी परिरक्षण 135
राज नाथ प्रसाद, अमतुल वारिस, सविता सिंघल एवं जबरदान कविया

30. प्याज भण्डारण की विधियाँ 147
हरपाल सिंह एवं जबरदान कविया

31. अनाज व दलहन के भण्डारण में नाशीकीटों से बचाव 153
महेन्द्र प्रताप सिंह

32. बकरी के दूध से दुग्ध उत्पाद बनाने की विधियाँ 159
मोहम्मद शरफुदीन खान

VII सौर ऊर्जा द्वारा सूखे से मुकाबला एवं आय उपार्जन

33. मसाले एवं सब्जियों को सौर शुष्कक में सुखाना 165
नवरत्न मल नाहर

34. सौर ऊर्जा आधारित विभिन्न उपकरण 169
पीयूष चन्द्र पाण्डे, नवरत्न मल नाहर एवं हरपाल सिंह

I मौसम पूर्वानुमान, वर्षा जल संग्रहण, नमी संरक्षण एवं उपयोग

1 जलवायु, मानसून एवं मौसम पूर्वानुमान

रविशंकर सिंह एवं सुरेन्द्र पूनिया

किसी स्थान विशेष की जलवायु उस स्थान पर पाये जाने वाली फसलों एवं खेती तथा पशुपालन से जुड़ी अनेकों गतिविधियों को निर्धारित करती है। स्थान विशेष की जलवायु तथा इसमें समय – समय पर होने वाले परिवर्तनों की अच्छी जानकारी ज्ञात रहने पर फसल उत्पादन एवं पशुपालन में काफी मदद मिलती है। मौसम की पूर्व जानकारी से कम लागत एवं समय में अच्छे एवं पौष्टिक अनाज का उत्पादन लिया जा सकता है तथा अनेकों बीमारियों एवं कीड़ों से फसलों को होने वाली क्षति में कमी लायी जा सकती है। राजस्थान के शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों की जलवायु एवं मौसम परिवर्तन की जानकारी यहाँ दी जा रही है।

जलवायु : दिन प्रतिदिन मौसम के लम्बी अवधि के योग से जलवायु बनती है अर्थात किसी स्थान विशेष के मौसम की औसत स्थिति को जलवायु कहा जाता है। जलवायु के निर्माण के लिये बहुत सारे तत्वों जैसे वर्षा, तापमान, आर्द्रता, वायुदाब, हवा की गति, धूप, सूर्य प्रकाश इत्यादि का योग आवश्यक है। इन तत्वों पर विभिन्न कारकों जैसे अंक्षाश, समुद्रतल से ऊँचाई, पर्वतों की स्थिती, समुद्र तट से दूरी, महासागरीय धाराऐं, वायु दिशा, मृदा एवं वनस्पति इत्यादि का प्रभाव पड़ता है।

वृष्टि : सामान्य तौर पर जब जल की वाष्प विभिन्न अवस्थाओं में संघनित हो जाती है तो उससे बादल, कुहरा, ओस, पाला, हिमपात, ओले और वर्षा आदि घटनाऐं वायुमण्डल में उत्पन्न होती हैं। परन्तु वातावरण में विद्यमान असंतुलन से वर्षा की मात्रा व इसकी तीव्रता, वितरण पद्धति एवं वर्षा के समय में अवांछनीय बदलाव हो रहा है। इससे एक तरफ तो जगह – जगह अनावृष्टि अर्थात वर्षा नहीं होने या कम होने से बार – बार सूखे एवं भूखमरी की स्थिति आ सकती है तथा वहीं दूसरी तरफ अतिवृष्टि एवं असमय वर्षा हो सकती है जिससे फसलों की उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है और नई – नई बीमारियों के फैलने का भय भी बना रहता है।

शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में पानी का अभाव रहता है अतः वर्षा का ज्यादा महत्व है। इन क्षेत्रों में वर्षा कम एवं अनियमित होती है। राजस्थान राज्य के जैसलमेर में सबसे कम, लगभग 190 मि.मी.

वर्षा होती है (तालिका 1.1)। बाड़मेर में 267, बीकानेर में 283, जोधपुर में 371, झुंझुनू में 389, पाली में 422, बिलाड़ा में 437, सीकर में 465, अजमेर में 542, बाली में 563, सिरोही में 598, टोंक में 623,जयपुर में 627 एवं उदयपुर में 638 वार्षिक औसत वर्षा होती है। 80 प्रतिशत से ज्यादा वर्षा मानसून के चार माह अर्थात जून, जुलाई, अगस्त एवं सितम्बर में ही हो जाती है। इन क्षेत्रों के तापमान में भी काफी उतार–चढ़ाव होता है। मई–जून के महीनों में अधिकतम तापमान 40 से 45 डिग्री सेल्सियस रहता है। इन क्षेत्रों में दिसम्बर–जनवरी माह में पाला पड़ने का भी डर रहता है क्योंकि तापमान गिरकर कभी–कभी शून्य के आसपास चला जाता है। मानसून के तीन–चार महीनों के अलावा वर्ष के शेष महीनों में वातावरण सामान्यतया शुष्क रहता है तथा आपेक्षिक आर्द्रता 20–35 प्रतिशत ही रहती है और हवा की गति भी अपेक्षाकृत तीव्र रहती है जिससे धूल भरी आँधियों का प्रकोप भी मानसून पूर्व काल में ज्यादा रहता है। इन सभी कारणों से वाष्पोत्सर्जन ज्यादा होने से इन महीनों में फसलों में बार–बार सिंचाई करना आवश्यक हो जाता है।

तालिका 1.1. पश्चिमी राजस्थान के विभिन्न जिलों की औसत वार्षिक वर्षा एवं मानसून काल (जून – सितम्बर) की वर्षा की स्थिति (1901 – 2003)

क्र.सं.	जिले का नाम	औसत वार्षिक वर्षा (मि.मी.)	मानसून काल की वर्षा, मि.मी. (जून – सितम्बर)
1.	बाड़मेर	267	241 (90)*
2.	बीकानेर	283	237 (84)
3.	चुरू	366	316(86)
4.	जैसलमेर	190	163 (86)
5.	जालोर	383	348 (91)
6.	जोधपुर	371	333 (90)
7.	झुंझुनू	389	329 (85)
8.	नागौर	355	295 (83)
9.	पाली	422	396 (94)
10.	श्रीगंगानगर	249	204 (82)
11.	सीकर	465	412 (89)
12.	हनुमानगढ़	231	178 (77)

* कोष्ठक में दिये गये आंकड़े मानसून काल मे हुई वर्षा को प्रतिशत में दर्शाते हैं।

तापमान : पौधों में होने वाली सभी शारीरिक क्रियात्मक प्रक्रियाओं के लिये उचित तापमान की आवश्यकता होती है। पौधों के अकुंरण से लेकर फसल पकने तक विभिन्न तापमानों का इसकी क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है। खरीफ की फसलों का 25 से 35 डिग्री सेल्सियस तथा रबी की फसलों का 15 से 25 डिग्री सेल्सियस के बीच तापमान रहने पर अच्छी वृद्धि होती है। इससे बहुत अधिक या कम तापमान होने पर फसलों की वृद्धि कम या रूक जाती है।

औद्योगिक विकास में तेजी के कारण पिछले एवं वर्तमान दशक में तापमान बढ़ने की दर में वृद्धि हुई है। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (काजरी), जोधपुर द्वारा किये गये एक अध्ययन के अनुसार राजस्थान में स्थित लूनी नदी के जल ग्रहण क्षेत्र में थोड़ा तापमान बढ़ने के संकेत मिल रहे हैं।

वायु : वायु की गति व दिशा का फसलों तथा कृषि कार्य पर भारी प्रभाव पड़ता है। यदि जनवरी – फरवरी माह में तेज हवा चले तो सरसों, गेहूँ, जौ इत्यादि फसलों के फूल झड़ जाते हैं तथा फसल के जमीन पर गिरने का डर रहता है। तेज हवा चलने से भूमि की नमी भी शीघ्र उड़ जाती है अतः नमी पूर्ति हेतु शीघ्र सिंचाई करनी पड़ती है।

मार्च, अप्रैल और मई के महीनों में गर्म (पश्चिम दिशा से) हवाओं का चलना बहुत उपयोगी रहता है लेकिन मार्च–अप्रैल में पुरवा हवा का चलना हानिकारक होता है क्योंकि इन हवाओं में नमी रहती है जो फसलों के पकने में बाधक होती है। मई–जून के महीनों में प्रायः आँधियाँ आ जाती हैं जिसके कारण खलिहान में रखी हुई फसल (लाण) एवं भूसा उड़ जाता है। कभी–कभी तेज हवाओं से खेत की ऊपरी सतह की मिट्टी उड़ जाती है जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति कम हो जाती है।

जुलाई–अगस्त–सितम्बर में हमारे देश में मानसूनी हवाओं का जोर रहता है। यह हवाएँ वर्षा करने में सहायक होती हैं और कृषि में इनका बड़ा ही योगदान एवं महत्व है।

मानसून : मानसून भारत उपमहाद्वीप में पाया जाने वाला एक विशेष प्रकार का तंत्र है। मानसून का आगमन होते ही किसी स्थान विशेष की हवा की दिशा में परिवर्तन हो जाता है। मानसूनी हवाओं में नमी की मात्रा अत्यधिक होने से तापमान में भी अचानक 5–10 डिग्री सेल्सियस की गिरावट आ जाती है (तालिका 1.2)। भारत की जलवायु पर दक्षिणी–पश्चिमी मानसूनी हवाओं का काफी प्रभाव पड़ता है। इसलिये भारतीय प्रायद्वीप की जलवायु को मानसूनी जलवायु के नाम से जाना जाता है। मानसूनी हवाएँ दक्षिणी गोलार्द्ध से चलकर हिन्दमहासागर को पार करते हुए उत्तरी गोलार्द्ध के भारतीय प्रायद्वीप तक पहुँचती हैं। चूंकि ये हवाएँ लम्बी समुद्री यात्रा करते हुए हमारे देश तक आती हैं अतः इन हवाओं में अत्यन्त नमी होती है जिसके फलस्वरूप बादल बनते हैं तथा वर्षा होती है।

मानसून शब्द की उत्पत्ति अरेबिक भाषा के मौसम शब्द से हुई। मानसून के आगमन की घटना निश्चित रूप से बहुत पुरानी बात है। मौसम वैज्ञानिकों ने कुछ वर्षों पहले मानसून की उत्पत्ति का कारण एवं संरचना का पता मालूम कर लिया है। मुख्यतः मानसून दक्षिणी गोलार्द्ध से आता है। भूमध्य रेखा को पार करते समय पृथ्वी के घूमने के कारण उत्तरी गोलार्द्ध में दक्षिण–पश्चिमी दिशा प्राप्त कर उत्तर–पश्चिम भारत एवं तिब्बती पठार की तरफ आकर्षित होता है। इसलिये मानसून के आने पर भारतीय प्रायद्वीप के ऊपर शुष्क एवं गर्म हवाओं का स्थान नमी से परिपूर्ण समुद्री हवाएँ ले लेती हैं। इस समुद्री मानसून हवा की ऊँचाई जमीन की सतह से 3 से 5 कि.मी. तक होती है।

तालिका 1.2. जोधपुर स्थित काजरी के प्रेक्षणशाला में मापे गये मौसम सम्बन्धी औसत आंकड़ें (1963–03)

क्र. सं.	माह	वर्षा, मि.मी.	वर्षा के दिन	तपमान, डिग्री सै.		हवा की गति, कि.मी. / घण्टा	आपेक्षित आद्रता, प्रतिशत		वाष्पो–र्त्सजन	सूर्य के चमकने की अवधि, घण्टा
				अधिकतम	न्यूनतम		प्रथम*	द्वितीय **		
1.	जनवरी	2.8	0.5	24.8	10.2	6.6	54	21	4.6	9.0
2.	फरवरी	4.0	0.6	27.8	12.2	6.3	50	18	6.0	9.3
3.	मार्च	3.5	0.4	33.3	17.6	6.7	39	14	8.8	9.3
4.	अप्रैल	8.1	0.6	38.1	22.6	7.8	36	12	12.2	9.9
5.	मई	14.8	1.1	41.0	26.3	10.9	49	17	14.8	10.1
6.	जून	35.6	2.3	39.8	27.7	13.3	65	30	13.5	9.2
7.	जुलाई	130.1	6.8	36.1	26.7	11.9	77	46	9.1	6.7
8.	अगस्त	121.4	7.0	34.2	24.8	9.2	82	53	6.8	6.8
9.	सितम्बर	45.5	2.9	35.2	23.7	6.6	75	40	7.2	9.1
10.	अक्टूबर	6.5	0.7	36.2	20.0	4.2	54	21	7.0	9.8
11.	नवम्बर	3.1	0.2	31.5	15.2	4.2	49	19	5.4	9.5
12.	दिसम्बर	1.0	0.1	26.9	11.3	5.3	53	21	4.5	9.1
औसत		376.4	23.3	33.8	19.9	7.8	57	26	8.3	9.0

*प्रातः 7.38 बजे **14.38 बजे

हिमालय पर्वत की ऊँची–ऊँची श्रृंखलाओं के कारण यह मानसून मध्य एशिया की ओर नहीं पहुँच पाता तथा भारतीय प्रायद्वीप में ही रहकर भ्रमण करते हुए दूर–दूर तक वर्षा करता हैं। अगर हिमालय पर्वत मौजूद नहीं होता तो भारतीय प्रायद्वीप का बहुत बड़ा भाग मानसूनी वर्षा से सदैव के लिये वंचित रह जाता।

मानसून संरचना की जानकारी हेतु मौसम के आंकड़े काफी सहायक होते हैं जो कि धरती एवं समुद्र की सतह के ऊपर वायुमण्डल में मापे एवं एकत्र किये जाते हैं। शुरू – शुरू में ऐसा समझा जाता था कि मानसून धरती की सतह पर घटने वाली मौसम सम्बन्धी घटनाओं से जुड़ा हुआ है परन्तु नई खोज के अनुसार इसका सम्बन्ध धरती के कांफी ऊपर वायुमण्डल में चलने वाली तेज हवाओं (जेट धाराओं) से भी है। गर्मी के दिनों में पाकिस्तान एवं राजस्थान के ऊपर जो हवा के कम दबाव का क्षेत्र होता है, मानसून के दिनों में और आगे बढ़कर सिन्धु एवं गंगा नदी के मैदानी इलाकों के ऊपर कायम हो जाता है। इस कम वायुदाब क्षेत्र को मानसून द्रोणिका (ट्रफ) कहते हैं। मानसून द्रोणिका जिस क्षेत्र के ऊपर से गुजरती है वहाँ अच्छी वर्षा होती है। यह मानसून द्रोणिका अपने अक्ष से घूमते रहने के कारण कभी उत्तर एवं कभी दक्षिण की ओर हो जाती है। अपने अक्ष से दक्षिण की ओर जाने पर देश के मुख्य भाग जैसे पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा, पंजाब एवं राजस्थान में अच्छी वर्षा करती है।

सम्पूर्ण भारत में मानसून : वर्षा का समय मुख्यतः जून से सितम्बर माह तक होता है। इस अवधि में दक्षिण से उत्तर एवं पूर्व से पश्चिम की ओर चलने पर कमी दर्ज की जाती है। पश्चिमी राजस्थान के थार मरुस्थल क्षेत्र के बाड़मेर एवं जैसलमेर जिलों में यह अवधि मुश्किल से दो महीने की होती है। मानसून काल में पूरे भारत वर्ष में औसत वर्षा 880 मि.मी. होती है जबकि पश्चिमी राजस्थान में केवल 280 मि.मी. ही होती है। अतः इससे ज्ञात होता है कि मानसूनी वर्षा का वितरण समान नहीं होता है। मानसून का आगमन एवं वापसी दोनों धीरे–धीरे होता है। पूरे प्रदेश में मानसून के फैलने में लगभग डेढ़ महीने का समय लग जाता है। राजस्थान के थार मरुस्थल में मानसून 15 जुलाई तक पहुँचता है तथा 15 सितम्बर से पहले ही पुनः लौटना प्रारम्भ कर देता है।

मौसम पूर्वानुमान : मौसम की परिस्थितियों को कुछ समय पहले बताना ही मौसम पूर्वानुमान कहलाता है। मौसम या वर्षा का पूर्वानुमान मुख्यतः तीन प्रकार का होता है –

कम अवधि का पूर्वानुमान : छोटी अवधि का पूर्वानुमान (24 से 48 घण्टे तक के लिये) ज्यादातर खेलकूद, पर्यटन, सड़क एवं जहाजरानी परिवहन सेवाओं के लिये महत्व रखता है तथा तूफानी मौसम से जान एवं माल के नुकसान को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इसके लिये भारत सरकार ने मौसम सम्बन्धी आंकड़े इकट्ठे करने हेतु देश में मौसम वैद्यशालाओं का जाल बिछा दिया है। इसके लिये अतिरिक्त मौसम उपग्रह भी पृथ्वी की कक्षा में भेजा है जो स्वचालित यंत्रों की सहायता से मौसम के मानचित्र तैयार करके पृथ्वी पर वैद्यशालाओं को भेजता रहता है। इसके आधार पर मौसम का पूर्वानुमान लगाना सरल हो गया है।

मध्यम अवधि मौसम पूर्वानुमान : मध्यम अवधि के पूर्वानुमान (3 से 10 दिन तक के लिये) की सहायता से कृषि से जुड़े अनेक कार्यों को सुचारू तरीके से करने में मदद मिलती है। मध्यावधि मौसम पूर्वानुमान द्वारा न केवल बाढ़ की स्थिति से निपटने में अपितु सिंचाई एवं बाढ़ की स्थिति से मुकाबले में भी सहायता मिलती है। भारतीय मौसम विज्ञान विभाग सन् 1945 से नियमित रूप से क्षेत्रीय स्तर पर भी किसानों के लिये मौसम बुलेटिन प्रतिदिन जारी करता है जिसे आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के माध्यम से प्रसारित एवं प्रचारित किया जाता है। इन मौसम सम्बन्धी बुलेटिनों में प्रत्येक जिले में उगाई जाने वाली फसलों के अनुसार सुझाव एवं मौसम सम्बन्धी भविष्यवाणियाँ दर्शायी जाती हैं।

सन् 1988 से राष्ट्रीय कृषि मौसम सुझाव पूर्वानुमान केन्द्र, नई दिल्ली से मध्यावधि का पूर्वानुमान देश के विभिन्न क्षेत्रों के लिये सप्ताह में दो बार जारी किया जाता है। इसके द्वारा जोधपुर एवं आसपास के क्षेत्रों के लिये मौसम की जानकारी काजरी, जोधपुर के द्वारा दी जाती है। मध्यम अवधि मौसम पूर्वानुमान की मदद से कृषि में होने वाले नुकसान को काफी कम किया जा सकता है जैसे बरसात पूर्वानुमान होने पर किसान सिंचाई बन्द कर सकते हैं जिससे ट्यूबवैल पर खर्च होने वाली बिजली, श्रम एवं पानी की बचत होगी। पाले की रोकथाम, कीटनाशकों का छिड़काव, खाद एवं उर्वरक देने में, पशुओं को गर्मी व सर्दी से बचाव आदि में पूर्वानुमान से मदद मिलती है।

खरीफ में फसलों को उर्वरक (नत्रजन) देते ही अगर भारी वर्षा होती है तो वह बहकर नष्ट हो जाती है व भूमि में जड़ों की पहुँच से दूर हो जाती है। अतः नत्रजन पौधों के काम नहीं आ पाती है। इस नुकसान को भी मौसम पूर्वानुमान के आधार पर कम किया जा सकता है।

लम्बी अवधि पूर्वानुमान : लम्बी अवधि के पूर्वानुमान (एक महीना एवं ऋतुकाल के लिये) से प्राकृतिक आपदाओं जैसे सूखे व बाढ़ से निपटने हेतु अग्रिम योजनाबद्ध तैयारी करने में मदद मिलती है। इसके आधार पर किसी स्थान विशेष के लिये फसलों का चुनाव भी कर सकते हैं।

भारत वर्ष का मौसम सम्बन्धी विज्ञान विभाग, लम्बी अवधि का पूर्वानुमान अप्रैल के तीसरे सप्ताह में आने वाले मानसून के लिये प्रति वर्ष जारी करता है। भारत में लम्बी अवधि की भविष्यवाणी मौसम विभागानुसार आठ नये तथ्यों पर निर्भर करती है जो कि विश्व के विभिन्न हिस्सों से ये आंकडें एकत्रित करके तैयार किये जाते हैं। इन तथ्यों में कुछ तथ्य जैसे अलनिनों की विगत एवं वर्तमान वर्ष में दशा, हिमालय पर्वत पर बर्फीले क्षेत्र का क्षेत्रफल आदि प्रमुख हैं। इनसे मानसूनी वर्षा का अच्छा सम्बन्ध देखा गया है।

मौसम पूर्वानुमान में वर्षा का पूर्वानुमान सबसे महत्वपूर्ण एवं चुनौतीपूर्ण कार्य है क्योंकि भारत वर्ष में कृषि कार्य वर्षा पर निर्भर करता है। इस प्रकार मौसम पूर्वानुमान सैद्धान्तिक होने के साथ – साथ व्यावहारिक भी है। इसका उपयोग कृषि के अलावा उद्योग धन्धों, नगर योजनाओं, भवन निर्माण, परिवहन, सैन्य विज्ञान, खेलकूद, पर्यटन, पर्वतारोहण, वानिकी, मानवीय सुख सुविधा, बीमारियों की रोकथाम आदि में भी किया जाने लगा है।

2

मरुक्षेत्र में जल प्रबन्धन द्वारा सूखे से निपटने की रणनीति

प्रताप नारायण, जबरदान कविया एवं हरपाल सिंह

भारतीय मरुक्षेत्र की सीमाएँ राजस्थान, हरियाणा, पंजाब तथा गुजरात राज्यों तक फैली हुई हैं। इसका अधिकांश क्षेत्र (61.8 प्रतिशत) केवल राजस्थान में है। इस क्षेत्र में वार्षिक औसत वर्षा मात्र 100 – 450 मि. मी. होती है, जिसकी अनिश्चितता बहुत अधिक (विचलन गुणांक 45 से 75 प्रतिशत) है। अधिक तापमान और तेज हवाएँ चलने से जलवायु गर्म रहती है तथा पानी का सन्तुलन हमेशा विपरीत बना रहता है। फसलों के उत्पादन के लिये मात्र 7–10 सप्ताह का समय ही मिलता है जिसमें कभी–कभी कुछ फसलें जैसे बाजरा, मूंग, मोठ, ग्वार आदि हो जाती हैं अन्यथा मरुक्षेत्र में मनुष्य एवं पशु घासों और पेड़ों पर निर्भर रहते हैं। यही कारण है कि पशुधन और मरु वनस्पति ही यहाँ के जीवन का आधार है।

मरुस्थल में जल का धरातल अधिक गहरा है और अधिकांशतः पानी खारा व पीने योग्य नहीं है। जल का संकट बीकानेर, जैसलमेर व बाड़मेर जिलों में ज्यादा रहता है। इन क्षेत्रों में भूमिगत जल को संचय करने के अनूठे उपाय अपनाये जाते रहे हैं जैसे कोठा (चौरस हौद), कूँड़ियाँ व खेली जिनमें पानी भरकर वितरित किया जाता था। थार रेगिस्तान का बहुत बड़ा भाग हमेशा ही बरसात के पानी पर निर्भर होने के कारण वर्षा जल सग्रंहण के विभिन्न तरीके अपनाये जाते रहे हैं जैसे टांका, तलई, नाडा–नाडियाँ, तालाब, खड़ीन, सागर, समंद आदि जो शनै–शनैः इन जिलों की संस्कृति से ही जुड़ गये। भौगोलिक स्थिति, भूमि की संरचना, वर्षा की मात्रा तथा जल ग्रहण क्षेत्र के आकार के अनुसार स्रोतों का आकार निर्भर करता है। कम वर्षा के क्षेत्रों में जैसे जैसलमेर (200 मि. मी. वार्षिक औसत वर्षा) में टांका, नाडी और खड़ीन का प्रचलन है। खड़ीन उसी स्थान पर सम्भव है जहाँ जल ग्रहण क्षेत्र बड़ा तथा पथरीला हो ताकि वर्षा जल स्वबहाव के रूप में किसी बाँध के माध्यम से निचले स्थान में रोका जा सके और ढालू पानी की आवक वाले क्षेत्र पर वर्षा आधारित खेती की जा सके। पश्चिमी राजस्थान में पीने के पानी की पूर्ति 42 प्रतिशत नाड़ी द्वारा, 35 प्रतिशत टांकों से, 15 प्रतिशत कुंओं से तथा 8 प्रतिशत दूसरे अन्य स्त्रोतों से पूरी की जाती है।

तलई

तलई बरसात के जल का संग्रहण करने का एक बहुत ही अच्छा व सदियों पुराना पारम्परिक तरीका है। तलई बीकानेर संभाग के लाड़नूँ, सुजानगढ़, रामगढ़ तथा चुरू क्षेत्रों में बहुतायत में हैं। तलई गाँव/शहर से थोड़ा दूर हटकर खेत में या सामूहिक जगह पर बनाते हैं। तलई लगभग 2–3 मीटर

तक गहरी होती है जिसकी खुदाई के समय निकलने वाली मिट्टी व मुर्रम बांध बनाने और उसके चारों तरफ फैलाकर जल ग्रहण क्षेत्र (आगोर) के निर्माण में काम आती है। यह जल ग्रहण क्षेत्र तलई के चारों ओर, तीन तरफ या फिर एक तरफ भी हो सकता है। अतः तलई खोदते समय जगह का चयन इस प्रकार किया जाता है कि तलई में पानी की आवक में कोई रुकावट न आये। जल ग्रहण क्षेत्र का ढ़लान इस प्रकार रखते हैं कि मिट्टी या मुर्रम पानी के साथ बहकर तलई में नहीं आ पाये। इसकी दीवारों की चुनाई ईंट तथा पत्थर, सीमेन्ट या खड़िया द्वारा की जाती है। तलई के पेंदे को भी ईंट या पत्थर द्वारा बनाया जाता है तथा उस पर सीमेन्ट व बालू या चूने की लिपाई करके जल का रिसाव रोका जाता है। जल ग्रहण क्षेत्र से तलई में पानी आने के लिये दीवारों में छिद्र (द्वार) रखे जाते हैं। तलई के पानी का उपयोग करने के लिये सीढ़ियाँ बनाई जाती हैं और पशुओं द्वारा पानी निकालने के लिये एक तरफ पक्की रपट बनाते हैं। तलई निजी हो या सामूहिक, इसकी सफाई का विशेष ध्यान रखा जाता है। पानी के साथ बहकर तलई में चली गई मिट्टी को सूखने पर बाहर निकाल दिया जाता है।

तलईयों का पानी ज्यादातर पशुओं और मनुष्यों के उपयोग में आता है तलई के पानी को ऊँट, बैल व ट्रैक्टर आदि में लादकर घर के टांकों में भी संचय किया जाता है।

बीकानेर जिले के देशनोक कस्बे में भूतपूर्व महाराजा श्री गंगासिंह जी द्वारा निर्मित टाट तलई एक धरोहर के रूप में सुरक्षित है जिसकी लम्बाई व चौड़ाई 62.5 मीटर तथा गहराई 2.1 मीटर है। तलई तीन दिशाओं में लगभग 1 मीटर ऊँची दीवार से घिरी है तथा इसका क्षेत्रफल लगभग 1 एकड़ है और जल संग्रहण क्षमता लगभग 82 लाख लीटर है।

नाडे, नाडियों तथा तालाबों में जल संग्रहण

नाडों व नाडियों में जल संग्रहण कम समय के उपयोग के लिये किया जाता है। इनका निर्माण खेतों में इस प्रकार किया जाता है कि किसान वर्षा के मौसम में खेती करते समय इस संग्रहित जल का उपयोग पशुओं के लिए कर सकें।

चारागाहों, पड़ती व गोचर भूमि में, खेतों में, पथरीली जगहों या कई पहाड़ियों के आस–पास भराव की जगह को थोड़ा गहरा करके व उसकी मेड़ बांधकर वर्षा के पानी का संग्रहण मरुस्थल के प्रायः सभी गाँवों में प्रचलित रहा है (चित्र 2.1)। नाडे के आस–पास पेड़ पौधे पनपने से पशुओं को पीने के पानी के साथ–साथ गर्मी से भी राहत मिलती है और पानी का वाष्पीकरण रुकता है।

नाडी का आकार नाडों से थोड़ा बड़ा होता है। नाडी की गहराई 6–8 मीटर तक हो सकती है। नाडी के तीनों ओर ऊँचा बांध बना दिया जाता है। नाडी के जल संग्रहण के लिये आगोर (जल संग्रहण क्षेत्र) 10 से 100 हैक्टर तक हो सकता है (चित्र 2.2)। नाडियाँ प्रायः ढ़लान में, जहाँ से पानी

चित्र 2.1. जोधपुर तहसील के झंवर गॉव का कडुम्बा नाडा

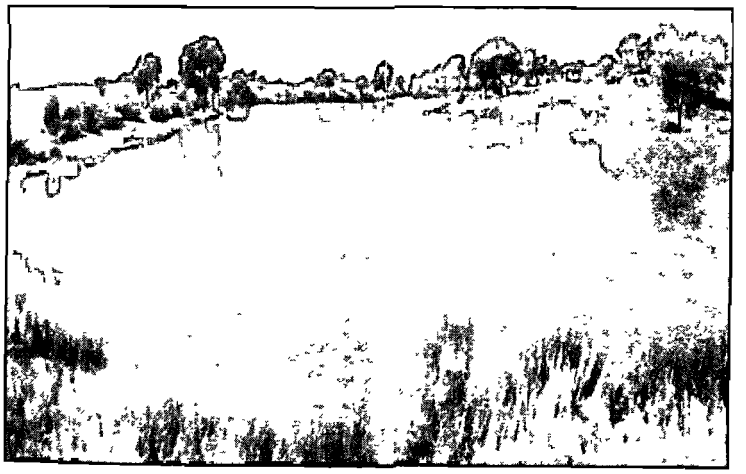

चित्र 2.2. भाटेलाई चारणा गाँव की प्रसिद्ध नाडी

निकलता है, वहॉ बनाई जाती हैं। नाडी के भरने पर फालतू पानी को निकालने का प्रावधान रखा जाता है जिससे पाल (बॉध) क्षतिग्रस्त न हो।

नाडियों मे जल ग्रहण क्षेत्र से पानी के साथ बहकर आई मिट्टी को ग्रामवासी श्रमदान करके पाल (बॉध) पर डाल देते है और नाडी की भराव क्षमता को कायम रखते है। जल की स्वच्छता बनाये रखने के लिये जल ग्रहण क्षेत्र मे किसी प्रकार की गन्दगी करना अपराध माना जाता है। नाडी मे अन्दर स्नान करना वर्जित है। नाडियॉ जोधपुर सभाग मे अधिक लोकप्रिय है ।

तालाब नाडी की अपेक्षा और अधिक क्षेत्र में फैला हुआ रहता है तथा कम गहराई वाला होता है। पहाड़ों से बहकर आया पानी तलहटी में आकर फैलाव ले लेता है। तालाब का पाल (बांध) चौड़ा होता है। कई जगहों पर पाल स्थानीय पत्थरों की सहायता से पक्की बनाई गयी है। तालाब नागौर जिले में अधिक लोकप्रिय हैं। नागौर जिले में हल्की मटियाली दोमट मिट्टी पाई जाती है तथा जमीन के नीचे मुर्रम ज्यादा होने से जल का रिसाव कम होता है। गोंवा – जोधड़ास के तालाब का जल संग्रहण क्षेत्र 800 हैक्टर है। जो कि पिछले 500 वर्षों में कभी भी सूखा नहीं है।

सर, सागर, समंद में वर्षा जल का संग्रहण

थार मरुस्थल के कुछ जिलों में वर्षा जल का संग्रहण करने के लिये सर, सागर व समंद प्रचलित हैं जिनका निर्माण राजाओं के शासन काल में ही हुआ। इसलिये इनका नामकरण भी राजाओं या उनसे जुड़े हुए लोगों के नाम पर ही हुआ। इन सर, सागर व समंदों की पाल पर राजाओं के रहने के लिये विशेष महल बने हैं। ये महल गर्मियों में ठण्डे व सुरक्षित माने जाते हैं। जैसे जोधपुर में पदमसर, रानीसर तथा जोधपुर शहर में ही गुलाबसागर, बालसमंद (चित्र 2.3) आदि तथा पाली जिले में सरदार समंद, बाँकली तथा जवाई बांध वर्षा के पानी का संग्रहण करने के जीवन्त उदाहरण हैं। सर, सागर तथा समंदों के पानी को पीने के अलावा खेती में भी प्रयोग में लिया जाता है।

टांका

मरुस्थल में टांकों का प्रचलन सर्वाधिक व बहुत पुराने काल से होता रहा है। टांकों का निर्माण खेतों, घरों, गढ़ों व किलों में बरसात के जल के संग्रहण के लिये किया जाता रहा है। इनका प्रचलन बीकानेर, बाड़मेर व जोधपुर संभाग में अधिक रहा है। खेत में टांका ढलान पर व घरों के पास ऊँची जगह पर बनाया जाता है जिससे पानी आसानी से टांके में जा सके और आस–पास का गंदा पानी उसमें नहीं जाये। टांका प्रायः गोल आकार का ही बनाते हैं, परन्तु हवेलियों व किलों में चौकोर आकार का टांका भी बनाते हैं।

बीकानेर संभाग में किसान खलिहानों व खेतों में छोटे (3 मीटर गहरा व 2 मीटर व्यास) टांके बनाकर बरसात के पानी का संग्रह करते हैं इस प्रकार के एक टांके में लगभग 10,000 लीटर पानी का संग्रह किया जा सकता है। टांके की छत बनाने में अधिकतर पत्थर की पट्टियों का उपयोग किया जाता है। गरीब लोग ऊपर से खुला टांका भी बनाते हैं और सूखी झाड़ियों/टहनियों द्वारा वाष्पीकरण रोकते हैं। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर ने पक्के गोल टांकों की उन्नतशील डिज़ाइन तैयार की है (चित्र 2.4) जो कि राजीव गांधी पेयजल योजना में प्रचलित हुई। यह डिज़ाइन अब गॉवों में लोकप्रिय है।

बरसात के मौसम में टांकों के पानी का उपयोग कम किया जाता है तथा खाली होने पर नाडी या तालाब के जल से भर दिया जाता है। कई जगहों पर तालाबों या गहरे कुओं के पानी का संग्रहण भी घर के टांकों में किये जाने की प्रथा है।

टाकों के परिपेक्ष में यह जानना जरूरी है कि जिन क्षेत्रों में फ्लोराइड़ तथा लवण युक्त पानी है वहाँ छत के पानी को टांकों में संचय कर सेवन करना ही कुबड़ेपन एवं जोड़ों के दर्द जैसी भयानक बीमारियों से छुटकारा दिलाता है।

खड़ीन

खड़ीन मुख्यतः जैसलमेर जिले का पौराणिक परम्परागत वर्षा जल के संग्रहण का मुख्य स्रोत है। ऐतिहासिक तौर पर जैसलमेर में खड़ीनों का प्रचलन पालीवाल प्रथा की देन है। जैसलमेर में जहाँ एक तरफ सुनहरे चमकते रेतीले टीबों की भरमार है तो दूसरी ओर पथरीली, उबड–खाबड़ भूमि तथा निर्जन पहाड़ियों की भी कमी नहीं है।

पहाड़ियों के बीच वर्षा जल का इकट्ठा होना ही खड़ीन का प्रारूप बन जाता है। इस इकट्ठे हुए जल का उपयोग अधिकतर पशुओं के लिये किया जाता है तथा पानी के सूखने पर वहाँ खेती भी की जाती है या इसमें पनपा घास पशुओं के चरने के काम आता है। खड़ीन के पेटे में या बन्ध के दूसरी ओर छोटी व कम गहरी कुइयाँ बनाने का प्रचलन है। इन कुइयों से निकाला गया जल पीने के काम में तो लिया ही जाता है साथ ही कुछ स्थानों पर इन कुइयों से सिंचाई कर सब्जी व फूल आदि उगाने की भी प्रथा है। खड़ीन के क्षेत्र में बारानी फसले जैसे गेहूँ, चना आदि की भी खेती की जाती है (चित्र 2.5)।

बढ़ती आबादी तथा प्रति इकाई कृषि योग्य भूमि पर आश्रित लोगों की जनसंख्या में वृद्धि, प्राकृतिक जल संसाधनों के अत्यधिक दोहन तथा निरन्तर जल स्तर में गिरावट के कारण मरुस्थलवासियों को अपने परम्परागत वर्षा जल आधारित स्रोतों को न केवल पुनः अपनाना होगा अपितु इनको और उन्नत करना होगा। परम्परागत तकनीकें न केवल वर्षा जल का संचयन करती थी अपितु भूजल के पुनर्भरण में मुख्य भूमिका निभाती थी। आज के युग में इन परम्परागत तकनीकों के साथ–साथ नवीन तकनीकें अपनाने की भी आवश्यकता है ताकि मरुस्थल में जल की समुचित व्यवस्था हो सके और सूखा काल में पानी की त्राहि–त्राहि न मचे। सारांश इस हेतु निम्नलिखित प्रभावी कदम उठाने की आवश्यकता है–

- परम्परागत ज्ञान को वर्षा जल के संचयन और संरक्षण में अपनाना।
- मरुस्थल में कम पानी में पैदा होने वाली वनस्पतियाँ जैसे घासें, वृक्ष और फसलों को अपनाकर भूजल स्रोतों को कम से कम दोहना।

- बूँद–बूँद सिंचाई या फव्वारा विधि से सिंचाई कर पानी की बर्बादी को कम करना।
- बरसात में छत के पानी का संचयन करना। वर्षा काल में खेत का जल खेत में या फिर टांकों, नाडी, ताल–तलैयों और समंदों में संचयन करना।
- ग्रामवासियों और शहरों में जल संरक्षण की शिक्षा व प्रशिक्षण देना।
- आवश्यकतानुसार राज्य स्तर पर वैधानिक नियम बनाना और उनका अनुपालन कराना ताकि आने वाली पीढ़ी को पानी की पूर्ति हो।

आज के स्पर्धा के युग में किसान अधिक पानी वाली फसले लेकर भूगर्भ के जल का अधिकाधिक प्रयोग कर रहे हैं। भूमि के उचित उपयोग की जल प्रबन्धन में अहम् भूमिका है। अतः मरुक्षेत्र में पारम्परिक फसलें व फसल चक्र अपनाकर पानी की क्षमता को बढ़ाना आवश्यक है जिसके लिए नवीनतम बूँद–बूँद सिंचाई की तकनीक अपनाना आवश्यक है।

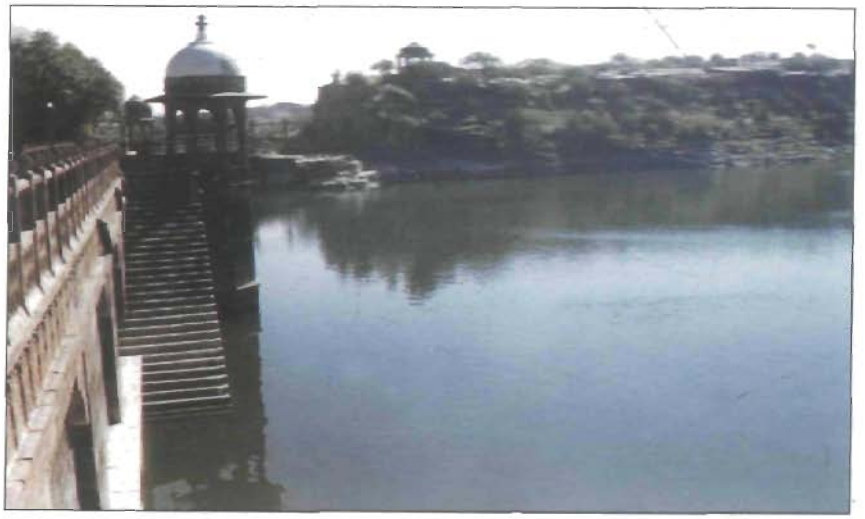

चित्र 2.3. जोधपुर शहर की प्रसिद्ध पौराणिक झील बालसंमद (सन् 1159 ई.)

चित्र 2.4. काजरी तकनीक पर आधारित टांका

चित्र 2.5. जैसलमेर जिले की प्रसिद्ध रुपसी खड़ीन

3 रेगिस्तान में जलग्रहण क्षेत्र प्रबन्धन – एक अध्ययन

मोहम्मद अल्लाउद्दीन खान

जलग्रहण, इंडेक्स कैचमेन्ट और क्लस्टर क्षेत्र पहुँच द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का समायोजित प्रबन्ध किया जाता है। जलग्रहण, जल प्रवाह क्षेत्र आदि मूल रूप से एक ही नाम है किन्तु जलग्रहण–क्षेत्र आज के संदर्भ में ज्यादा प्रचलित है। जलग्रहण–क्षेत्र व्यापक अर्थ में एक ऐसा जल प्रवाह क्षेत्र है जहाँ पूरे जल बहाव का एक ही निकास होता है। जलग्रहण प्रबन्धन में जल, भूमि एवं अन्य स्रोतों का समन्वित रूप से उपयोग होता है। समन्वित जलग्रहण प्रबन्धन अब विश्व स्तर पर स्वीकार किया जाने लगा है। मूलतः इसे पहले जल एवं भूमि स्रोतों को संरक्षित करना माना जाता था लेकिन विकसित देशों में जलग्रहण क्षेत्रों में आबादी ज्यादा होने की वजह से मानव संसाधन एवं उनकी स्थिति भी प्रबन्धन क्षेत्र के अन्तर्गत आती है। साठ के दशक के मध्य से ग्रामीण विकास के कार्यों को भी जलग्रहण प्रबन्धन में शामिल किया गया। जलग्रहण क्षेत्र के किसानों की आर्थिक, सामाजिक दशा एवं पर्यावरण के विकास के लिये एक समन्वित प्रयास की आवश्यकता है।

जोधपुर जिले के सर गाँव के निकट जलग्रहण क्षेत्र में जलोढ़ मैदान, कम ऊँचाई के रेतीले टीबे, रेतीले मैदान एवं क्षरित पहाड़ी क्षेत्र है। रायोलाईट पत्थर की 96 मीटर से 118 मीटर ऊँची पहाड़ियाँ सर गाँव के निकट हैं। इन पहाड़ियों का भौतिक रूप से क्षरण हुआ है एवं यहाँ पर वनस्पति नहीं है। कृषि क्षेत्र का सामान्य ढ़लान 0 – 1 प्रतिशत है। बहुत से बरसाती नाले रायोलाईट की पहाड़ियों से निकलते हैं एवं पहाड़ी ढ़लान एवं कृषि क्षेत्र से होते हुए या तो नाडी में मिलते हैं या रेत के टीबों में खो जाते हैं। इन नालों की चौड़ाई 5 से 28 मीटर एवं गहराई 0.6 से 3.0 मीटर तक है। यहाँ पर सामुदायिक चारागाह क्षेत्र में 50 हैक्टर भूमि को विकसित करने हेतु चिन्हित किया गया (चित्र 3.1) है। यह भूमि जलग्रहण क्षेत्र के दक्षिण – पश्चिम भाग में स्थित है।

समन्वित प्रबन्धन

भारतीय सर्वेक्षण विभाग के नक्शे एवं हवाई चित्रों की सहायता से सर गाँव के निकट जलग्रहण क्षेत्र को चिन्हित किया गया। यहाँ प्राकृतिक संसाधनों एवं आर्थिक–सामाजिक सर्वेक्षण के आधार पर एक कार्य पद्धति बनाई गयी जिसमें प्रत्येक परिवार की आवश्यकता एवं उनके सामुदायिक विकास को भी ध्यान में रखा गया। इन सभी बिन्दुओं के आधार पर प्रबन्धन तकनीकी विकसित की गयी एवं एक उचित भू उपयोग नक्शा तैयार किया गया।

जल प्रबन्धन तकनीकी

- तलहटी की 50 हैक्टर अत्यधिक क्षरित भूमि को प्रायोगिक तौर पर तकनीकी को परखने के लिये काम में लाया गया। इस क्षेत्र में मृदा एवं जल संरक्षण हेतु समोच्य बंध, नाला बंध, नाली ठेपना आदि तकनीक काम में ली गयीं। स्थानीय लोगों की सहायता से 28 हैक्टर भूमि को वनीकरण आदि के काम में लिया गया। शेष रही भूमि को खाली रखा गया एवं इसमें कोई भी मृदा एवं जल संरक्षण उपायों का प्रयोग नहीं किया गया। वर्षा का मापन वर्षा माप यंत्र से एवं बहाव का मापन स्वचलित बहाव यंत्र द्वारा किया गया। स्वचलित बहाव यंत्र इस क्षेत्र में स्थित तीनों मुख्य नालों पर लगाये गये। मृदा एवं तलछट की जाँच के लिये प्रत्येक बहाव घटना के जल नमूने एकत्रित किये गये।

- कृषि क्षेत्र में मृदा एवं जल संग्रहण हेतु विभिन्न प्रकार के उपाय जैसे समोच्य बंध, समोच्य पादप अवरोध, सीमा बंध एवं समोच्य बंध + पादप अवरोध काम में लिये गये (चित्र 3.2)। प्रत्येक तकनीक के जल विज्ञान एवं पैदावार से संबधित आंकड़े इकट्ठे किये गये। किसानों को उन्नत किस्म के बीज आदि दिये गये जो कि बारानी खेती में काम आते हैं।

- विभिन्न स्थानों पर 15 टांके बनाये गये जिनमें वर्षा जल एकत्रित हो सके। इन टाकों में एकत्रित जल को पुनःचकित कर बागवानी एवं नर्सरी को उगाने के काम में लिया गया।

- पीने के पानी के लिये दो स्थानों पर छत के पानी को दोहित कर इकट्ठा किया गया।

- भू जल के कृत्रिम पुनर्भरण का एक प्रयोग 2.8 हैक्टर के तालाब में किया गया। इसके लिये 3 छिद्र प्रवेशन कुओं का उपयोग किया गया।

- जल ग्रहण क्षेत्र के किसानों के लिये जन–चेतना कार्यक्रम आयोजित किये गये।

जल – बहाव एवं मृदा क्षरण

इस क्षेत्र में वार्षिक वर्षा दर 1991 में 203.4 मि.मी. से 1996 में 844.0 मि.मी. रही। वर्षा का औसत 476.6 मि.मी. रहा। आंकडे दर्शाते हैं कि जिस जलग्रहण क्षेत्र में तकनीक का प्रयोग हुआ वहाँ जल बहाव 81.4 मि.मी. एवं मृदा क्षरण 2.2 टन/हैक्टर रहा जबकि अन्य क्षेत्र में यह क्रमशः 161.9 मि. मी. एवं 5.4 टन/हैक्टर रहा।

जल ग्रहण विकास तकनीक को अपनाने से इस क्षेत्र में जल बहाव 31 से 11 प्रतिशत तक गिर गया। इसके साथ ही मृदा क्षरण में भी अच्छी खासी कमी आयी। जल ग्रहण विकास तकनीक क्षेत्र में अन्य क्षेत्र की तुलना में मृदा क्षरण 38.1 प्रतिशत (1990) से 480.3 प्रतिशत (1996) रहा।

कृषि क्षेत्र में जल बहाव कम होने से ढ़लानों पर भूमि में नमी की मात्रा में वृद्धि हुई। नियंत्रित क्षेत्र में वार्षिक दर 133.5 मि.मी. (28 प्रतिशत) एवं मृदा क्षरण 5.4 टन/हैक्टर रहा। समोच्य बंध के साथ पादप – अवरोध सबसे ज्यादा असरकारक रहे यहाँ जल बहाव 19.1 मि.मी. (4 प्रतिशत) एवं मृदा क्षरण 0.7 टन/हैक्टर रहा। नमी संरक्षण हेतु सीमा बॉध इस क्षेत्र में बहुत उपयोगी रहे हैं। इसमें पूरा जल बहाव एक ही जगह इकट्ठा होता है।

संरक्षित वनीकरण

किसी जल ग्रहण क्षेत्र में जल चक्र के परिचालन में जैविक विभिन्नता एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है जैसा कि सर जलग्रहण क्षेत्र में है। यहाँ पर सामुदायिक चारागाह में 1991, 1992 एवं 1993 में विभिन्न प्रजातियों के 42344 पौधे लगाये गये। इन पौधों की पूरक सिंचाई के लिये जलग्रहण क्षेत्र में बनाये गये 143 घन मीटर के पक्के टांके के पानी को काम में लाया गया। इन पौधों में से लगभग 39 प्रतिशत पौधे ही जीवित रहे (तालिका 3.1)।

तालिका 3.1. जलग्रहण क्षेत्र में वर्ष वार पौध – रोपण

विवरण	वर्ष				कुल
	1990	1991	1992	1993	
पौध – रोपण	1249	3967	8728	28400	42344
जीवित – पौधे	688	2110	5966	7782	16546
जीवित पौधों का प्रतिशत	55	53	68	28	39

किसानों की भागीदारी से चलाये गये सामाजिक संरक्षण कार्यों से चारे में 280 प्रतिशत (2.2 टन/हैक्टर/वर्ष सूखा पदार्थ) की वृद्धि देखी गयी। जबकि जलावन में यह वृद्धि 416 प्रतिशत रही।

वर्षा जल दोहन एवं पुनःचक्र

जल ग्रहण क्षेत्र में 10000 लीटर के 15 टांके विभिन्न खेतों में बनाये गये। इन टांकों से पूरक सिंचाई कर किसानों ने बागवानी एवं नर्सरी को बढ़ावा दिया जिससे उनकी वार्षिक आमदनी (फल एवं पौध बेचकर) 6000 से 7000 रूपये बढ़ गयी।

बेर एवं अनार में 60 लीटर प्रति पौधा की दर से पूरक सिंचाई करने से पैदावार में बढत देखी गयी। बागवानी में जहाँ पूरक सिंचाई नहीं की गयी उसके मुकाबले बेर की 2, 4 एवं 6 पूरक सिंचाई के बाद पैदावार में 46.4, 80.3 एवं 124.0 प्रतिशत वृद्धि पाई गयी जबकि अनार के लिये यह वृद्धि क्रमशः 69.8, 112.5, 191.5 प्रतिशत रही।

क्षेत्रिकी उपचार

सीमा बंध, समोच्य बंध, समोच्य पादप अवरोध एवं समोच्य बंध के साथ पादप अवरोध आदि मृदा एवं जल संरक्षण उपायों के अपनाने से जल बहाव एवं मृदा क्षरण को रोकने में मदद मिलती है। इससे नमी को संरक्षित करने में भी मदद मिलती है जिससे कृषि भूमि की उर्वरकता बढ़ती है। समोच्य बंध के साथ पादप अवरोध सभी उपायों से ज्यादा कारगर हैं (तालिका 3.2)। संरक्षण एवं क्षेत्रिकी के साथ यदि बीजों की उन्नत किस्में काम में ली जायें तो उनसे बाजरा, मूंग एवं मोठ की उपज में बढ़त होती है। सबसे ज्यादा औसत बढ़त समोच्य बंध के साथ पादप अवरोध क्षेत्र में पाई गयी। यहाँ बाजरा (एच.एच.बी.–67), मूंग (के–851) एवं मोठ (आर.एम.ओ.–936) में उपज क्रमशः 15.9, 10.5 एवं 6.7 क्विंटल/हैक्टर रही। इसके बाद क्रमशः समोच्य बंध, सीमा बंध एवं सबसे कम समोच्य–पादप अवरोध क्षेत्र में रही (तालिका 3.3)। यद्यपि ज्यादातर किसान सीमा बंध को ही प्राथमिकता देते हैं क्योंकि यह उनके बंध के साथ बाड़ का भी काम करते हैं। लगभग सभी किसानों ने उन्नत किस्मों को बहुतायत में प्राथमिकता दी है। किसानों को तकनीकी सहयोग के अलावा उन्नत किस्म के बीज एवं खाद प्रदान किये गये। जबकि प्रारम्भ में किसानों को सहकारी समीतियों से उन्नत बीज खरीदने के लिये प्रोत्साहित किया गया। फलस्वरूप किसानों ने चौथे वर्ष से अपने आप ही उन्नत बीज खरीदना शुरू कर दिया।

तालिका 3.2. संरक्षण उपायों का जल बहाव एवं मृदा क्षरण पर प्रभाव

संरक्षण उपाय	वार्षिक औसत वर्षा (मि.मी.)	वार्षिक औसत जल बहाव (मि.मी.)	वर्षा (प्रतिशत)	औसत मृदा क्षरण (टन/हैक्टर)
नियंत्रित	476.6	133.5	28	5.4
सीमा बंध	476.6	57.2	12	2.0
समोच्य बंध	476.6	42.9	9	1.9
समोच्य पादप बंध	476.6	33.4	7	1.5
समोच्य बंध + पादप बंध	476.6	19.1	4	0.7

भू जल पुनर्भरण

इस जलग्रहण क्षेत्र में भू–परतों की कम जल प्रवाहक क्षमता से भू–जल उपयोग सीमित हो जाता है। भू–जल पुनर्भरण हेतु यहाँ पर पहले से बने हुए एक तालाब की मिट्टी निकाली गयी एवं तालाब के भराव को 28 हैक्टर–मीटर किया गया। जिससे जलग्रहण क्षेत्र का अनुमानित बहाव जल यहाँ इकट्ठा हो सके। इस तालाब के तल में तीन 20 मीटर गहरे छिद्र प्रवेशन कुओं का निर्माण किया गया। यहाँ की रायोलाईट पहाड़ियों से वार्षिक जल बहाव वर्षा का 28 से 67 प्रतिशत होता है। जिस वर्ष तालाब में से मिट्टी निकाली गयी प्रारम्भ के 2 – 3 दिनों तक छिद्र प्रवेशन की दर 128 से 176 मि.मी./दिन

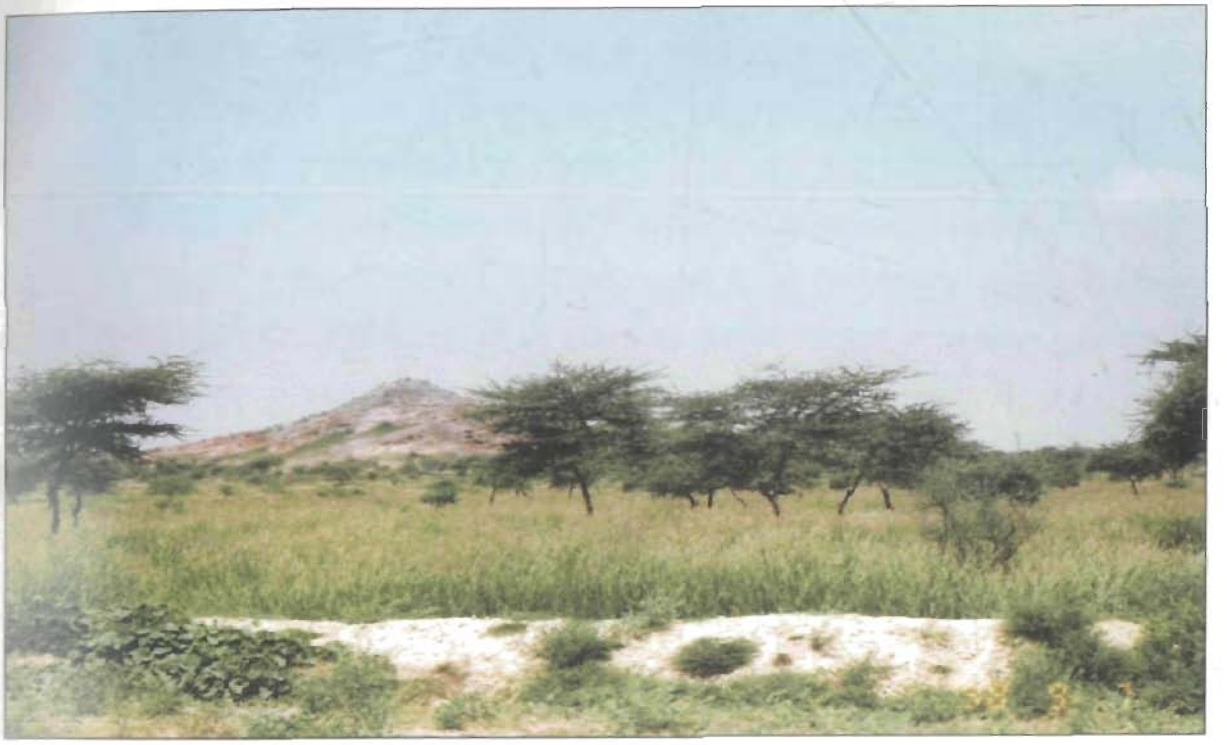

चित्र ३.1. जलग्रहण क्षेत्र में विकसित सामुदायिक चारागाह

चित्र 3.2. मृदा एवं जल संग्रहण हेतु समोच्य बंध

रही। तत्पश्चात् छिद्र प्रवेशन की दर, जुलाई एवं अगस्त माह में काफी कम होकर 87 से 45 मि.मी./दिन रह गई, जबकि तालाब में पानी का तल अपने उच्चतम स्तर पर था तथा पानी का भराव 28000 घन मीटर था जो कि जनवरी माह तक काम मे आया। मानसून पश्चात् की अवधि में जब तालाब में जल स्तर 0.6 मीटर रह गया तब छिद्र प्रवेशन की दर 5.8 मि.मी./दिन रह गयी। छिद्र प्रवेशन से भूजल पुनर्भरण के कारण जो कुएँ, तालाब के आस–पास थे उनमें जल स्तर एकदम से ऊपर आया। छिद्र प्रवेशन में कमी का कारण जलग्रहण क्षेत्र में तेजी से भूमि का कटाव है जो कि तालाब के तल में जाकर इकट्ठा हो जाता है। भू–जल परतों की कम जल बहाव क्षमता के कारण जो कुएँ, तालाब से 250 मीटर से ज्यादा दूरी पर स्थित थे उनमें जलस्तर धीमी गति से हुआ और यह लगभग 28 से.मी./10 दिन रहा।

तालिका 3.3. कृषि पैदावार पर संरक्षण उपायों का प्रभाव

संरक्षण उपाय	बाजरा		मूंग		मोठ	
	क्वि./है.	नियत्रित सरंक्षण पर बढत	क्वि./है.	नियंत्रित संरक्षण पर बढत	क्वि./है.	नियंत्रित संरक्षण पर बढ़त
नियंत्रित	8.6	–	5.4	–	2.8	–
सीमा बंध	11.8	37.0	6.2	14.7	4.7	67.8
समोच्य बंध	12.7	47.8	9.1	67.7	5.1	82.1
समोच्य पादप बंध	11.0	28.3	7.3	35.3	3.9	39.3
समोच्य बंध + पादप बंध	15.9	84.8	10.5	93.5	6.7	139.3

जन – जांगरण अभियान

आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों के किसानों को खेतों, संस्थान एवं प्रायोगिक क्षेत्र में ले जाकर विकसित तकनीकी से परिचित करवाया गया। प्रतिवर्ष गाँव में एक क्षेत्र भ्रमण दिवस का आयोजन किया गया। इसमें सभी किसानों को उनके अनुभव के आधार पर इस प्रकार के कार्यक्रम में सम्मिलित होने के लिये प्रोत्साहित किया। संस्थान के मुख्यालय पर साल में एक बार किसान मेले का आयोजन होता है जहाँ पर किसान वर्ग विशेषज्ञों से सलाह मशविरा लेते हैं। यहाँ पर किसानों को एक अवसर होता है कि वे अपने आप को उन्नत तकनीकी से जोड़ सकें एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण एवं उनके समन्वित उपयोग को सीख सकें।

उपसंहार

सर गाँव में जलग्रहण क्षेत्र अध्ययन से पता चलता है कि शुष्क क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों को उचित भूमि उपचार तकनीकी द्वारा काफी बढ़ाया जा सकता है। जल बहाव को गाँव के तालाब में

इकट्ठा करना एवं छत के जल को नालियों द्वारा टांके में एकत्रित करना ही इस कार्यक्रम के केन्द्र बिन्दु रहे। विभिन्न संरक्षण पद्धतियों एवं विकसित क्षेत्रिकी के द्वारा ही उत्पादकता को स्थाई रूप से बढ़ाया जा सकता है एवं समन्वित जलग्रहण प्रबन्धन से ही शुष्क क्षेत्र की विषम परिस्थितियों को भी अनुकूल बनाया जा सकता है।

4 बारानी खेती में नमी संरक्षण एवं फसल उत्पादन के उपाय

रिद्ध करण बेनीवाल एवं राम पाल जांगिड़

पश्चिमी राजस्थान के मरूस्थलीय संभाग में वर्षा की अनिश्चितता के कारण खरीफ की बारानी फसलों के उत्पादन में हमेशा जोखिम बना रहता है। इस क्षेत्र में समय पर पर्याप्त मात्रा में वर्षा का न होना, बीच – बीच में सूखे की स्थिति बनना, फसल अवस्थाओं पर इसका बराबर वितरण न होना तथा समय से पूर्व मानसून के विदा होने के कारण फसल उत्पादन कम होता है। साथ ही इस क्षेत्र की रेतीली मिट्टी व उसमें जैविक अंश की मात्रा कम होने से बरसाती जल को सोखने की क्षमता में कमी व किसान की माली हालत कमजोर होने की वजह से उन्नत कृषि तकनीकी सिफारिशों को न अपनाने पर फसल उत्पादन में अनिश्चितता बनी रहती है। अतः वर्षा जल का बुवाई से पूर्व एवं खड़ी फसल में समुचित संरक्षण के निम्न उपाय काम में लेने चाहियें –

- वर्षा के पानी का भूमि में अधिक से अधिक अवशोषण के लिये बरसात से पहले या पहली बरसात के समय खेत की उचित जुताई करनी चाहिये।
- खेत का पानी खेत से बाहर नहीं जाय इसके लिये खेत की उचित मेड़–बन्दी करना अति आवश्यक है। मृदा जल का वाष्प के रूप में उत्सर्जन होने से बचाव के लिये जुलाई के पश्चात् पाटे का प्रयोग किया जाय।
- मिट्टी की जलग्रहण क्षमता बढ़ाने हेतु जल शक्ति या अन्य पदार्थों के माध्यम जैसे तालाब की मिट्टी, गोबर की खाद, वर्मीकम्पोस्ट, बेन्टोनाइट आदि का प्रयोग अवश्य करें। मृदा को कोम्पेक्ट करके भी उसकी जलग्रहण क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।
- उचित खरपतवार नियन्त्रण द्वारा नमी के ह्रास को कम किया जा सकता है।

इस प्रकार वर्षा जल एवं मिट्टी को खेत में ही रोक कर अधिकतम वर्षा का पानी समेट कर क्षेत्र में सुरक्षित कर भूमिगत जल स्रोतों में वृद्धि की जा सकती है जिससे फसल की पैदावार बढ़ाई जा सकती है साथ ही जहाँ संभव हो वर्षा के अतिरिक्त जल को खेत के उचित स्थान पर बनाये गये छोटे तालाब में इकट्ठा कर जीवन रक्षक सिंचाई करने से उत्पादन 2 – 3 गुणा बढ़ाया जा सकता है तथा विपरीत परिस्थितियों में आपातकालीन योजनाओं को क्रियान्वित कर सूखे की स्थिति से फसलों को बचाकर उत्पादन में स्थिरता लाई जा सकती है।

उपयुक्त फसल एवं उन्नत किस्मों का चुनाव

किसी क्षेत्र में फसलों का चयन वर्षा होने की अवधि व उसकी मात्रा पर निर्भर करता है। जिन क्षेत्रों में वार्षिक औसत वर्षा 150 मि.मी. से कम हो तो वहाँ घास (धामण व सेवण) तथा पेड़ लगाना

उपयुक्त रहता है। जहाँ वर्षा होने की अवधि छः सप्ताह तथा इसकी मात्रा 200–300 मि.मी. हो वहाँ जल्दी पकने वाली बाजरे की किस्में, मोठ व ग्वार की फसलें बोना फायदेमन्द रहेगा, परन्तु जिन क्षेत्रों में वर्षा 300 मि.मी. से ज्यादा हो, जो करीब 8 सप्ताह तक होती रहे तो किसानों को मध्य अवधि में पकने वाली बाजरे की किस्में, मूंग, ग्वार आदि बोना लाभकारी रहेगा।

फसल व किस्म का चयन बरसात होने के समय पर भी निर्भर करता है। यदि वर्षा समय से पूर्व जून के प्रथम पखवाड़े में हो तो ऐसी स्थिति में बाजरे की संकर किस्में बोनी चाहियें। समय पर बरसात हो तो सबसे पहले बाजरा तथा उसके बाद तिल, मूंग, मोठ व ग्वार की फसलों को क्रमवार बोना उपयुक्त रहता है। यदि 15 जुलाई के बाद बरसात हो तो बाजरे की बजाय अन्य दलहनी फसलों को बोने से अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इस मरुस्थलीय क्षेत्र में बाजरे के साथ दलहनी फसलों की तीन–चौथाई बीज दर की मात्रा मिलाकर मिश्रित खेती करने से प्राकृतिक जल का समुचित उपयोग किया जा सकता है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् की विभिन्न संस्थाओं एवं कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा फसलों की अनेक ऐसी किस्मों का विकास किया गया है जिसकी वजह से शुष्क क्षेत्र में हरित क्रान्ति लाने में अनूठा योगदान रहा है। बारानी खेती में अधिक उपज देने वाली प्रमुख फसलों की किस्में तालिका 4.1 और 4.2 में दी गई हैं।

तालिका 4.1. खरीफ में बोई जाने वाली फसलों की उन्नत किस्में

बाजरा	एच. एच. बी. 60, 67, एम. एच. 169 (पूसा 23), सी. जेड. पी. 9802
मोठ	जे.एम.एम.259 (मरू मोठ), ज्वाला, आर.एम.ओ. 40, 257, काजरी मोठ 1,2
ग्वार	एच. जी. 119, मरू ग्वार, सुविधा, दुर्गापुरा सफेद, एच. जी. 75, एच. जी. एस. 365, आर.जी.सी. 1002, आर.जी.सी. 1003
मूंग	एस. 8, 9, पी. एस. 16, के 851, आर.एम.जी. 62
तिल	प्रताप, आर. टी. 46
चवला	वी. 585, जी.सी. 3, आर.सी. 101, आर.सी. 19, चरौडी 1
अरण्डी	सी. एच 1, अरूणा, गोच 1, गोच 5

तालिका 4.2. रबी में बोई जाने वाली फसलों की उन्नत किस्में

तारामीरा	उपलब्ध स्थानीय किस्में
रायड़ा	वरूणा (टी. 59), पूसा बोल्ड, जय किसान, क्रांति, आर.एच. 30
चना	आर.एस. 10, 11, राधे, आर.एस.जी. 44
जौ	ज्योती, आर.एस. 6
सूरजमुखी	ई.सी. 68413, 68415, सूर्या, बी.एस.एच. 1, बी.एस.एच. 2
कुसुम	भीमा, जे.एस.फ. 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, ए 1., टी 65
गेहूँ	एच.डी. 4530, राज 3077, राज 3765

खाद एवं उर्वरकों का समन्वित उपयोग

अधिक उपज देने वाली किस्मों से भरपूर लाभ एवं अधिक उपज लेने हेतु पोषक तत्वों की सन्तुलित मात्रा मिलना अति आवश्यक है। शुष्क क्षेत्र की अधिकतर मृदाओं में नत्रजन तथा फासफोरस तत्वों की कमी पाई जाती है। इन पोषक तत्वों की कमी को पूरा करने हेतु देशी खाद, वर्मीकम्पोस्ट एवं रसायनिक उर्वरकों तथा जैविक खांदों का समन्वित प्रयोग करना आवश्यक है। शुष्क क्षेत्र में बोई जाने वाली दलहनी फसलों जैसे मोठ, ग्वार, मूंग, चना आदि में फासफोरस की विशेष आवश्यकता होती है जिसको गोबर की खाद, सुपरफोस्फेट एवं फास्फोबेक्टेरियम जैसी जैविक खाद के समन्वित उपयोग से पूरा किया जा सकता है। इन फसलों में जैविक खाद द्वारा दलहनी फसलों के बीज को बुवाई से पहले उपचारित करने से इन की नत्रजन की आवश्यकता की पूर्ती करने के साथ–साथ जमीन में 100 – 120 कि. ग्रा. प्रति हैक्टर के हिसाब से वायुमण्डलीय नत्रजन का मृदा में स्थिरीकरण भी करते हैं जिससे उस जमीन में बोई जाने वाली अगली फसल में भी कम नाईट्रोजन की आवश्यकता होती है। बाजरा, ज्वार, मक्का आदि अनाज वाली फसलों के बीज को एजोबेक्टर या एजोस्पाईरिलम जो बाजार में नाईट्रोजन ए. जेड के नाम से उपलब्ध है से उपचारित किया जा सकता है। इस प्रकार जीवाणु खाद के प्रयोग से दलहनी फसलों की उपज में 50 प्रतिशत एवं अनाज वाली फसलों में 20 – 30 प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है। मृदा में पाये जाने वाले उन फासफोरस के योगिकों को जो साधारणतः फसल के उपयोग में नहीं आते, फास्फोबेक्टेरियम कल्चर के उपयोग से (जो अब बाजार में उपलब्ध है) घुलनशील अवस्था में परिवर्तित कर फसल के लिये उपयोगी बनाया जा सकता है।

मृदा में वर्षा जल संग्रहण

मध्य एवं भारी मिट्टी वाले क्षेत्रों में गर्मियों में जुताई करने से बरसात के जल को मिट्टी द्वारा अधिक सोंखने से बेकार जल को बहने से बचाया जा सकता है परन्तु रेतीली व हल्की मिट्टी में गर्मी में जुताई नहीं करनी चाहिये। मिट्टी के जल सोखने की क्षमता बढ़ाने के लिये गोबर की खाद, बेकार कूड़ा कचरा व फसलों के अवशेषों को मिट्टी में मिलाना चाहिये। खेत तैयार करने में नमी का ह्रास कम से कम किया जाए तथा बरसात होने के तुरन्त बाद फसल की बुवाई करें। इस रेतीले मरु प्रदेश की मिट्टी भूखी होने की बजाय प्यासी ज्यादा है। अतः कम पानी की उपलब्धता को देखते हुए पौधों की संख्या प्रारम्भ से ही कम रखनी चाहिये। समय–समय पर खरपतवार नियन्त्रण कर तथा अन्तः शस्य क्रियाओं द्वारा मिट्टी की ऊपरी परत तोड़ने से जल का संरक्षण ठीक प्रकार से किया जा सकता है। जिन क्षेत्रों में बेकार घासफूस उपलब्ध हो उनकों कतारों के बीच में डालने से खेत से होने वाले जल का वाष्पीकरण कम किया जा सकता है। फसल की बुवाई के बाद ढलान के विपरीत 5 – 10 मीटर के अन्तराल पर आडी डोली (मेड) बनाने से बरसात के जल के बहाव को रोका जा सकता है। बाजरा व दलहनी फसलों को पट्टीनुमा बुवाई करने से प्राकृतिक जल का अधिक संरक्षण किया जा सकता है।

(अ) अंतःक्यारी जल संग्रहण पद्धति

इस विधि में फसल लगी क्यारियों के एक तरफ या दो तरफ एक निश्चित ढ़लान के तहत खाली क्यारियों में वर्षा जल एकत्र किया जाता है जो फसल की जड़ों में निश्चित नमी बनाये रखता है। इसमें मृदा के गुण एवं किस्म के आधार पर कास्त क्षेत्र एवं जलागम क्षेत्र का अनुपात निर्धारित किया जाता है। यह ध्यान रहे कि जलागम क्षेत्र का ढ़लान अधिक है तो जल संग्रहण के बजाय पानी द्वारा मृदा का कटाव भी हो सकता है और ढ़लान कम रहने से एकत्रित वर्षा जल अंतःस्पदन क्रिया द्वारा भूमि में जा सकता है। अतः जलागम क्षेत्र एवं काश्त क्षेत्र का अनुपात 1:1 दोनों तरफ से ढ़लान के साथ या 1:2 अनुपात में एक तरफ ढ़लान के साथ होना चाहिये जैसा कि चित्र 4.1 में दर्शाया गया है।

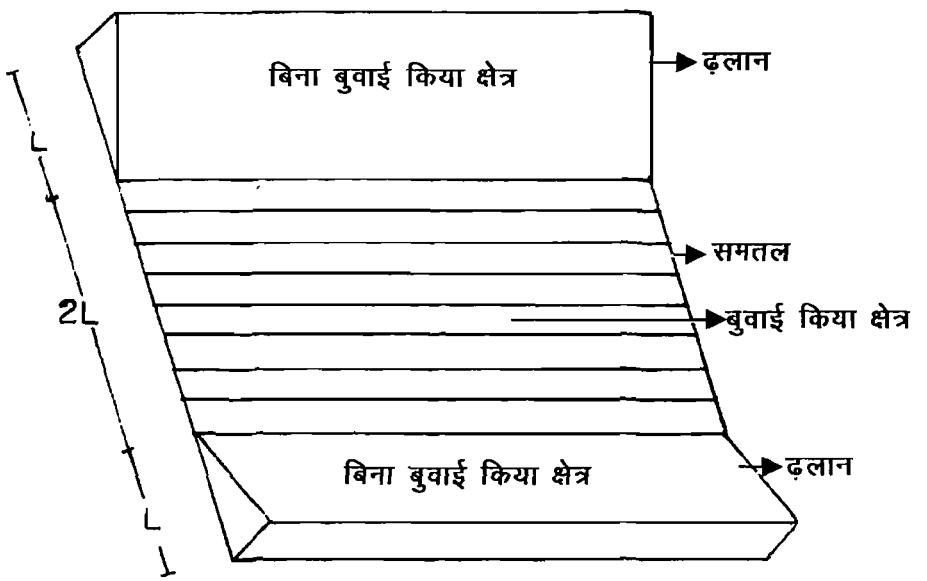

चित्र 4.1. अंतःक्यारी जल संग्रहण पद्धति

(ब) अंतःकूंड जल संग्रहण पद्धति

इस विधि में फसलों की बुवाई कूंड के अन्दर की जाती है और एकान्तर भाव से एक कूंड की जगह जलागम क्षेत्र के रूप में कार्य करती है। इस विधि में जलागम क्षेत्र हेतु कोई अलग से भूमि नहीं छोड़ी जाती {चित्र 4.2(अ)}। लेकिन इस विधि की महत्वपूर्ण समस्या यह है कि बुवाई के तुरन्त बाद अधिक वर्षा होने पर जलागम की मृदा जल बहाव द्वारा भर जाती है एवं सतही पपड़ी बनने से फसल नष्ट हो सकती है। अतः कूंड विधि को सुधार कर कूंड जलसंग्रहण विधि बनाई गई है। इससे प्रत्येक कूंड के बाद एक तरफ समतल जलागम छोड़ा जाता है तथा दूसरी तरफ एक निश्चित ढ़लान की मेड़ बनाई जाती है {चित्र 4.2(ब)}। इस प्रकार जलसंग्रहण विधि से सतही जल प्रवाह 50 – 80 प्रतिशत समतल भूमि की अपेक्षा अधिक प्राप्त होता है।

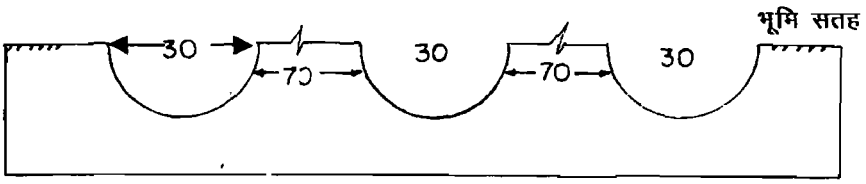

(अ) प्रचलित

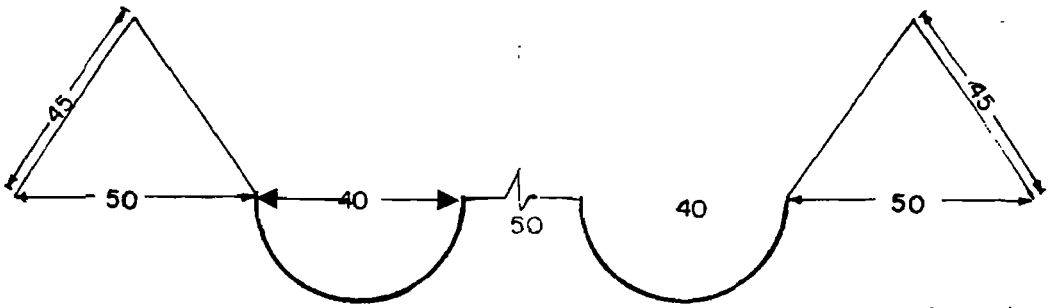

(ब) उन्नत

सभी माप सें. मी. में

चित्र 4.2 (अ, ब). अंतःकूंड जल संग्रहण पद्धति

(स) गड्ढ़ा एवं खाई विधि

यह विधि मुख्यतः सब्जी एवं फलदार पौधों के लिये जलसंग्रहण हेतु प्रयोग में ली जाती है। इस का मुख्य अवगुण यह है कि ज्यादातर एकत्रित जल अंतःस्पंदन द्वारा मृदा की निचली सतह में चला जाता है एवं पानी की अधिकतर मात्रा फसलों हेतु उपलब्ध नहीं हो पाती है। अतः इसके लिये बेन्टोनाईट क्ले या अन्य अंतः सतही अवरोधक का प्रयोग करना पड़ता है। इससे 70 – 75 से.मी. गहरी खाई खोदकर 40 टन प्रति हैक्टर की दर से बेन्टोनाईट क्ले खाई के तल में 25 से. मी. मृदा गहराई तर्क मिला दी जाती है। खाई के दोनों किनारों पर बेन्टोनाईट क्ले छिड़ककर खाई को भर दिया जाता है। इस विधि में जलागम क्षेत्र एवं फसल कास्त के क्षेत्र को 1:1 से 1.5:1 के अनुपात में रखा जाता है।

(द) मरु पटरी जल संग्रहण पद्धति

इस विधि में एक निश्चित काश्त क्षेत्र की नमी को आवश्यकतानुसार जलागम क्षेत्र से पूरा करते हैं। इस जलागम क्षेत्र को प्राकृतिक स्तर पर रखकर चारागाह के रूप में उपयोग में लिया जाता है। वर्षा नहीं होने की दशा में फसल के लिये जलागम क्षेत्र से घास पैदा होती है, लेकिन वर्षा होने पर फसल एवं चारे दोनों की पैदावार प्राप्त होती है।

आपात योजनाएँ

फसल की बुवाई के तुरन्त बाद 15 – 30 दिन का सूखा पड़ने से पौधों की संख्या बहुत कम हो जायेगी अतः कतारों के बीच दुबारा फसल की बुवाई करना ठीक रहता है। बुवाई के एक महीने बाद सूखा पड़ने की स्थिति में पौधों की संख्या को 25 प्रतिशत कमी कर उपलब्ध जल का दाना पकने के लिये समुचित उपयोग किया जा सकता है। सूखे की स्थिति में लगातार निराई–गुड़ाई कर खरपतवार निकालते रहना चाहिये। फसल में फूल आने की अवस्था के बाद यदि सूखा पड़ जाए तो खड़ी फसल में उर्वरक का उपयोग नहीं करना चाहिये।

इस प्रकार उपरोक्त बताये गये समन्वित तरीकों को अपनाकर बरसात के जल का अधिक से अधिक संरक्षण कर बारानी फसलों की उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

5 बूँद–बूँद सिंचाई पद्धति और दबाव तकनीक से सिंचाई

अनिल कुमार सिंह एवं हरपाल सिंह

कृषि उत्पादन में सिंचाई जल की महत्वपूर्ण भूमिका है। उचित सिंचाई प्रणाली के अभाव में यथेष्ट कृषि उत्पादन असंभव सा है विशेषतौर पर फलोत्पादन। परम्परागत विधियों जैसे प्रवाह या थाला विधि से फलदार वृक्षों की सिंचाई करने पर न केवल पानी का अपव्यय होता है बल्कि उच्च गुणवत्ता की फसल भी नहीं प्राप्त की जा सकती। इससे जड़ क्षेत्र के पास हवा–पानी का स्तर असन्तुलित हो जाता है। फलस्वरूप बीमारियों के आक्रमण की संभावना बढ़ जाती है।

कृषि उत्पादन को बनाए रखने के लिये जल एक महत्वपूर्ण संसाधन है। राजस्थान जैसे राज्य में जहाँ जल का नितान्त अभाव है, यह परम आवश्यक है कि जल का कुशल प्रबन्धन हो। श्रीगंगानगर या हनुमानगढ़ जिलों में जहाँ सिंचाई जल का मुख्य स्रोत नहर है, ड्रिप संयंत्र लगाने से पूर्व डिग्गी निर्माण आवश्यक है। जिन क्षेत्रों में स्रोत कुएँ या ट्यूबवेल हैं, यह संयंत्र सीधे ही लगाया जा सकता है। ड्रिप प्रणाली के निम्नलिखित आवश्यक अवयव हैं –

- पानी का स्रोत : पानी के स्रोत मुख्यरूप से कुएँ, नहरे या ट्यूबवेल हैं। नहरी क्षेत्रों में टाँकों का निर्माण आवश्यक है।
- पम्प : बूँद–बूँद सिंचाई प्रणाली में उचित दाब स्थापित करने के लिये विद्युत/डीजल चलित इंजन प्रयोग में लाये जा सकते हैं।
- हैड प्रणाली : इसमें मुख्य रूप से गेट वाल्व, दाब मापक, फिल्टर, वेन्चुरी, फर्टिलाइजर टैंक आदि सम्मिलित हैं।
- फिल्टर चयन :
  - स्क्रीन फिल्टर : पानी में अकार्बनिक पदार्थ जैसे बालू, सिल्ट, क्ले होने पर स्क्रीन फिल्टर का प्रयोग करें।
  - डिस्क फिल्टर : अकार्बनिक पदार्थ एवं छोटे–मोटे कचरे साफ करने के लिये (पानी का स्रोत कुआँ या ट्यूबवेल) डिस्क फिल्टर आवश्यक होता है।
  - बालू फिल्टर (हाइड्रोसाइक्लोव) : नहरी क्षेत्रों में पानी से रेत अलग करने के लिये बालू फिल्टर का प्रयोग वांछनीय है।

ग्रेवल फिल्टर : कार्बनिक पदार्थ जैसे काई वगैरह दूर कर हैड क्षति कम करने के लिये समय – समय पर पश्च धावन (बैकवाश) आवश्यक होता है विशेषकर तालाब के पानी के लिये।

पौधों को पौध संरक्षण रसायन देने के लिये वेन्चुरी या उर्वरक टैंक का उपयोग किया जा सकता है। घुलनशील या तरल उर्वरक भी दिये जा सकते हैं (चित्र 5.1)।

सिंचाई की ड्रिप पद्धति का मुख्य आकर्षण जल की बचत एवं उत्पादन में वृद्धि है। उत्पादन में 10 – 100 प्रतिशत तक की वृद्धि संभव है। इस विधि द्वारा 40 – 70 प्रतिशत जल की बचत की जा सकती है (तालिका 5.1)।

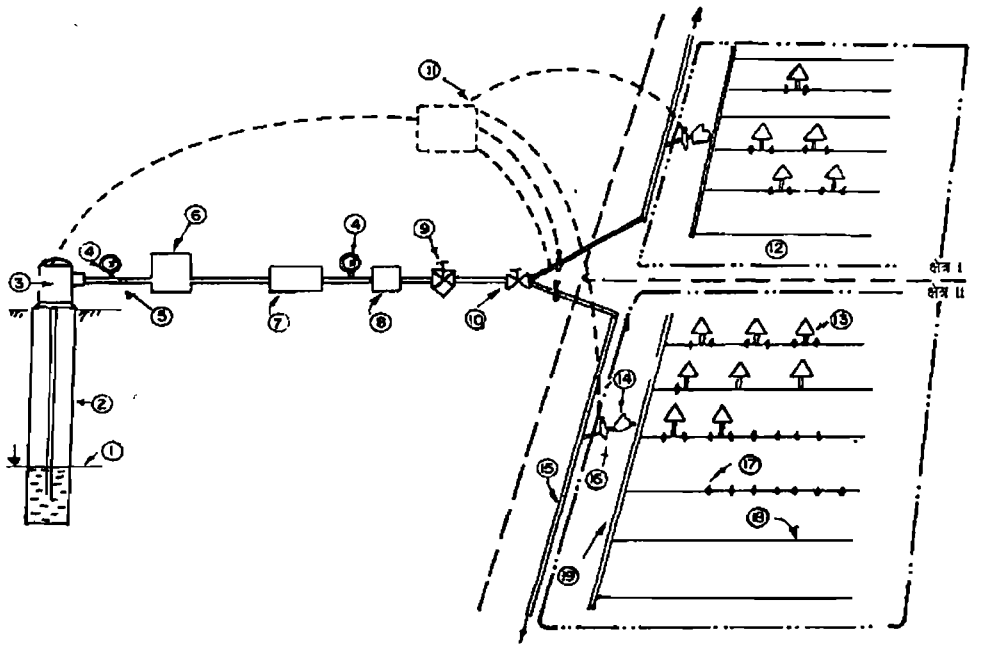

1. जलतल
2. कुँआ
3. पम्प
4. दाब मापी
5. जाँच वाल्व
6. खाद मिलाने का यन्त्र
7. जल फिल्टर
8. प्रवाह मापी
9. दाब नियन्त्रक
10. मुख्य वाल्व
11. विद्युत नियन्त्रक
12. उप मुख्य इकाई
13. पेड़
14. γ फिल्टर
15. मुख्य पाइप लाइन
16. सोलीनाइड वाल्व
17. ड्रिपर
18. लेटरल
19. उप मुख्यपाइप लाईन

चित्र 5.1. बूँद – बूँद सिंचाई पद्धति की संरचना

तालिका 5.1. विभिन्न फसलों की जल मांग, मि.मी./हैक्टर

फसल	परम्परागत विधि	ड्रिप
गन्ना	1430	850
कपास	850	350
टमाटर	345	255
भिण्डी	2189	1133
बैंगन	900	420
मिर्च	1097	417
मूली	464	108
आलू	200	200
प्याज	602	602
केला	2430	580
अँगूर	532	278
पपीता	2285	734

लाभ

- चूँकि पानी यथावत बूँद दर बूँद दिया जाता है इसलिए वाष्पीकरण, वितरण, कन्वेन्स व रिसाई न्यूनतम होने के कारण जल की बचत 60 – 80 प्रतिशत तक होती है।
- नियमित अवधि में पानी देने से नमी के दबाव में कमी होती है जिससे उपज में 30 से 50 प्रतिशत तक वृद्धि संभावित है।
- यह पद्धति उद्यान, कृषि फसलों, नगदी फसलों एवं साग – सब्जी के लिये उपयुक्त है।
- चूँकि घुलनशील उर्वरक सीधे पौधे की जड़ मण्डल में प्रयुक्त किये जाते हैं अतः उर्वरक हानि न्यूनतम रहती है।
- ड्रिपर सहित पद्धति के अवयव सरलता से खोले व लगाये जा सकते हैं।
- पौधों को आवश्यकतानुसार समान जल मिलता है जिससे अधिक उत्पादन होता है।
- पानी सीधे जड़ों में पहुँचता है एवं खरपतवार कम उगते हैं।
- ऊँची – नीची भूमि को समतल नहीं करना पड़ता है।
- बार – बार नालियाँ बनाने से मुक्ति मिलती है।
- मजदूरी की बचत होती है।
- उर्वरक उपयोग क्षमता बढ़ती है।
- रेतीले टीबों में दाब प्रतिपूरक ड्रिपर का प्रयोग किया जा सकता है।

रख–रखाव

- ड्रिप प्रणाली का रख–रखाव पूरे क्षेत्र में सिंचाई में समानता लाने के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रणाली में लेटरल का नेटवर्क बहुत बड़ा होता है जिससे पानी का वेग कम हो जाता है और सिल्ट जमा होने लगती है। इसके लिये सप्ताहान्त ड्रिपरों के नोज़लों को पानी दबाव से साफ करना चाहिये।

- प्रणाली लगाते समय सबमेन और लेटरल के अन्तिम प्वाईन्ट को बन्द कर देते हैं। प्रणाली लगाने के बाद खोलते हैं। जब साफ पानी आने लगे तब सभी प्वाईन्टस को बन्द कर देते हैं।

- पूरे क्षेत्र में 25 ड्रिपर चुन लेते हैं। एक मिनट में सभी ड्रिपर से निकला पानी अलग–अलग इकट्ठा कर लेते हैं। उसका आयतन नाप लेते हैं। आयतन को 6 से गुणा करने पर ड्रिपर की क्षमता लीटर/घण्टा आ जाती है। सभी 25 ड्रिपर क्षमता का औसत निकाल लेते हैं। औसत क्षमता निर्धारित क्षमता से 10 प्रतिशत से ज्यादा कम नहीं होनी चाहिये। यदि ऐसा है तो फिल्टर साफ करना चाहिये।

- लेटरल की पानी दबाव से सफाई करनी चाहिये।

- कुछ ड्रिपर बदल देने चाहियें।

- यदि साल्ट या कार्बनिक प्रदार्थ जमा हो जायें तो अम्लीय उपचारण (एसिड ट्रीटमेन्ट) करना चाहिये (100 लीटर पानी में 100 मि.ली. हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मिला कर)।

- फसल के अंत में ड्रिप प्रणाली इकट्ठा करते समय पाईप को ठीक से रोल करें (वृत्तीय मोड़ दें)। कोणीय मोड़ कभी न दें।

- ड्रिप प्रणाली को शेड में हवादार जगह पर रखें और चूहों से बचाव का उपाय करें।

- ड्रिप प्रणाली में निर्धारित दबाव बनाये रखें।

ड्रिप प्रणाली की सबसे बड़ी परिसीमा इसका अवरूद्ध (चॉक) होना है। इसे दूर करने के लिये फिल्टर अच्छा होना चाहिये। यदि फिल्टर से पहले व बाद में दाब में कमी 0.7 मी. जल दाब से ज्यादा हो तो फिल्टर साफ करना चाहिये और ग्रेवल फिल्टर में समय–समय पर पश्च धावन (बैकवाश) करते रहना चाहिये।

6

सूखा प्रबन्धन हेतु उन्नत कृषि यंत्र

हरपाल सिंह एवं दिनेश मिश्रा

हमारे देश की अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। कृषि की पैदावार बढ़ाने में कृषि यंत्रों की सकारात्मक भूमिका रहती है। इन यंत्रों की सहायता से विभिन्न प्रकार के कार्यों को पूर्ण दक्षता एवं निपुणता से किया जा सकता है। जिसके फलस्वरूप कम लागत एवं समय में कार्य पूर्ण कर कृषि पैदावार से होने वाले लाभ को बढ़ाया जा सकता है। इन यंत्रों एवं औजारों को चलाने के लिये मानव शक्ति तथा डीजल/बिजली चलित मशीनों का प्रयोग किया जाता है। तवेदार हल का उपयोग जमीन पलटने के लिये तथा तवेदार हैरो की सहायता से जमीन को भुरभुरा करने का कार्य किया जा सकता है। बुवाई कार्य के लिये बीजाणी यंत्र का तथा खरपतवार नियंत्रण के लिये मानव या ट्रैक्टर चलित खरपतवार नियंत्रण औजारों का उपयोग किया जाता है। इसी प्रकार फसल के रोग नियंत्रण के लिये विभिन्न प्रकार के रासायनिक द्रव – छिड़काव व पाउडर भुरकाव यंत्रों का उपयोग किया जाता है। फसल की कटाई के लिये हँसिये, स्वचलित व टैक्टर चलित कटाई व गहाई मशीनों का उपयोग किया जाता है। अनाज की सफाई के लिये मानव/बिजली चलित पंखों का एवं भण्डारण के लिये मिट्टी से बनाई गई एवं लोह निर्मित टंकियों का प्रयोग किया जाता है। इसी श्रृंखला में कुछ उन्नत किस्म के कृषि यंत्रों व औजारों का उल्लेख किया जा रहा है।

दो कतारों वाला बुवाई यंत्र (प्लान्टर)

इस यंत्र की संरचना में लोहे की फ्रेम पर स्वतंत्र रूप से दो यंत्र समूह हैं। जिसमें प्रथम स्थान पर छोटा हल लगा हुआ है जो कि सूखी मिट्टी की परत हटाने का कार्य करता है। इसके पश्चात दो तवीनुमा कूँड बनाने वाला यंत्र है जिससे जमीन में एक निश्चित गहराई की कूँड का निर्माण होता है। बीज की बुवाई के लिये एक चाड़ी स्थापित की गई है जिसमें बीज डालते ही तिकोनाकार स्तंभ से बीज समान मात्रा में एक चक्राकार प्लेट पर वितरित हो जाता है। इस चक्राकार प्लेट को चेन व स्प्रोकेट की सहायता से घुमाया जाता है। इस यंत्र के प्रयोग से बीज उचित मात्रा में एक छिद्र व पाइप की सहायता से कूँड़ में स्थापित हो जाता है यंत्र में लगे हुए तवेदार फावड़े मिट्टी से बीज को ढ़क देते हैं। साथ ही उसके पीछे लगे हुए दबाव पहिये से मिट्टी बीज को दबा देती है जिसके फलस्वरूप मिट्टी में उपस्थित नमी बीज के त्वरित अकुंरण में सहायक होती है।

इस यंत्र की सहायता से दो कतारों में भिन्न–भिन्न प्रकार के बीजों की उचित मात्रा में निश्चित गहराई तक बुवाई की जा सकती है साथ ही मिट्टी से उपलब्ध नमी बीजों के त्वरित अकुंरण में अधिक लाभप्रद सिद्ध होती है।

बीज एवं उर्वरक बुवाई यंत्र

ट्रैक्टर चलित तीन कतारों वाला बीज एवं उर्वरक बुवाई यंत्र का निर्माण किया गया है। इस यंत्र की विशेषता यह है कि यह 30 से.मी. चौड़ी एवं 20 से.मी. गहरी कूँड़ के दोनों ओर ढ़लान वाली सतह पर बीज व उर्वरक की बुवाई करता है (चित्र 6.1) जिसके फलस्वरूप एक तरफ कम वर्षा के समय मिट्टी की नमी ज्यादा समय तक उपलब्ध रहती है जो अधिक पैदावार में सहायक सिद्ध होती है वहीं दूसरी तरफ मिट्टी की पाली, वाष्पीकरण के द्वारा होने वाली मिट्टी में नमी के क्षरण की गति को कम करती है। इस यंत्र की सहायता से तीन कूँडों, जो 1 मी. के अन्तराल पर बनते हैं में छः कतारों में बीज व उर्वरक की उचित मात्रा में निश्चित गहराई पर बुवाई की जा सकती है। यह यंत्र शुष्क क्षेत्र की खेती में बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ है क्योंकि यहाँ कम वर्षा (100 – 450 मि.मी. प्रति वर्ष) होती है। वर्षा से ज्यादा से ज्यादा मात्रा में मिट्टी में नमी का शोषण करना और शोषित नमी को किफायती तरीके से बीज के अंकुरण से फसल के पकने तक सुचारू रूप से उपयोग करना ही शुष्क खेती की सफलता है, इस उद्देश्य को यह यंत्र आसानी से पूर्ण करता है।

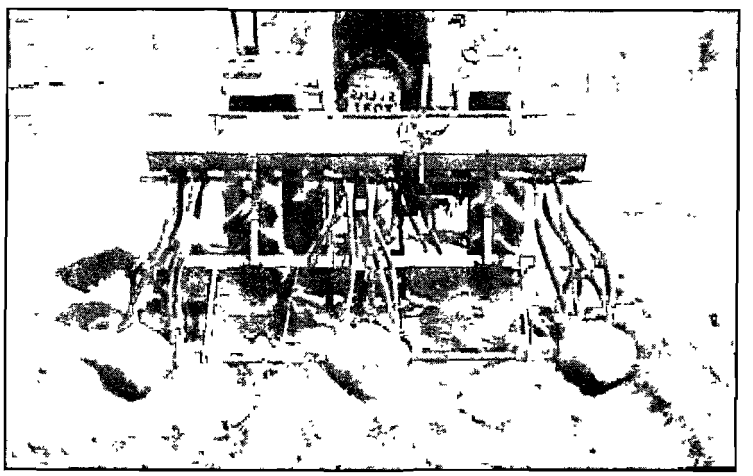

चित्र 6.1. ट्रैक्टर चलित छः कतारों वाला बीज एवं उर्वरक बुवाई यंत्र

खरपतवार नियंत्रक यंत्र (व्हील हो)

यह मानव चलित खरपतवार नियंत्रक यंत्र है जिसमें लोहे की फ्रेम पर दो पहियों के पीछे लोहे की ब्लेड स्थापित की गई है जिसे एक व्यक्ति आगे–पीछे घुमाकर चला सकता है। यह यंत्र खरपतवार, जो कि फसलों के शत्रु हैं भूमि की उर्वरक शक्ति, नमी, धूप एवं स्थान का उपयोग करके फसलों को कमजोर बनाते हैं साथ ही कीड़े–मकोड़ों को भी शरण प्रदान करते हैं को नियंत्रित करता है (चित्र 6.2)। इस यंत्र के उपयोग से मिट्टी भी भुरभुरी हो जाती है जिससे पानी सोखने की क्षमता

बढ़ जाती है जो अधिक पैदावार में सहायक सिद्ध होती है। इस यत्र की सहायता से एक व्यक्ति 85 – 90 घण्टों में प्रति हैक्टर की निराई का कार्य आसानी से पूर्ण कर सकता है।

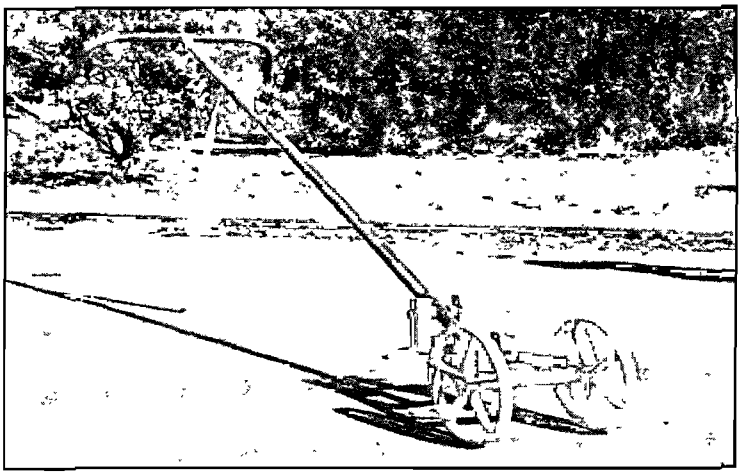

चित्र 6.2. मानव चलित खरपतवार नियंत्रक यंत्र (व्हील हो)

मिट्टी की सतह तोड़ने वाला यंत्र

शुष्क क्षेत्र में थोडी मात्रा में कम समय के लिये वर्षा होना साधारण बात है इसके साथ मिट्टी की विशेष सरंचना के कारण बुवाई के बाद खेतों में मिट्टी की ऊपरी सतह पर एक परत जम जाती है जो बीजों के अकुंरण में बाधा उत्पन्न कर पैदावार में कमी कर देती है। इस मिट्टी की सतह को तोडने के लिये मानव चलित यंत्र बनाया गया है। जिसकी संरचना के अनुसार एक लोहे की फ्रेम में दॉतेदार बेलन लगाया गया है जिसके पीछे एक " वी " आकार की ब्लेड लगायी गई है। इस यंत्र को एक व्यक्ति आसानी से आगे–पीछे की ओर चलाकर मिट्टी की सतह तोडने का कार्य कर सकता है। यह यंत्र मिट्टी की सतह तोडने के साथ–साथ खरपतवार नियंत्रण का भी कार्य करता है। इस यत्र की कार्य क्षमता 90 – 100 घण्टे प्रति हैक्टर है।

दाँतेदार हँसिया

उन्नत किस्म के दॉतेदार हॅसिये का निर्माण किया गया है जिसमें उचित घुमाव के साथ आंतरिक सतह पर दॉतेदार धारियॉ बनी हुई हैं (चित्र 6.3)। इस औजार से फसल की कटाई करने में कम समय के साथ–साथ ऊर्जा भी कम लगती है जिसके फलस्वरूप कम समय मे ज्यादा से ज्यादा क्षेत्र में कटाई का कार्य किया जा सकता है। इस औजार की कार्य क्षमता 35 – 40 मानव घण्टे प्रति हैक्टर है।

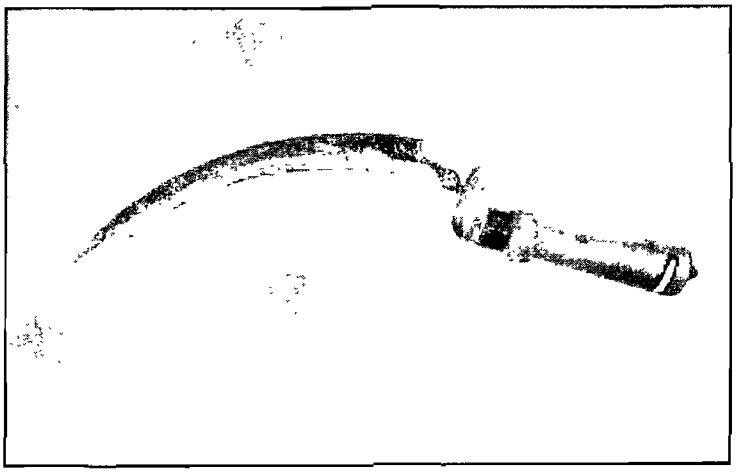

चित्र 6.3. उन्नत किस्म का दाँतेदार हँसिया

घास व चारे की गाँठ बनाने की मशीन

घास व चारे का सूखे के समय महत्व बढ़ जाता है। अच्छी वर्षा वाले वर्ष में पैदा हुए घास व चारे को कम से कम जगह में सुरक्षित रखने के लिये गाँठ बनाने की आवश्यकता पड़ती है। इस समस्या को ध्यान में रखते हुए ट्रैक्टर के पी.टी.ओ. धुरी द्वारा चलित घास व चारे की गाँठ बनाने वाली मशीन का निर्माण किया गया है। इस मशीन में एंगल आयरन व लोहे की चद्दरों की एक पेटी बनाई गयी है जिसे लोहे की फ्रेम पर चार लोहे के पहियों पर स्थापित किया गया है। इन पहियों की सहायता से मशीन को एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से ले जाया जा सकता है। मशीन की पेटी के अन्दर दोनों तरफ लोहे की प्लेटें लगाई गई हैं जो लोहे की धुरी घुमाने पर आगे व पीछे की ओर घूमती हैं। इन प्लेटों को ट्रैक्टर के साथ जोड़कर घुमाया जाता है जिससे पेटी के अन्दर दबाव बनाया जा सके। इस मशीन को क्रिया के समय दोनों प्लेटों को पीछे की ओर घुमाकर पेटी में घास व चारा भर दिया जाता है। उसके बाद पेटी को चारों तरफ से बंद करके दोनों प्लेटों को पुनः आगे की तरफ दबाव के साथ घुमाया जाता है जिसके फलस्वरूप पेटी में भरा घास व चारा एक तिहाई आयतन में संकुचित हो जाता है जिसे तार से बाँधकर पेटी से बाहर निकालकर रख दिया जाता है। इस मशीन की सहायता से 6–8 क्विंटल प्रतिदिन की दर से घास व चारे की गाँठ बनाई जा सकती है। उन्नत किस्म के कृषि यंत्रों के उपयोग से कम समय व कम लागत में अधिक से अधिक पैदावार प्राप्त कर सकते हैं।

7 बिरानी बाड़ी : पश्चिमी राजस्थान में सीमित जल से तरबूज व खरबूजे की पारम्परिक खेती

जबरदान कविया, नरेन्द्र देव यादव एवं हरपाल सिंह

राजस्थान के उत्तरी भाग में जल स्तर बहुत नीचे होने के कारण यह सरलता से उपलब्ध नहीं हो पाता है। यहाँ के निवासी तलइयाँ, टांके तथा अन्य तरह से वर्षा जल संग्रहण कर अपनी तथा पशुधन की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। इस क्षेत्र में सीमित जलापूर्ति से सीमित सब्जी उत्पादन करना भी कुछ जातियों का व्यवसाय रहा है। सीमित जल से सब्जी उत्पादन में तरबूज व खरबूजे की खेती मुख्य रही है। राजस्थान के रेतीले भू–भाग में इनकी खेती करना भी एक विशेष तकनीक है। इस तरह तरबूज व खरबूजे की खेती करने का पारम्परिक ज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी यहाँ के किसानों को मिलता रहा है। बिरानी बाड़ी लगाने के पारम्परिक ज्ञान को बीकानेर के आसपास के गाँव गिगासर, सागर तथा कनासर आदि से कलमबद्ध किया गया है। वैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर किसानों के लिये यह तकनीक बहुत उपयोगी पाई गई क्योंकि भूमिगत सीमित जल की सीमितता को देखते हुए न केवल राजस्थान बल्कि अन्यत्र जहाँ भी सीमित जल उपलब्ध है वहाँ ऐसी खेती को प्रोत्साहन दिया जाए तो छोटे व गरीब किसान जीविका चला सकते हैं। बिरानी बाड़ी से तरबूज व खरबूजे की खेती करने में भू–संरक्षण, नमी–संग्रहण, जल–व्यवस्था तथा मौसम की अनुकूलता आदि भी इस पारम्परिक तकनीकी ज्ञान में शामिल है।

बिरानी बाड़ी लगाने का प्रचलन राजस्थान में बीकानेर जिले के गाँवों में ही अधिक है। मुख्यतः माली लोग तरबूज व खरबूजे की खेती बहुत ही सीमित जल से करते हैं। बीकानेर संभाग के कई गाँवों में बिरानी बाड़ी लगाकर सब्जी उत्पादन किया जाता था। विगत तीन दशकों में नलकूपों की सुविधा होने से नहरी क्षेत्र में यह परम्परा कम हो रही है। बिरानी बाड़ी लगाने का पारम्परिक ज्ञान माली समाज के अलावा अन्य जातियों जैसे नायक, कुम्हार तथा संत लोगों ने भी लिया है।

रेगिस्तानी क्षेत्र में बिरानी बाड़ी लगाना वरदान बन सकता है। किसान सूखे की स्थिति में भी कम से कम पानी के उपयोग से आमदनी ले सकता है। प्रति हैक्टर क्षेत्रफल में बिरानी बाड़ी की फसल लेने में होने वाली आमदनी तथा व्यय का ब्यौरा तालिका 7.1 में दिया गया है। आय–व्यय के आधार पर प्रति हैक्टर शुद्ध लाभ 12,820 रूपये (वर्ष 2004) आता है। अतः किसान बिरानी बाड़ी की खेती कर सूखे की स्थिति में भी लगभग 10 – 12 हजार रूपये प्रति हैक्टर का शुद्ध लाभ कमा सकता है।

बिरानी बाड़ी लगाने का शुभारम्भ शिवरात्रि से तरबूज व खरबूजे की बुवाई करके करते हैं। बिरानी बाड़ी निम्न प्रकार से लगाते हैं –

- बिरानी बाड़ी लगाने के लिये पहले वर्ष वर्षा के अंतिम दिनों में खेत में दो बार हैरो चलाकर जमीन जोतने से शुरूआत करते हैं। सर्दियों में वर्षा होने पर उसी खेत को हैरो से जोतकर पाटा देकर खेत खाली रखते हैं।
- शिवरात्रि से पहले (फरवरी) खेत में 1 मीटर व्यास के थाले (कोरिये) पंक्ति से पंक्ति की दूरी 1 मीटर रखते हुए जमीन को पोली बनाते हैं।
- थालों की पंक्तियाँ संभवतः दक्षिण–पश्चिम दिशा के विपरीत बनाते हैं।
- थाले बनाने की प्रक्रिया के साथ वायु गतिरोधक, छोटी पंक्तियाँ, थालों की पंक्तियाँ के बीच में सूखी सिणियाँ व खींप (वनस्पति) को दबाकर बनाते हैं ताकि गर्मियों में रेत न उड़े तथा बेलें उस पर चढ़ जाएं (चित्र 7.1)।
- बीज को बुवाई से पहले उपचारित करते हैं। उपचारित करने के लिये बीज में राख मिलाकर टाट पट्टी में पोटली बांध कर दो दिन तक भिगोकर फिर उसे जमीन में दबा देते हैं तथा तीसरे दिन सुबह बुवाई कर देते हैं। कुछ किसान बीज को केवल दो रात पानी में भिगोकर रखते हैं। बीज का इस तरह उपचार करने से इसमें जड़े तथा अकुंरण का फुटाव हो जाता है।
- बीज की बुवाई करते समय हर थाले के बीच में 1 लोटा (4 लीटर) पानी ड़ालकर गीली रेत हटाकर 15 से. मी. गहरा गड्ढा बना देते हैं। इसमें अंकुरित हुए बीज ड़ालकर ऊपर हटाई हुई गीली रेत से पाट देते हैं तथा थोड़ी सी सूखी रेत ऊपर डाल देते हैं ताकि नमी न उड़ जाये।
- लगभग 5 दिन बाद बीज उगने लगते हैं तथा 8 दिन में अकुंरित होकर जमीन से बाहर आ जाते हैं।
- जमीन से निकले हुए हर पौधे के चारों ओर मिट्टी को पग से दबा देते हैं, जिससे नमी बनी रहे।
- इस तरह अंकुरित पौधे, बेलों के रूप में पसरने लगते हैं और लगभग दो माह बाद अक्षया तृतीया (मई) तक फूल आने लगते हैं।
- गर्मियों में बेलों के तातों को आमने–सामने से मिला देते हैं ताकि आंधियों में बेलें इधर–उधर न बिखरें।
- दुबारा सिंचाई के लिये कुशल माली बुवाई के दो माह बाद ही लगभग 5 लीटर जल प्रत्येक थाले में, बेल के चारों ओर गहरा कूंड़ा (घेरा) बनाकर, डाल कर ऊपर से उसे रेत से ढ़क देते हैं।
- तरबूज व खरबूजों की बेलों पर लाल भृंग दिखाई देने पर उपलों की राख छानकर उस पर बुरक देते हैं।

तालिका 7.1. बिरानी बाड़ी के आय – व्यय का लेखा – जोखा (वर्ष 2004)

क्र. सं	कार्य	विवरण	छर रु/ ईकाई	कुलराशि रू
1	खेत की तैयारी	ट्रैक्टर चलित हैरो द्वारा तीन जुताई । 0.75 हैक्टर प्रति घण्टा जुताई की दर से खेत की तैयारी करने में कुल 2.25 घण्टे लगेगें ।	200	450
2	पाटा लगाना	एक बार पाटा लगाने की आवश्यकता होगी तथा इसमें एक घण्टे का समय लगेगा।	200	200
3	खेत के चारों ओर कांटो की बाड लगाना	13 श्रमिक दिवस।	90	1170
4	क्षरणरोधी कतार व थाले बनाना (कतार से कतार की दूरी 1.5 मी. व पौधे से पौधे की दूरी 1.25 मी.)	21 ऊँटगाड़ी खीप की कटाई व ढुलाई के लिये 13 श्रमिक दिवस, बाढ़ लगाने के लिये 7 श्रमिक दिवस तथा थाले बनाने में 20 श्रमिक दिवस लगेगें। इस प्रकार कुल 40 श्रमिक दिवस लगेगें।	90	3600
5	बीज की मात्रा	खरबूजे का बीज : 1.0 कि. ग्रा. तरबूज का बीज : 2.5 कि. ग्रा. कुल बीज : 3.5 कि. ग्रा.	60	210
6	बीजोपचार के बाद बुवाई (दो दिन तक) : बुवाई के लिये गढ्ढे (कोरिये) बनाना तथा थाले के ऊपर से सूखी मिट्टी की परत हटाना और बुवाई करना।	2 श्रमिकों द्वारा फावड़े से थाले के ऊपर की मिट्टी हटाना, 3 श्रमिकों द्वारा थालों के बीच मे बीज बोने के लिये गढ्ढे (कोरिये) बनाना तथा थालों में पानी डालना, 5 महिला श्रमिकों द्वारा बुवाई तथा 3 श्रमिकों द्वारा बुवाई के बाद कोरियों को गीली मिट्टी से भरना व इन कोरियों पर सूखी मिट्टी की परत चढाना। इस प्रकार कुल 8 पुरूष श्रमिक दिवस व 5 महिला श्रमिक दिवस की आवश्यकता होगी।	90 70	720 350 1070
7	प्रत्येक कोरिये में (एक लोटा) 4 लीटर पानी ड़ालना।	कुल 2 ट्रैक्टर टैंकर पानी की आवश्यकता होगी (टैंकर की भराव क्षमता 3000 लीटर)	250	500
8	अकुंरित पौधों की देखभाल करना, पौधों के चारों ओर मिट्टी दबाना, पशु पक्षियों से अंकुरित पौधों को बचाना, पौधों की छटाई करना (एक थाले में केवल दो पौधें) तथा बेलों के तन्तुओं को बांधना	रोजाना 1 श्रमिक लगभग 10 दिन तक यह कार्य करेगा। इसके अलावा चार बाल श्रमिकों की आवश्यकता होगी। इस प्रकार कुल 10 पुरूष श्रमिक दिवस व 16 बाल श्रमिक दिवस लगेगें।	90 40	900 640 1540
9	बाड़ी की देखभाल, कटाई (तुड़ाई) व मंडी में ले जाकर बेचना आदि।	कुल दिवस* महिला 78 बाल 194 पुरूष 58	70 40 90	5460 7760 5220 18440

सकल लागत 27180

सकल आमदनी (30 मई से 13 सितम्बर तक) 40000

शुद्ध लाभ प्रति हैक्टर 12820

* कुल दिवस का माहवार विवरण

श्रमिक	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	कुल दिवस
महिला	3	3	3	20	20	20	9	78
बाल	20	30	40	40	35	20	9	194
पुरुष	0	0	3	13	20	13	9	58

- बीज की बुवाई के लगभग ढ़ाई से तीन माह बाद छोटे आकार के तरबूज (लोइया) तथा खरबूजे मंडी में बेचने लायक हो जाते हैं (चित्र 7.2)। सब्जी के लिये लोइया के अच्छे भाव मिलते हैं;
- मंडी में प्रातः काल बेचने ले जाने के लिये प्रायः खरबूजों को पहले दिन शाम को तोड़ कर टोकरियों में भर लेते हैं तथा कच्चे तरबूजों को उसी रोज प्रातः जल्दी तोड़तें हैं;
- *शिवरात्रि (फरवरी – मार्च) में लगाई हुई बिरानी बाड़ी में आश्विन (अक्टूबर) माह तक* आमदनी मिलती है; व
- आखिरी दिनों में तथा बीच में चुने हुए फलों को पकाकर अगली फसल के लिये बीज तैयार कर लेते हैं।

चित्र 7.1. बीकानेर क्षेत्र में पनपती तरबूज–खरबूजे की फसल का दृश्य (बिरानी बाड़ी)

चित्र 7.2. पके हुए तरबूजों को तोड़ती ग्रामीण बालिका

II चारा उत्पादन एवं पशुधन प्रबन्धन

8 भू–उपयोग योजना : शुष्क क्षेत्रों हेतु एक घास आधारित कृषि पद्धति

कालीचरण सिंह

मरुस्थलीय क्षेत्रों में पशुपालन आजीविका का एक मुख्य साधन रहा है जबकि इन क्षेत्रों में चारा उत्पादन बहुत ही कम है और अकाल वाले सालों में चारे की कमी बहुत अधिक हो जाने पर चारा दूसरे राज्यों से मंगाना पड़ता है। अनिश्चित और कम वर्षा तथा लम्बे समय तक वर्षा न होना, हवाओं का तेज चलना, रेत का उड़ना तथा बालू मिट्टी का ऊपरी सतह से जल्दी सूखना और उड़ना आदि ऐसे कारण हैं जिनकी वजह से मरु क्षेत्रों में खेती करना बहुत कठिन और जोखिम भरा है। इन क्षेत्रों में बारानी खेती के जोखिम को कम करने के लिये घास आधारित कृषि पद्धति को अपनाना अच्छा साबित हुआ है। घास आधारित कृषि पद्धतियों का सघन कार्यक्रम अपनाकर पशुपालन में वृद्धि के साथ चारे की कमी को दूर करके मरूभूमि पर टिकाऊ उत्पादन किया जा सकता है।

मरु क्षेत्रों में चारे के लिये घास की खेती से चारा उत्पादन, भू–संरक्षण आदि के लाभ को देखते हुए लेफार्मिगं, पट्टीदार खेती, घास–दलहन मिश्रण एवं चारागाह विकास पर काजरी द्वारा बहुत अध्ययन किया गया है और महसूस किया गया है कि इन क्षेत्रों में किसान द्वारा अपनी 25 प्रतिशत भूमि पर घासों की खेती अपनाकर उसकी भूमि सुधार एवं संरक्षण के साथ–साथ टिकाऊ पैदावार को बढ़ाया जा सकता है।

कृषि चारागाह पद्धति कृषि वानिकी के अन्तर्गत एक विशेष प्रकार की पद्धति है जिसमें एक ही भूखण्ड पर घासों/घास–दलहनी फसल मिश्रण या चारे की फसलों, वृक्षों का उत्पादन लगातार या क्रमबद्ध तरीकों से किया जाता है। इस प्रकार की पद्धति से निम्न लाभ हैं –

- एक ही भू–खण्ड पर अनेक प्रकार का उत्पादन एक साथ प्राप्त किया जा सकता है जैसे चारा, ईधन, गोंद, लकड़ी, फल, बीज आदि जिसमें किसान को अच्छी आमदनी होती है।
- चारागाहों में चारे वाले वृक्ष/झाड़ियाँ एवं दलहनी पौधे रहने से घास की कमी के समय इनसे चारा मिलता है। चारे वाले वृक्षों/झाड़ियों एवं दलहनी चारों से पशुओं को उचित मात्रा में लवण (मिनरल्स) तथा प्रोटीन मिलते हैं लेकिन इनसे पशुओं को ऊर्जा कम मिलती

है परन्तु घासों से उचित ऊर्जा मिल जाती है। अतः कृषि चारागाह पद्धति में इन सभी का मिश्रण होने से पशुओं को सन्तुलित चारा मिलता है।

- बेमौसम एवं कम वर्षा का उपयोग बहुवर्षीय घासों एवं वृक्षों द्वारा कर सकते हैं। इससे कम वर्षा वाले सालों में भी पौष्टिक चारा प्राप्त होता है।

- घास, दलहनी चारा, पेड़ों तथा झाड़ियों को एक साथ लगाने से भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है तथा भूमि की उर्वरता का संरक्षण होने लगता है। मिट्टी का कटाव, पानी का बहाव तथा कटाव द्वारा मृदा तत्वों की रोक होती है। पूरे वर्ष हरा और पौष्टिक चारा मिलता रहता है।

- घास, दलहनी पौधे और फलदार वृक्ष एक साथ रहने से फल तथा चारा एक साथ मिल जाता है तथा किसान को आमदनी में पर्याप्त वृद्धि की संभावना बनी रहती है। इसके अलावा किसान पूरे समय अपने समय का सदुपयोग भी कर सकता है।

- सूक्ष्म जलवायु और पर्यावरण में सुधार होता है।

- ऐसे क्षेत्रों में जहाँ हर साल चारे के अभाव में पशु पालन कठिन होता है। उन स्थानों के लिये वर्षा पर निर्भर कृषि चारागाह पद्धति ही एक मात्र विकल्प है।

कृषि अयोग्य गोचर भूमि पर वानिकी चारागाह

कृषि वानिकी के अन्तर्गत वन चारागाह पद्धति भी है। इस पद्धति में चारा प्रदान करने वाली घासों के साथ–साथ पेड़ों एवं झाड़ियों को लगाते हैं। साधारणतः यह पद्धति कृषि अयोग्य भूमि में अपनायी जाती है। कंकरीली, पथरीली एवं ढालुनुमा भूमि को उपयोगी बनाने के लिये काजरी के गोचर भूमि प्रबंधन एवं भू–संरक्षण क्षेत्र भोपालगढ़ में एक अध्ययन किया गया। इस क्षेत्र में कई जगह नंगी चट्टाने हैं और 80 प्रतिशत क्षेत्र में मिट्टी की गहराई 0–8 से.मी. है। इस गोचर की जमीन कृषि योग्य नहीं है। इस क्षेत्र की औसत वर्षा 363 मि.मी. है। वर्षा अनिश्चित और कम तथा लम्बे समय तक न होने के कारण इस क्षेत्र में प्रायः अकाल पड़ता है।

इस क्षेत्र में 1985 में सात प्रकार के चारा वृक्ष एवं झाडियाँ लगाई। वृक्षों और झाडियों को 10 X 4 मीटर के अन्तर पर लगा कर इनके बीच में धामण घास लगाई गई। पन्द्रह वर्ष पुराने वृक्ष और झाडियों की जीवित दर, ऊँचाई, कॉलर डाईमीटर, क्राउन डाईमीटर, डी.बी.एच. और उनके बीच में घास की पैदावार तालिका 8.1 में दी गई है। पन्द्रह वर्षों के बाद वर्ष 2004 में इजरायली बबूल, कुमट, नूतन और नीम की जीवित दर क्रमशः 96.7, 81.7, 78.3 और 53.3 प्रतिशत रही। घास की पैदावार इजरायली बबूल और नूतन के अलावा सभी वृक्षों के साथ लगभग बराबर रही। वृक्ष रहित प्लाट में घास की पैदावार

13 क्विंटल प्रति हैक्टर सूखे चारे के रुप में मिली लेकिन इजरायली बबूल और नूतन के साथ घास की पैदावार क्रमशः 7.5 और 6.1 क्विंटल प्रति हैक्टर ही मिली (तालिका 8.1)। इसके अलावा इजरायली बबूल और नूतन को लगाने के 12 वर्ष बाद तक घास की पैदावार पर विपरीत असर नहीं पड़ा। चौदह वर्ष पुराने इजरायली बबूल, सिरस, नूतन, मोपेन, बाइनेटा, नीम और कुमट से पत्तीदार सूखा चारा क्रमशः 5.0, 4.2, 8.9, 1.4, 4.2, 6.5 और 5.0 किलोग्राम प्रति वृक्ष मिला और शाखाओं से प्राप्त जलाऊ लकड़ी क्रमशः 168.5, 10.5 29.5, 2.5, 2.3, 8.8 और 43.5 किलोग्राम प्रति वृक्ष मिली। शाखाओं से प्राप्त जलाऊ लकड़ी और पत्तीदार चारे का अनुपात सबसे अधिक इजरायली बबूल (13.6) और इससे कम कुमट (8.8), नूतन (3.3), सिरस (2.5), मोपेन (1.8),नीम (1.4) और बाइनेटा (0.6) में मिला। कम अनुपात अधिक पत्ती दार चारे और कम जलाऊ लकड़ी का सूचक है।

तालिका 8.1. पथरीली गोचर भूमि पर 15 वर्ष पुराने चारा वृक्षों और झाड़ियों का निष्पादन

वृक्ष	जीवित दर, प्रतिशत	ऊँचाई, (से.मी.)	कॉलर डाईमीटर, (से.मी.)	क्राउन डाईमीटर, (से.मी.)	डी.बी.एच., (से.मी.)	सूखा चारा, (क्विंटल / हैक्टर)
इजरायली बबूल	96.7	485.7	16.3	663.0	11.0	7.5
कुमट	81.7	377.8	10.5	593.3	8.0	10.8
नूतन	78.3	268.5	7.9	335.9	—	6.1
नीम	53.3	467.4	14.9	393.1	9.3	9.9
मोपेन	21.7	228.6	6.4	236.1	—	11.0
सिरस	16.7	416.1	10.0	335.8	6.9	11.5
बाइनेटा	13.3	475.5	10.4	293.9	6.8	10.7
वृक्ष रहित	—	—	—	—	—	13.0

सिरस, बाइनेटा, नीम, इजरायली बबूल, नूतन, कुमट और मोपेन के पेड़ों की ऊँचाई में मौजूदा वार्षिक वृद्धि (सी.ए.आई.) क्रमशः 42.2, 39.6, 17.7, 16.7, 10.3, 9.8 और 4.8 से.मी. थी। नूतन में लाइन से लाइन के बीच 10 मीटर के अन्तर में जड़ो (सकर्स) ने काफी फैलाव किया। इसका पत्तीदार चारा भी सबसे अधिक (8.9 किलोग्राम प्रति वृक्ष) मिला। अधिक फैलाव के कारण गोचर की हरियाली और भेड़ बकरी की चराई के लिये पथरीली धरती पर पनपने वाली यह एक उत्तम चारा झाड़ी है।

पन्द्रह वर्ष पुराने कुमट के पेड़ों से औसत बीज तथा बीज के छिलकों का चारा क्रमशः 335.8 और 603.3 ग्राम प्रति वृक्ष मिला। बीज न्यूनतम 20 ग्राम और अधिकतम 1280 ग्राम और सूखी फली के छिलकों का चारा न्यूनतम 40 ग्राम और अधिकतम 2250 ग्राम प्रति वृक्ष मिला।

राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र में कृषि अयोग्य पथरीली और कंकरीली भूमि का क्षेत्रफल पूरे क्षेत्रफल का करीब 10 प्रतिशत है। इस क्षेत्र की कृषि अयोग्य चट्टानी गोचर भूमि सुधार हेतु केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र

अनुसंधान संस्थान, जोधपुर के गोचर भूमि प्रबन्धन एवं भू–संरक्षण क्षेत्र भोपालगढ़ में वानिकी चारागाह पर 15 वर्ष तक किये गये अनुसंधान से पता लगा कि चारा वृक्ष इजरायली बबूल, कुमट, नूतन तथा मोपेन अच्छे साबित हुए। इनमें से कुमट और मोपेन लम्बे समय तक रहने वाले वानिकी चारागाह के लिये उपयुक्त हैं। इनके अलावा इजरायली बबूल और नूतन भी अच्छे साबित हुऐ। परन्तु इजरायली बबूल ने 12 वर्ष के बाद अपने तनों के फैलाव के कारण लाईनों के बीच की जगह को घेर लिया और घास की पैदावार को कम कर दिया। इसी प्रकार नूतन के फैलाव से घास की पैदावार पर विपरीत प्रभाव पडा। लेकिन चट्टानी गोचर को तेजी से हरा भरा बनाने के लिये इजरायली बबूल एक बहुउद्देश्यीय वृक्ष है। नीम के वृक्ष को गोचर में छाया के लिये लगाया जा सकता है। इनके अलावा बेर और औषधीय पौधा गुग्गुल भी पथरीली जमीन पर घास के साथ लगाया जा सकता है।

चट्टानी भूमि पर वृक्ष की खेती : चट्टानी भूमि पर वृक्ष की खेती 3 x 3 मीटर के फासले पर कुमट लगाकर कर सकते हैं। चौदह वर्ष पुराने वृक्ष, कुमट की औसत ऊँचाई और कॉलर डाईमीटर (वर्ष 1999 में) क्रमशः 302.0 और 7.1 से.मी. थी। वर्ष 2000 में बढ़कर औसत ऊँचाई और कॉलर डाईमीटर क्रमशः 316.2 और 7.3 से.मी. हो गया व डाईमीटर ब्रेस्ट हाइट पर (डी.बी.एच.) 4.6 से.मी. था। औसत बीज 201 ग्राम प्रति वृक्ष मिला। बहुउद्देश्यीय वृक्ष कुमट चट्टानी गोचर भूमि के लिये उत्तम है। इससे प्राप्त पत्ती तथा फली चारा, बीज, गोंद और जलाऊ लकड़ी अच्छी आमदनी का साधन है।

चट्टानी गोचर पर उन्नत चारागाह : चट्टानी गोचर पर धामण + बुरड़ा घास के चारागाह में वर्ष 1990 से पशु चराई, चराई क्षमता के अनुसार चराई चक्र पद्धति से कराई जा रही है। इन घासों पर चराई का उनकी उत्पादकता पर विपरीत असर नहीं पाया गया परन्तु कम वर्षा वाले सालों में उत्पादकता में कमी आयी। कम वर्षा वाले वर्ष 1999 और 2000 में घास की पैदावार 13 क्विंटल प्रति हैक्टर सूखा चारा मिला जबकि सबसे अधिक वर्षा के साल 1996 में 22 क्विंटल प्रति हैक्टर सूखा चारा मिला। वर्ष 1997 में करीब औसत वर्षा के साल में 20 क्विंटल प्रति हैक्टर सूखा चारा मिला (तालिका 8.2)।

तालिका 8.2. चट्टानी गोचर पर घास की पैदावार पर वर्षा का प्रभाव

वर्ष	वार्षिक वर्षा (मि.मी.)	सूखा चारा क्विंटल/हैक्टर
1996	709	22
1997	350	20
1998	330	11
1999	260	13
2000	259	13

औसत वार्षिक वर्षा 363 मि.मी.

लेफार्मिगं

मरु क्षेत्र में जहाँ की भूमि बलुई है उसकी जल धारण क्षमता बहुत कम होती है जिसमें जल और पोषक तत्व बरसाती पानी के साथ नीचे की सतहों में चले जाते हैं। पानी और हवा द्वारा मृदा के ऊपरी सतह का कटाव होता रहता है। इसमें मिट्टी के साथ–साथ पोषक तत्वों का भी ह्रास होता रहता है। यदि ऐसे खेतों को कुछ वर्षो के लिये चारे वाली उन्नत बहुवर्षीय घासों (अंजन, धामण, आदि) से आच्छादिंत रखा जाये तो मिट्टी और पोषक तत्वों का ह्रास रोका जा सकता है। अनुसंधान से यह ज्ञात हुआ है कि जमीन में घासों को उगाने से कार्बन (ह्यूमस) की मात्रा बढ़ जाती है। घास अपनी जड़ों द्वारा भूमि के नीचे की परतों से पोषक तत्वों का दोहन करके ऊपरी परतों में जमा कर देती है। घासें मिट्टी के कणों को आपस में बांधने का कार्य भी करती हैं व जलधारण क्षमता बढ़ाती है। यह सब घासों की जड़ों, संख्या, गहराई तथा फैलाव पर निर्भर करता है। अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि यदि अंजन घास को 6 से 8 साल तक खेत में रखा जाय तो उससे प्रतिवर्ष लगभग 20–30 क्विंटल प्रति हैक्टर सूखा चारा तो मिलता ही है साथ ही मिट्टी का कटाव भी नहीं होता। भूमि की उर्वरा शक्ति और जल धारण क्षमता में वृद्धि होती है। घास लेने के छः से आठ वर्ष बाद बाजरे की फसल उगाने पर पैदावार में वृद्धि होती है। इस पद्धति से उर्वरकों की बचत की जा सकती है। इस कृषि पद्धति को लेफार्मिगं कहते हैं।

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में किये गये अध्ययन में अंजन घास को कई सालों तक खेत में रखने के बाद बाजरे की फसल ली गई और पाया कि अंजन घास को चार, छः और आठ साल तक खेत में उगाने से क्रमशः 97, 397 और 445 किलोग्राम प्रति हैक्टर बाजरे की पैदावार अधिक प्राप्त हुई।

अध्ययन से यह भी मालूम हुआ कि घास के अवशेष मिट्टी में मिलाने से बाजरे की फसल की बढ़वार शुरुआत में अच्छी होती है (तालिका 8.3)। इससे लाभ यह होता है कि यदि फसल के बीच में कभी पानी नहीं बरसे या कमी हो जाये तो फसल सूखने से बच सकती है। इस स्थिति में फसल कुछ समय पूर्व पक जाती है तथा नुकसान कम हो जाता है जबकि धीमी गति से बढ़ने में सूखे की स्थिति में फसल चौपट भी हो सकती है। इसके अलावा यह भी देखा गया है कि ज्यादा दिनों तक घास उगाने वाले खेतों में नमी की मात्रा ज्यादा पाई गई (तालिका 8.4)। इसका कारण घास की जडों का ज्यादा दिनों तक मिट्टी में रहने से इसकी संरचना में सुधार तथा जल धारण क्षमता में बढ़ोतरी को माना जा सकता है क्योंकि कूपरन्ध्रता भी घास उगाने की समयावधि बढने से बढी। इसका अर्थ यह हुआ कि हवा पानी का आवागमन सुचारु रुप से इन खेतों की मिट्टी में हुआ जिसका फसल की पैदावार पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

तालिका 8.3. घास के अवशेष का बाजरे की बढ़वार और पैदावार पर प्रभाव

खेत की स्थिति	पौधे की ऊँचाई, (से.मी.)			पैदावार, (क्विंटल / हैक्टर)
	बुवाई के 39 दिन बाद	बुवाई के 55 दिन बाद	बुवाई के 75 दिन बाद	
घास अवशेष सहित	117.0	181.4	203.9	25.7
घास अवशेष रहित	96.8	175.0	203.1	23.0

तालिका 8.4. घास उगाने की समयावधि का भूमि की नमी (प्रतिशत) पर प्रभाव

घास उगाने की समयावधि (वर्ष)	ऊपरी सतह (0–15 से.मी.)				निम्न सतह (15–30 से.मी.)			
	नमी के लिये भूमि के नमूने लेने का समय (बाजरा बुवाई के बाद, दिनों में)							
	22	39	55	75	22	39	55	75
चार वर्ष	8.0	7.1	3.5	7.3	8.5	6.7	4.9	6.7
छः वर्ष	8.0	7.2	3.1	7.6	7.7	6.6	5.3	8.1
आठ वर्ष	8.4	7.2	4.2	8.4	8.0	6.7	6.2	8.2

वायुरोधक पट्टीदार खेती

मरुक्षेत्रों में बारानी खेती के जोखिम को कम करने के लिये पट्टीदार खेती घासों के साथ अच्छी साबित हुई है। रेतीली भूमि में मिट्टी के कटाव को रोकने के लिये घास पट्टियाँ हवा के विपरीत दिशा में लगाने से मिट्टी के कटाव को कम किया जा सकता है और घास की पट्टियों के बीच में आसानी से खेती की जा सकती है। घास और फसल की पट्टी का अनुपात 1:3 अच्छा साबित हुआ है। पश्चिमी राजस्थान के रेतीले और कम वर्षा वाले क्षेत्र के लिए सेवण घास उपयुक्त हैं। इन घासों से प्रतिवर्ष पौष्टिक चारा मिलता है। इसके अलावा घासें गर्मी के महीने में तेज हवा चलने पर मिट्टी के कटाव को कम करती हैं। इस प्रकार भूमि का उर्वरापन बना रहता है। हवा द्वारा मिट्टी का कटाव कम होने से वातावरण में भी सुधार होता है। इस कृषि पद्धति द्वारा बहुवर्षीय घासों से अकाल के वर्षो में और बेमौसम की वर्षा के समय में भी चारा मिल जाता है जबकि अकाल के सालों में फसल नष्ट हो जाती है। अच्छी वर्षा वाले सालों में घास और फसल दोनों की ही अच्छी पैदावार मिलती है।

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में पट्टीदार खेती पर किये गये अध्ययन से पता लगा कि वायुरोधक सेवण घास की हवा के विपरीत लगायी गयी पट्टी के साथ मूँग और मोठ की पैदावर क्रमशः 212 और 115 किलोग्राम प्रति हैक्टर अधिक प्राप्त हुई। बीकानेर में सेवण घास और ग्वार की पट्टीदार खेती के अध्ययन में वर्ष 1983 अच्छी वर्षा वाला वर्ष हुआ जिसमें 398 मि.मी. वर्षा हुई तथा घास और फसल की पट्टी के अनुपात 1:3 (4 मीटर : 12 मीटर) में ग्वार के बीज की अधिकतम पैदावर 6.7 क्विंटल प्रति हैक्टर प्राप्त हुई। गैर मौसम वर्षा वर्ष 1983 में 204 मिमि मार्च से जून तक हुई और इसमेंसेवण घास की पैदावार 70.4 क्विंटल प्रति हैक्टर मिली। इससे स्पष्ट है कि सेवण घास की गैर मौसम वर्षा से भी चारे की पैदावार मिलती है। कम वर्षा (143 मि.मी.) वाले वर्ष 1984 में ग्वार और सेवण

घास की पैदावार क्रमशः 1.0 और 23.1 क्विंटल प्रति हैक्टर प्राप्त हुई। घास पट्टी रहित खेत में ग्वार के बीज की पैदावार वर्ष 1983 और 1984 में क्रमशः 6.5 और 1.0 क्विंटल प्रति हैक्टर प्राप्त हुई। वर्ष 1984 में घास पट्टी युक्त खेत में ग्वार के अलावा मोठ भी लगाई और मोठ के बीज की पैदावार घास पट्टी सहित और घास पट्टी रहित खेतों में क्रमशः 1.48 और 1.39 क्विंटल प्रति हैक्टर प्राप्त हुई। इससे यह भी पता लगा कि बीकानेर क्षेत्र में मोठ की पैदावार ग्वार से अधिक प्राप्त हुई। वर्ष 1985 में अकाल के कारण (वर्षा 116 मि.मी.) फसल नहीं मिली लेकिन सेवण घास के चारे की पैदावार 12.34 क्विंटल प्रति हैक्टर प्राप्त हुई। इससे स्पष्ट है कि अच्छी वर्षा वाले सालों में घास और फसल दोनों की अच्छी पैदावार मिल जाती है और कम वर्षा तथा अकाल के सालों में घास की पैदावार तो मिल जाती है लेकिन फसल की पैदावार बहुत कम अथवा बिल्कुल नहीं मिलती है।

घास दलहन मिश्रण

पशुओं के उत्तम स्वास्थ्य के लिये कम से कम 7 प्रतिशत प्रोटीन आवश्यक है और दुधारू पशुओं के लिये इससे भी अधिक प्रोटीन की आवश्यकता होती है। मरु क्षेत्र के चारागाहों में वर्षा के दिनों में जब घास हरी रहती है तब उसमें 8–10 प्रतिशत प्रोटीन होती है जो बाद में सूखने पर घटकर 2 प्रतिशत ही रह जाती है और कभी–कभी इससे भी कम हो जाती है जबकि पशु के रूमेन में पाये जाने वाले जीवाणुओं के लिये चारे में कम से कम 1.5 प्रतिशत नाइट्रोजन होना अनिवार्य है। अतः इस कमी को घासों के साथ दलहनी चारे उगाकर पूरी कर सकते हैं। दलहनी पौधें चारागाह की गुणवत्ता, उत्पादकता एवं पशुधन उत्पादन बढ़ाने के साथ–साथ भूमि की उर्वरकता भी बढ़ाते हैं जिससे खाद की बचत होती है। घासों के साथ दलहनी चारे वाले पौधे जैसे क्लाइटोरिया टरनेसिया, लवलव परपूरियस, स्टाइलो हमाटा, मोठ और ग्वार आदि की खेती लाभदायक है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में घासों के साथ मोठ और ग्वार उपयुक्त है। रेतीली भूमि में सेवण घास के साथ मोठ उपयुक्त है। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान जोधपुर के 400 मि.मी. से अधिक वार्षिक वर्षा वाले गोचर भूमि प्रबन्धन क्षेत्र बिसलपुर (पाली) पर किये गये अध्ययन में घास करड़ + स्टाइलो हमाटा दलहनी चारा घास मिश्रण में अधिकतम 42 क्विंटल प्रति हैक्टर सूखे चारे की उपज मिली। जबकि अकेले करड़ घास और स्टाइलो हमाटा से क्रमशः 33 और 14 क्विंटल प्रति हैक्टर सूखा चारा मिला। करड़ घास + स्टाइलो हमाटा दलहनी चारा मिश्रण में प्रोटीन की पैदावार अकेले घास के मुकाबले 88.1 प्रतिशत अधिक मिली।

धामण व अंजन घास और दलहनी पौधों के मिश्रित चारागाह में छः से आठ सालों के बाद जब इन घासों का चारागाह खत्म होने लगे तब कृषि योग्य भूमि में फसल (ग्वार – बाजरा) की खेती करने से इन फसलों की पैदावार में अच्छी वृद्धि और भूमि सुधार होगा। कुछ वर्ष खेती के बाद फिर इस भूमि में अंजन, धामण + दलहनी पौधों का चारागाह लगाकर ऐसा घास–फसल चक्र अपनाकर खेती करना लाभदायक है।

अकाल के समय चारा उत्पादन

पश्चिमी राजस्थान में लगभग हर तीन वर्षों में एक वर्ष अकाल पड़ता है। विषम अकाल की स्थिति में चारे की कमी से पशुओं को बचाने के लिये पहले से लगाई हुई उन्नत अंजन, सेवण बहुवर्षीय घासों के चारागाह अथवा सेवण घास के प्राकृतिक चारागाह में कम पानी देकर (फव्वारे द्वारा) लगभग एक महीने में एक कटिंग ले सकते हैं। अकाल के वर्षों में कम पानी व कम समय में इन घासों से हरे चारे का उत्पादन किया जा सकता है। पश्चिमी राजस्थान के इंदिरा गाँधी नहर परियोजना क्षेत्र में कृषि अयोग्य भूमि पर इस पद्धति द्वारा अकाल के समय चारे का उत्पादन किया जा सकता है। घास के हरे चारे को पुष्प अवस्था में काटकर सूखा चारा (हे) भी बना सकते हैं। इस सूखे चारे को चारा बैंक बनाकर सुरक्षित स्थान पर रखें और चारे की कमी के समय उपयोग में लें।

तालिका 8.5. फव्वारे द्वारा अतिरिक्त सिंचाई का सेवण घास की पैदावार पर प्रभाव

अतिरिक्त सिंचाई, (मि.मी.)	कुल पानी, (मि.मी.)	सूखा चारा, क्विंटल / हैक्टर	अतिरिक्त सिंचाई उपयोगिता (किलोग्राम / मि.मी. पानी).
0	25.7 वर्षा	12	—
40	65.7	23	28
84	109.7	28	19
92	117.7	46	37
105	130.7	45	31
120	145.7	45	28

काजरी के एक अध्ययन में फव्वारा सिंचाई विधि द्वारा सेवण घास के चारागाह में 117.7 मि.मी. की अतिरिक्त सिंचाई करके 46 क्विंटल प्रति हैक्टर सूखे चारे की पैदावार ली गयी और 37 किलोग्राम प्रति मि.मी. अतिरिक्त पानी उपयोगिता क्षमता मिली (तालिका 8.5)।

9 रेगिस्तान में चारागाह स्थापन तथा फसल, घास और वृक्षों की प्रजातियों का चयन एवं प्रबन्धन

महावीर सिंह यादव एवं सन्तोष कुमार शर्मा

राजस्थान के पश्चिमी अंचल का शुष्क क्षेत्र अनेक भौगोलिक विषमताओं जैसे अनिश्चित और कम वर्षा, रेतीली भूमि की ऊपरी सतह से नमी का जल्दी उड़ना तथा वर्षा के प्रायः लम्बे अन्तराल के कारण सूखा घोषित वर्षों में अनाज तो दूर रहा किसान को अपने दुधारू पशुओं के लिये समुचित चारे की व्यवस्था करना भी मुश्किल हो जाता है। दूसरी समस्या गांवों के चारागाहों की दयनीय स्थिति है। इसका मुख्य कारण प्रति वर्ष चारागाहों के क्षेत्र में अधिकृत एवं अनाधिकृत रूप से भी एवं बची हुई जमीन पर पशुओं की बहुत अधिक संख्या में अनियंत्रित चराई है। चारागाह सुधार की सफलता भूमि के अनुरूप अपनायी गयी तकनीक, दक्ष एवं अनुभवी क्षेत्र कार्यकर्ता तथा समयबद्ध कार्यक्रम पर निर्भर करती है। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर द्वारा चारागाह सुधार के लिये अपनाई गयी तकनीक की मूलभूत रूपरेखा इस प्रकार है –

भूमि का चयन : चारागाहों के लिये गावों में छोड़ी गयी भूमि व अन्य परती भूमि में दिनों दिन बढ़ती अन्न की समस्या को देखते हुए निरन्तर कटौती हो रही है। ऐसी जमीन की उत्पादक क्षमता बहुत कम है। अतः ऐसी भूमि में उन्नत किस्म की घास अधिक लाभदायक होगी। यह बात किसानों को समझाकर उचित कार्यक्रम के अन्तर्गत कार्य किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त भू–उपयोग वर्गीकरण के अन्तर्गत वर्ग 5 से 8 तक की भूमि जिसमें किसी प्रकार की फसल लेना संभव नहीं है चारागाह विकास के लिये दी जाती है जो इस प्रकार के विकास कार्यक्रमों में लगे लोगों के लिये एक चुनौती है। इस प्रकार चारागाह विकास के लिये आवंटित भूमि के अनुसार ही चारागाह रक्षण, उचित किस्म की उन्नत घास के बीज व बीज रोपण की तकनीक का चुनाव करना होगा।

घासों का चयन : मरु क्षेत्रों में उगने वाली मुख्य घासें रूदार धामण, मोड़ा धामण, सेवण, करड़, ग्रामणा, मुरठ, खारड़ा आदि हैं। ये घासें बहुवर्षीय हैं तथा वार्षिक घासों जैसे लापड़ा, मुरठ, झेरनिया आदि की तुलना में कई गुना पैदावार अधिक देती हैं। सेवण घास रेतीली मिट्टी व 250 मि. मी. से कम वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी होती है। रूदार धामण एवं मोडा धामण रेतीली दोमट मिट्टी में 300 मि. मी. से अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी पैदावार देती है। करड़ भारी मिट्टी एवं 400 मि. मी. से अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अधिक होती है। खारड़ा घास लवणीय मिट्टी के लिये उपयुक्त होती है। ग्रामणा एवं मुरठ घासें कम वर्षा व रेतीली मिट्टी वाले क्षेत्रों में अधिक होती है। बुरड़ा (सिम्बोपोगन) और सेहीमा घासें पथरीली एवं कंकरीली भूमि में अच्छी होती हैं। ये सभी घासें बहुवर्षीय हैं और इनसे हरी अवस्था में, फूल आने

पर 8 से 10 प्रतिशत प्रोटीन प्राप्त होती है। घासों की उन्नत किस्मों का चयन करें, जैसे रूदार धामण की काजरी 75 (मारवाड़ अंजन), काजरी 358 व मोड़ा धामण की काजरी 76 (मारवाड़ धामण) (चित्र 9.1–9.3)।

घासों के साथ दलहनी बहुवर्षीय चारे जैसे क्लीटारिया टरनेसिया और स्टाइलो हेमाटा लगाना लाभदायक है। इनसे पशुओं के लिये प्रोटीनयुक्त पौष्टिक चारा मिलता है व भूमि की उर्वरकता बढ़ती है। चारे की पैदावार 25 से 30 प्रतिशत अधिक प्राप्त होती है।

जमीन तैयार करना : बुवाई से पहले जमीन की जुताई करके खेत तैयार कर लेना चाहिये। खेत से अवांछित झाड़ियों को निकाल देना चाहिये। बोने से पहले 50 से 75 से. मी. के अन्तर पर ऊमरे (कूंड) बना लेने चाहियें।

घासों को लगाने की विधि (बुवाई) : मरु क्षेत्रों में घासों की बुवाई प्रायः जुलाई महीने में वर्षा प्रारम्भ होने पर की जाती है। बीज को 4 या 5 गुना गीली मिट्टी (अनुपात से) में मिला कर बोते हैं। मिट्टी मिले बीज आसानी से बोये जाते हैं। बुवाई 50 से 75 से. मी. के अन्तर से लाइनों में करें और बीज के ऊपर कम से कम मिट्टी आनी चाहिये। सेवण और करड़ घास की बुवाई के लिये इनके बीज ऊमरे बना कर बोना ठीक रहता है। गोलियाँ बीज, चिकनी मिट्टी व गोबर की खाद क्रमशः 250 : 3500 : 250 ग्राम के अनुपात में मिला कर बनाई जाती हैं। सेवण और करड़ घासें पुराने पौधों की कुछ जड़ें निकाल कर लगाने से भी अच्छी पनपती हैं। इनके अलावा बीज द्वारा नर्सरी में पौधें तैयार करके रोपाई द्वारा भी लगाई जाती है। ऐसे क्षेत्रों में जहाँ पानी नहीं है वहाँ रोपाई द्वारा इन घासों को लगाना संभव नहीं है। रूदार धामण व मोडा धामण के लिये 4 से 6 कि.ग्रा., सेवण के लिये 6 – 7 कि.ग्रा. व करड़ के लिये 2 से 3 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर उपयोग में लिया जाता है।

ककंरीली एवं ढालू जमीन में भू एवं जल संरक्षण माप जैसे कंटूर नालियाँ बना कर घासों के बीजों की बुवाई करें। कंटूर नालियाँ 8 से 10 मीटर के फासले पर करीब 30 से. मी. गहरी और 60 से. मी. चौड़ी ढाल के विपरीत बनावें। लवणीय भूमि में रोपाई द्वारा घास लगाने पर अच्छी फसल होती है।

चराई : पहले वर्ष पशुओं की चराई कराना ठीक नहीं है। प्रथम वर्ष में घास को कटवा कर पशुओं को खिलाना ठीक है। दूसरे वर्ष और उसके बाद चराई इस प्रकार करानी चाहिये कि पूरे गोचर को चार भागों में बाँट लें और पशुओं को तीन हिस्सों में गोचर के चारे की क्षमता के अनुसार प्रत्येक हिस्से में बारी–बारी से चरायें। चौथे हिस्से की घास को अगर संभव हो तो काट कर भविष्य में चारे की कमी के समय में पशुओं को खिलाने के लिये रखें। लेकिन यह ध्यान रखें कि अधिक चराई न कराई जावे। ऐसा करने से कम पौष्टिक व कम पैदावार देने वाली घासें पनप जाती हैं। घासों को काटकर खिलाने से चारे की

उपज अधिक होती है और चारा भी पौष्टिक मिलता है। घासों की प्रति वर्ष चराई अथवा कटाई की जानी चाहिये।

चारागाह लगाने की लागत (प्रथम वर्ष) : चारागाह लगाने के लिये प्रथम वर्ष लगभग 3500 रूपये प्रति हैक्टर लागत आती है। दूसरे वर्ष और उसके बाद रख–रखाव पर लगभग 2000 रूपया प्रति हैक्टर खर्चा आता है। गोचर सुरक्षा हेतु खाई बनाना और उसके साथ बाड़ लगाने, घास की कटाई एवं बीज इकट्ठा करने की लागत सम्मिलित नहीं है।

उत्पादन : धामण घास से लगभग 20 से 25 क्विंटल प्रति हैक्टर सूखा चारा मिलता है। जबकि सेवण व करड़ घासों से 25 से 30 क्विंटल प्रति हैक्टर सूखा चारा प्राप्त होता है। इसके अलावा धामण घास के बीज की पैदावार 50 – 70 कि. ग्रा. प्रति हैक्टर होती है।

गैर जरूरी झाडियों की कटाई : अधिक चराई के कारण चारागाहों में अधिकतर चरने योग्य घासों का सफाया हो जाता है। ऐसी हालत में न चरने योग्य व चराई में बाधा पहुंचाने वाली झाड़ियाँ जैसे हिंगोट, मुराली, रिओज, आंवल, जूंजड़ी (माईमोसा हेमाटा), खींप, बुई, आक और सिणिया धीरे–धीरे अपने आकार प्रकार और संख्या में बढ़कर चराई के काम आने वाली घासों को फिर से बढ़ने का मौका नहीं देती। अतः इन घासों को पुनर्स्थापन का उचित माध्यम प्रदान करने के लिये इन झाड़ियों की जहाँ तक संभव हो सके, काटकर सफाई कर देनी चाहिये। प्रत्येक वर्ष चारागाहों में इन अनपेक्षित झाड़ियों की अनावश्यक वृद्धि पर निगाह रखनी चाहिये ताकि खुले वातावरण में उचित धूप व नमी पाकर घासों को बढ़ने व फैलने का अच्छा अवसर मिल सके।

चारागाहों में छायादार वृक्षों को लगाना : चारागाह में जहाँ अनपेक्षित झाड़ियों को हटाना वांछित है वहीं पशुओं को छाया के लिये बीच–बीच में छायादार वृक्षों का होना भी आवश्यक है। छायादार वृक्ष चारागाह की बाहरी सीमा के साथ–साथ चराई क्षेत्र के बीच बनाये रास्तों के दोनों ओर लगाये जायें। छायादार वृक्ष लगाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि ऐसे वृक्ष उगाये जायें ज़िनका चारागाह में उगने वाली घासों पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े और साथ ही उनकी पत्तियाँ पशुओं के खाने के काम आ सकें। ऐसे पेड़ों में खेजड़ी, नीम, देशी बबूल और शीशम आदि लगाये जा सकते हैं। चारागाह में पेड़ों की संख्या 30 से 35 प्रति हैक्टर होनी चाहिये।

उचित व उन्नत किस्म की घासों का चारागाह में पुनर्जीवन : बाड़ द्वारा उचित रक्षा के बाद प्रायः दो तीन वर्षों के अन्दर ही चारागाहों में विभिन्न प्रकार की घासों के योगदान से चारा उत्पादन में दो से तीन गुना बढ़ोतरी होने लगती है, फिर भी निम्न बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता हैं –

- चारागाह उत्पादन क्षमता को देखते हुए चारा उत्पादन का स्तर अभी भी कम है।

- आरम्भ में चारा उत्पादन में वृद्धि अधिकतर वर्षा ऋतु में उगने वाली लघुजीवी घासों के द्वारा है, जिनका चराई में योगदान अक्टूबर – नवम्बर तक हो जाता है।

- यदि चारागाहों को उनकी प्राकृतिक विकास दर पर छोड़ दिया जाय तो उन्हें अपेक्षित चराई क्षमता तक पहुँचने में कई वर्षों का समय लगेगा। वर्तमान स्थिति में पशुधन के निरन्तर बढ़ते चराई दबाव के कारण अधिक इन्तजार नहीं किया जा सकता।

उपरोक्त विपरीत स्थितियों से उभरने के लिये यह आवश्यक होगा कि चारागाहों की दशा, क्षेत्र व अन्य स्रोतों को देखते हुए उनके तेजी से विकास के लिये चारागाह की भूमि के उपयुक्त उन्नत किस्म की अधिक उत्पादन वाली बहुवर्षीय घासों के पुनर्जीवन का कार्य अगर एक साथ संभव न हो तो विभिन्न चरणों में पूरा किया जा सकता है। इस प्रकार की घासों में मुख्यतः धामण, अंजन, सेवण, करड़ और ग्रामणा हैं। इन सब घासों की विशेषता यह है कि एक तो ये मौसमी घासों की तुलना में अधिक समय तक हरी अवस्था में पशुओं को चरने के लिये उपलब्ध होती हैं। दूसरे लॉपड़ा, झरनिया, तातिया और मोथा जैसी लधुजीवी घासों के मुकाबले इनमें पौष्टिक पोषक तत्व प्रोटीन, बढ़त के दौरान दो से तीन अथवा उससे भी अधिक गुणा होते हैं। तीसरे इनकी उत्पादन क्षमता लघुजीवी घासों की तुलना में काफी अधिक है। इनका उत्पादन 20 से 30 क्विंटल है जबकि लघुजीवी घासें केवल 4 से 8 क्विंटल प्रति हैक्टर ही चारा प्रदान करती हैं। उपरोक्त उन्नत किस्म की घासों के लिये अलग प्रकार की भूमि और औसत वर्षा की आवश्यकता होती है जो इस प्रकार है –

घास	भूमि की किस्म	वार्षिक औसत वर्षा
सेवण (लेसूरस सिंडिक्स)	रेतीली	200 मि. मी. या कम
अंजन (सैंकरस सिलियेरिस)	हल्की	200 से 300 मि. मी.
धामण (सैंकरस सैटीजरस)	हल्की मध्यम (चालूई – दोमट)	300 से 400 मि. मी.
ग्रामणा (पेनिकम एन्टीडोटेल)	हल्की रेतीली	300 से 400 मि. मी.
करड़ (डाईकेंथियम एनुलेटम)	भारी बलुई दोमट	400 मि.मी. के ऊपर

पश्चिमी राजस्थान में बोने योग्य फसलों की उन्नत किस्मों की विस्तृत जानकारी दी गई है। यह किस्में कम लागत एवं विपरीत जलवायु में भी देशी किस्मों के मुकाबले अधिक उत्पादन क्षमता रखती हैं तथा रोगों एवं फसलों में लगने वाले कीटों के प्रति सहनशील होती हैं।

खरीफ की मुख्य फसलें : बाजरा, ग्वार, मूंग, मोठ, चवला, तिल

बाजरा :

सी.जेड.पी. 9802 – अति जल्दी पकने वाली (70 दिन) सूखा रोधी संकुल किस्म जिसकी दाने की पैदावार 14–18 क्विंटल प्रति हैक्टर व सूखे चारे की पैदावार 45–50 क्विंटल प्रति हैक्टर है, दाने का रंग सुनहरा व मध्यम आकार का होता है।

चित्र 9.1. रूदार धामण (सेनकरस सिलेरियस किस्म : काजरी 358)

चित्र 9.2. मोडा धामण (सेनकरस सेटिजेरस किस्म : काजरी 76)

चित्र 9.3. सेवण घास (लेस्यूरस सिन्डिकस)

एच. एच. बी. 67 – अति जल्दी पकने वाली 60 – 65 दिन में पककर 15 – 20 क्विंटल प्रति हैक्टर उपज क्षमता रखती है। दाने का रंग सुनहरा होता है।

एम. एच. 169 – पकने की अवधि 80 दिन, उत्पादन क्षमता 18.8 – 20 क्विंटल प्रति हैक्टर है तथा डाऊनी मिल्डयू रोग से मुक्त है।

आर. एच. बी. 90 – यह प्रजाति 72 से 78 दिन में पककर 20 से 22 क्विंटल प्रति हैक्टर अनाज की उपज देती है तथा सूखे के प्रति सहनशील है।

बाजरे की किस्मों का चयन वर्षा अनुसार करें यदि वर्षा देर से आये तो जल्दी पकने वाली किस्म का प्रयोग करें। उन्नत किस्में देशी किस्मों के मुकाबले अधिक रोग रोधी, कीड़े एवं बीमारियों के प्रकोप से रहित तथा सूखे के हालात में अधिक चारा एवं अनाज देने की क्षमता रखती है।

मोठ :

आर. एम. ओ. 40 – कम वर्षा में अधिक उपज देने वाली किस्म है। 60 – 65 दिन में पककर तैयार हो जाती है प्रति हैक्टर उपज 6 से 7 क्विंटल है।

आर. एम. ओ 225 – यह किस्म 64 से 67 दिन में पकती है। 6 से 7.5 क्विंटल अनाज की उपज देती है। यह किस्म पीत मोडोक विषाणु के लिये प्रति रोधी है।

मूंग :

आर. एम. जी. 344 – सामान्य बुवाई व कम वर्षा वाले क्षेत्रों के लिये उपयोगी है। यह किस्म 7.5 से 9.5 क्विंटल अनाज प्रदान करती है तथा के – 851 से अधिक उपज देती है।

ग्वार :

आर. जी. सी. 936 – यह शाखा युक्त 70 – 75 से.मी. से भी अधिक ऊँचाई की होती है। यह जल्दी पकने वाली (75–80 दिन) तथा 8 – 10 क्विंटल प्रति हैक्टर की उपज देती है।

मरु ग्वार – यह मध्यम देर से पकने वाली प्रजाति है। यह सीधी बढ़ने वाली 80 से 100 से. मी. ऊँची प्रजाति है। इसकी औसत उपज 7 – 8 क्विंटल प्रति हैक्टर है। इसके दानों की गुणवत्ता आर. जी. सी. 936 से अच्छी है।

तिल :

आर.टी. 46 – यह किस्म 75 से 90 दिन में पक जाती है। पौधें 100 से 125 से. मी. ऊँचें होते हैं । इसकी औसत उपज 6–8 क्विंटल प्रति हैक्टर है। इसके बीजों में तेल की मात्रा 49 प्रतिशत पाई जाती है।

आर.टी. 125 – यह किस्म 80–85 दिन में पककर तैयार हो जाती है तथा सभी फलियाँ एक साथ पकती हैं। इसकी औसत उपज 10–12 क्विंटल प्रति हैक्टर है।

चवला :

आर.सी. 101 – यह किस्म 60–70 दिन में पक जाती है। इसकी औसत उपज 8–10 क्विंटल प्रति हैक्टर है। शुष्क एवं अर्द्धशुष्क दोनों क्षेत्रों के लिये उत्तम किस्म है। इसके पौधों की ऊँचाई 40–50 से. मी. है तथा देशी किस्मों से अधिक उत्पादन तथा रोगों के प्रति मध्यम प्रतिरोधक है।

रबी की मुख्य फसलें : सरसों, गेहूँ, जौ, चना, जीरा, इसबगोल

गेहूँ :

राज 3077 – यह 115 से 120 दिन में पकने वाली प्रजाति है। सामान्य बुवाई में 45–50 क्विंटल तथा देर से बुवाई पर 30–37 क्विंटल प्रति हैक्टर की औसत उपज देती है।

राज 1482 – सामान्य समय पर बोई जाने वाली सामान्य समय से कुछ पहले पककर तैयार हो जाती है। यह रोली व करनालबन्ट रोधक किस्म है। दाने गोल व सुनहरे रंग वाले तथा पैदावार 45–50 क्विंटल प्रति हैक्टर है। गेहूँ के लिये अच्छे जल निकास वाली भूमि उपयुक्त है। बीजों को 3 ग्राम थाइरम प्रति कि. ग्रा. की दर से उपचारित करके डालें तथा 30 से. मी. की दूरी से कतारों में बोयें। नत्रजन 90 कि. ग्रा. व फॉसफोरस 40 कि. ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें। 4 सिंचाइयाँ, 20–25 दिन के अन्तराल से करें।

चना :

दाहोद यैलो – यह प्रजाति सिंचित एवं असिंचित दोनों ही प्रकार की खेती के लिये अधिक उपयुक्त है। अन्य किस्मों की तुलना में 10–15 दिन पहले पकती है। पकने में 125–135 दिन लगते हैं। पैदावार 15–20 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है इस प्रजाति का दाना मोटा व पीला होता है जिससे अच्छा बाजार भाव मिलता है।

आर.एस.जी. 44 – सिंचित क्षेत्रों के लिये उपयुक्त है 125–135 दिन में पकती है इसका दाना पीले रंग का तथा पैदावार 20–25 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है उखटा रोग के लिये मध्यम स्तर की प्रतिरोधकता दर्शाती है। इसके अलावा सामान्य बुवाई के लिये वी.जी. जी. 149 (काबुली) फूले जी – 5 भी उपयुक्त किस्में हैं।

सरसों :

पूसा जय किसान – इसका पौधा मध्यम ऊँचाई वाला होता है। पैदावार क्षमता 20–24 (बायो 902) क्विंटल प्रति हैक्टर तथा पकने की अवधि 100–105 दिन है। दाना मोटा तथा चमकदार होता है।

आर. एच. 30 – पौधों की ऊँचाई 150–160 से. मी. होती है जिसमें शाखाएँ अधिक निकलती हैं। सिंचित एव असिंचित स्थानों के लिये जल्दी पकने वाली किस्म है। पैदावार 18–20 क्विंटल प्रति हैक्टर है। फलियाँ पकने पर चटकती नहीं हैं। बीज की दर 4 कि. ग्रा. प्रति हैक्टर प्रयोग की जानी चाहिए।

सरसों की बुवाई का समय 10 अक्टूबर है। बुवाई 45 से. मी. के फासले पर कतारों में 4–5 से. मी. गहरी होनी चाहिये। देर से बुवाई करने पर चैपा रोग का प्रकोप अधिक होता है। पहली सिंचाई 35–40 दिन बाद तथा दूसरी 70–80 दिन बाद करनी चाहिये।

जीरा :

जीरा मसाले की प्रमुख फसल है जो कम समय में पककर अधिक आय देती है। जीरे के बीज को 2 ग्राम बावस्टीन प्रति कि. ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिये। जीरे की फसल पर प्रमुख रूप से छाछिया, झुलसा, उखटा रोगों का आक्रमण होता है। अतः जब फसल 30–35 दिन की हो जाये तो डाइफोल्टोन 2 कि. ग्रा. या मेन्कोजेव 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करें। छिड़काव के 10–12 दिन बाद 25 कि. ग्रा. गंधक चूर्ण का भुरकाव करें। जीरे का बीज 12–15 कि. ग्रा. प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। जीरे की बुवाई 15 से 30 नवम्बर तक कर देनी चाहिये। बुवाई में उन्नत किस्मों का प्रयोग करें।

आर. एस. 1 – यह जीरे की उखटा रोग रोधी किस्म है तथा 80–90 दिन में पक जाती है। इसकी पैदावार 6–10 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है।

आर. जेड. 19 – यह किस्म राजस्थान के सभी क्षेत्रों के लिये उपयोगी है। इस किस्म के दाने सुडौल, आकर्षक तथा गहरे भूरे रंग के होते हैं यह 125 दिन में पक जाती है। समुचित कृषि विधियाँ अपनाकर 10–12 क्विंटल तक उपज प्राप्त की जा सकती है।

इसबगोल :

इसबगोल की खेती मुख्यतः पश्चिमी राजस्थान के जालोर, बाड़मेर, जोधपुर, पाली तथा उत्तरी गुजरात के मेहसाना, पालनपुर, ड़ीसा एवं बनासकांढा जिलों में होती है।

इसबगोल की फसल लेने के लिये खेत की 2–3 जुताई करनी चाहिए। जिससे मिट्टी भली–भांति भुरभुरी हो जाये। अन्तिम जुताई के समय कलोरोपाईरिफास 25 कि.ग्रा प्रति हैक्टर की दर से मिट्टी में मिलावें। अच्छी फसल लेने के लिये प्रति हैक्टर लगभग 15–20 बैलगाड़ी गोबर की सड़ी

हुई खाद मिट्टी में मिलावें। इसके अतिरिक्त 5 कि.ग्रा. नाईट्रोजन, 30 कि.ग्रा. फॉसफोरस तथा 15 कि. ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है। बुवाई से पहले बीज को उपचारित कर (2 ग्रा. प्रति कि.ग्राम बीज) के ही 6 से 8 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से बुवाई करें। इसबगोल की बुवाई का सामान्य समय 1 नवम्बर से 31 दिसम्बर है लेकिन बुवाई का उत्तम समय नवम्बर माह का प्रथम पखवाड़ा है। उपचारित बीज को खेत में छिड़कने के बाद रेक चलावें तत्पश्चात् हल्की सिंचाई करें। इसबगोल की फसल के लिये 2–3 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है लेकिन अन्तिम सिंचाई बुवाई से 60–65 दिन बाद में बालियाँ निकालने पर अवश्य करें। अच्छी फसल लेने के लिये प्रथम निराई–गुड़ाई बुवाई से 20 दिन बाद व दूसरी 40–45 दिन बाद करें।

फसल पकते समय मौसम का साफ रहना आवश्यक है। मोयला रोग लगने पर फास्फोमीडीन 25 ईसी 250 मि.ली. प्रति हैक्टर या मेन्कोजेव 0.2 प्रतिशत का घोल बनाकर छिड़काव करें। फसल में फफूंदी रोग लगने पर गंधकयुक्त दवा 2 ग्रा. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 15–15 दिन के अन्तराल पर दो बार छिड़कें।

बुवाई के 125 दिन बाद इसबगोल की फसल पक जाती है। फसल के पकने पर पौधों की नीचे की पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं तथा बाली को दबाने पर दाना बाहर आने लगता है। इस स्थिति में फसल की कटाई कर देनी चाहिये। इसबगोल की प्रति हैक्टर औसत उपज 8–10 क्विंटल मिलती है। उन्नत किस्में : आर आई 89, जी.आई. 2 आदि।

10

चारे को अधिक पोषक बनाने की प्रक्रिया

आशुतोष कुमार पटेल, सतीश कुमार कौशिश एवं तेजेन्द्र कुमार भाटी

पूरे भारतवर्ष में और विशेष रूप से पश्चिमी राजस्थान के मरुस्थलीय क्षेत्र में न केवल पशुओं के चारे की समस्या प्रमुख है अपितु उपलब्ध चारा भी सूखा, रेशेदार और निम्न कोटि का होने के कारण पशु पोषण के लिये उपयुक्त नहीं होता। इस प्रकार का चारा जैसे भूसा, कड़बी, घास, सूखी पत्तियाँ, खरपतवार और फसलों के अन्य बचे हुए पदार्थ पशुओं का केवल पेट भरने के काम आते हैं न कि उनकी पोषक तत्व की पूर्ति करते हैं जिसके कारण पशुओं में प्रोटीन, ऊर्जा आदि आवश्यक तत्वों की कमी बनी रहती है। इसी कारण विशेषकर गर्मियो में दुधारू पशुओं के न केवल दूध उत्पादन में कमी आ जाती है अपितु पशुओं की बढ़वार एवं प्रजनन क्षमता पर भी विपरीत प्रभाव पडता है। बाजार में उपलब्ध दाना, खल, दालें, सन्तुलित आहार आदि पूरक आहार पोषक तत्वों की कमी तो पूरी कर देते है परन्तु एक तो दूर–दराज के गाँवों में इसके मिलने की संभावना कम होती है और दूसरा यह महँगा बहुत होता है जिससे पशुपालक इसको कम मात्रा में ही पशु को दे पाते हैं। इन परिस्थितियों में निम्न कोटि के सूखे चारे की गुणवत्ता बढ़ाकर पशुओं को खिलाना ही समस्या का एक मात्र समाधान है। निम्न कोटि के चारे की पौष्टिकता बढ़ाने की निम्नलिखित विधियाँ हैं –

- गैर–परम्परागत साइलेज द्वारा
- यूरिया उपचारण द्वारा
- नमी एवं गर्मी द्वारा

गैर परम्परागत साइलेज

यह तकनीक काजरी द्वारा विकसित की गयी है। इस तकनीक से सूखे चारे को हरे चारे जैसा पौष्टिक एवं स्वादिष्ट बनाया जाता है। सूखे चारे की मुख्य कमियाँ जैसे प्रोटीन, कार्बोहाईड्रेट एवं नमी को यूरिया, गुड़ या सीरे एवं पानी में रात भर भिगो कर पूरा किया जाता है। फिर इसे, लगभग डेढ़ से दो महीने तक हवा की अनुपस्थिति में ढ़ककर रखा जाता है। 45 से 60 दिन चलने वाली इस प्रक्रिया द्वारा तैयार साइलेज न केवल स्वादिष्ट एवं सुगंधित होता है बल्कि प्रोटीन एवं कार्बोहाईड्रेट की अधिकांश कमी को पूरा कर देता है। साइलेज को गाय, भैंस व अन्य पशु बड़े चाव से खाते हैं क्योंकि इसमें गुड़, छाछ एवं इससे उत्पन्न लेक्टेट के कारण स्वाद आ जाता है।

गैर परम्परागत साइलेज बनाने की विधि बहुत सरल है इसमें सर्वप्रथम 1.25 x 1.5 मीटर या इसी अनुपात का पक्का गढ्ढा तैयार करें या फिर इसी माप की आर.सी.सी. से बनी टंकी जमीन के अन्दर इस प्रकार रखें कि इसका मुँह लगभग 15–30 से.मी. जमीन के ऊपर हो (चित्र 10.1)। जिस सूखे चारे

का साइलेज बनाना है उसे रात भर भिगोकर रखें। दूसरे दिन 10 किलो ग्राम गुड़ में 2 किलो ग्राम यूरिया घोलकर (100 किलो ग्राम सूखे चारे की दर से) भिगोये हुए चारे पर समानरूप से छिड़क देवें। फिर चारे को दबा–दबाकर भरें जिससे चारे में उपस्थित हवा पूर्णतया निकल जावे, साथ ही साथ खट्टी छाछ (6 लीटर) चारे के ऊपर छिड़कते जावें। जब साइलो पूर्णरूप से भर जाए तब उसको सीमेन्ट से बने ढ़क्कन से ढ़क दें एवं ऊपर से इसे मिट्टी एवं गोबर आदि के मिश्रण से लीप देंवें। डेढ़ से दो महीने के बाद यह साइलेज खाने योग्य हो जाता है। गैर परम्परागत साइलेज में न्यूनतम 13 प्रतिशत अपरिष्कृत प्रोटीन, लेक्टिक अम्ल 7.5 प्रतिशत, पानी में घुलनशील कारबोहाइड्रेट 1.6 प्रतिशत आदि पोषक तत्व होते हैं। यह साइलेज अम्लीय प्रकृति का (पीएच 4.1) होता है। इसे पशु की खुराक के हिसाब से 40 प्रतिशत तक खिलाया जा सकता है जिससे पशु के दाने की खुराक को 60 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है।

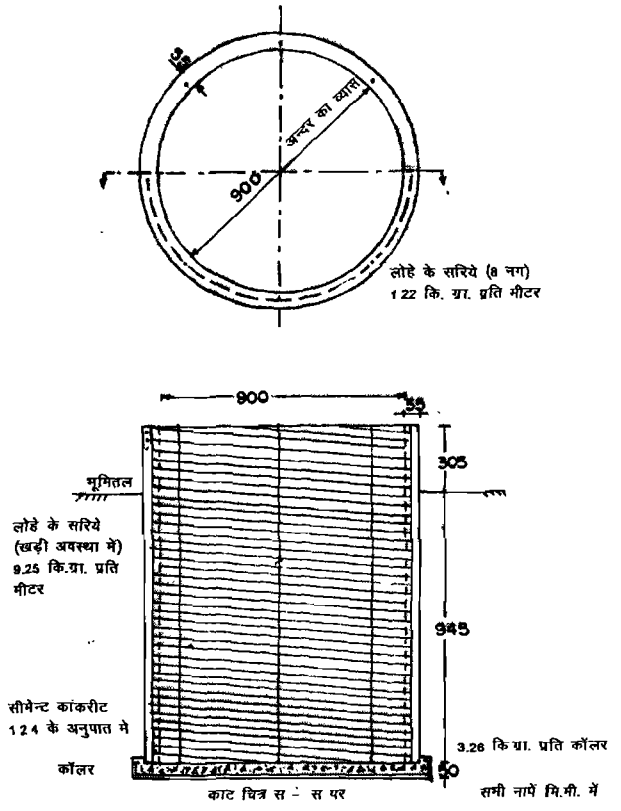

चित्र 10.1. साईलेज बनाने हेतु प्रयोग में ली गई आर. सी. सी. की बनी टंकी

एक प्रयोग के आधार पर यह देखा गया है कि इसकी 10 किलोग्राम प्रति दिन की खिलाई से थारपारकर गायों में दूध की मात्रा एवं उसकी वसा की मात्रा भी बढ़ी (तालिका 10.1)। उपरोक्त लाभ के अलावा इससे पशुओं का पाचन तंत्र भी ठीक रहता है।

तालिका 10.1. बाजरे के सूखे चारे से बने साईलेज को एक माह तक थारपारकर गायों को खिलाने पर दुग्ध उत्पादन एवं गुणवत्ता पर प्रभाव

दूध व दूध सम्बन्धी उत्पाद	साईलेज खिलाने के		
	पहले	दौरान	बाद
दुग्ध उत्पादन (कि.ग्रा.)	160.07 ± 9.96	172.95 ± 3.59	165.17 ± 4.50
वसा (प्रतिशत)	3.51 ± 0.26	4.33 ± 0.26	4.67 ± 0.39
एस.एन.एफ.(प्रतिशत)	8.86 ± 0.16	9.13 ± 0.11	9.01 ± 0.16

यूरिया उपचारण द्वारा

निम्न कोटि के सूखे चारे की पौष्टिकता बढ़ाने का यह एक सरल एवं सस्ता उपाय है। इस प्रकिया में यूरिया में उपस्थित अकार्बनिक नाइट्रोजन को चारे की गुणवत्ता बढ़ाने में काम में लेते हैं। यह नाइट्रोजन जुगाली करने वाले पशुओं के लिये उपयोगी है क्योंकि पशु रोमन्य से जीवाणुओं और प्रोटोजोआ द्वारा इन नाइट्रोजन युक्त प्रोटीन रहित पदार्थों से प्रोटीन बनाने में सक्षम हैं। जुगाली करने वाले पशुओं में गाय, भैंस आदि में रोमन्य 6 महीने के उपरान्त ही विकसित होता है अतः इन पशुओं के लिये नाइट्रोजन युक्त पदार्थ 6 महीने की आयु के बाद ही खिलाना चाहिये। यूरिया रोमन्य में आकर अमोनिया और कार्बन डाई–ऑक्साइड में बदल जाती है। रोमन्य अमोनिया का कुछ भाग जीवाणुओं द्वारा प्रोटीन में बदल जाता है। इस विधि द्वारा न केवल सूखे चारे की पाचक प्रोटीन एवं ऊर्जा की मात्रा बढ़ती है बल्कि उपचारित चारा मुलायम एवं स्वादिष्ट भी होता है, जिससे इसकी पाचकता भी बढ़ती है।

एक सौ किलो ग्राम सूखे चारे के उपचारण के लिये उसे 4 किलो ग्राम यूरिया एवं 50 – 60 लीटर पानी तथा उपचारित चारे को ढ़कने के लिये प्लास्टिक की शीट की आवश्यकता होती है। इसके बाद सूखे चारे को निम्न प्रकार तैयार किया जाता है –

पन्द्रह लीटर की दो बाल्टी लेकर उसमें 0.75 किलो ग्राम यूरिया घोल दें। फिर 50 किलो ग्राम सूखे चारे को साफ जमीन पर समान रूप से फैला दें। इस सूखे चारे पर तैयार किए यूरिया घोल को समान रूप से छिड़क देवें जिससे चारे का प्रत्येक भाग गीला हो जावे (चित्र 10.2)। फिर इस ढेर को पैरों से 5 से 10 मिनट के लिये कूद – कूद कर दबावें जिससे चारे में उपस्थित हवा पूर्ण रूप से निकल जावे और चारा भी दब जाए। दुबारा फिर 50 किलो ग्राम सूखे चारे को इसी ढेर पर फैला देवें एवं उसी प्रकार यूरिया के घोल से भिगोकर पैरों से दबा देवें। इस प्रकार जितना चाहे उतना चारा ड़ालते जाए एवं इसके अनुसार यूरिया की मात्रा का घोल छिड़ककर दबाते जाएँ। अंत में इस चारे को प्लास्टिक शीट से ढ़ककर उस पर पत्थर रख देवें जिससे चारे को हवा नहीं लगे। दो तीन सप्ताह में चारा बनकर तैयार हो जाता है। एक कोने से शीट को हटाकर चारा निकालें एवं उसे खुली हवा में रखें जिससे चारे में

उपस्थित अमोनिया की गन्ध कम हो जाये। यदि पशु शुरु–शुरु में इस चारे को नहीं खाता है तो इसमें थोड़ा गुड़ का घोल या शीरा मिलाकर खिलायें। धीरे–धीरे पशुओं को इसकी आदत पड़ जाती है और वे इस चारे को स्वतः ही खाने लगते हैं (चित्र 10.3)।

यूरिया उपचारण से चारे की पौष्टिकता में काफी बढ़ोतरी होती है। यूरिया उपचारित चारे में पौष्टिक तत्वों जैसे प्रोटीन, कार्बोहाईड्रेट आदि की उपलब्धता पशुओं के लिये अधिक हो जाती है। प्रयोगशाला में परीक्षण से यह देखा गया कि सूखे चारे में पाचक प्रोटीन की मात्रा 2.5 से 3.0 गुना बढ़ जाती है।

यूरिया उपचारित चारे का पशुओं के उत्पादन में बढ़ोतरी देखने के लिये काजरी द्वारा संचालित कार्यक्रम तकनीक निर्धारण एवं पुनःशोधित के अन्तर्गत जोधपुर जिले के चार गाँवों में प्रयोग किया गया। इस कार्यक्रम में किसानों के यहाँ यूरिया उपचारित चारा तैयार किया गया तथा इस उपचारित चारे को पशुओं को खिलाने के पहले एवं बाद में प्रतिदिन दुग्ध उत्पादन मापा गया और पाया गया कि गायों के दूध में 15.8 एवं भैंसों के दूध में प्रतिदिन 12.4 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई (तालिका 10.2)।

तालिका 10.2. यूरिया उपचारित चारे को खिलाने से पशुओं के दुग्ध उत्पादन पर प्रभाव

पशु	किसानों की संख्या	प्रतिदिन दुग्ध उत्पादन (लीटर)		दूध में प्रतिदिन बढ़ोतरी, प्रतिशत
		उपचारित चारा खिलाने के पहले	उपचारित चारा खिलाने के बाद	
गाय	13	4.29 $\pm$ 0.43	4.96 $\pm$ 0.43	15.8
भैंस	17	5.72 $\pm$ 0.37	6.43 $\pm$ 0.42	12.4
औसत	30	5.11 $\pm$ 0.31	5.81 $\pm$ 0.33	13.7

चारे को भिगोकर पकाना

लिग्निन–सेल्यूलोज युक्त चारे की पाचकता बढ़ाने के लिये चारे को थोड़े पानी में भिगोकर उसे बाद में कम आँच पर गर्म किया जाता है जिससे चारे में उपस्थित लिग्निन–सेल्यूलोज रासायनिक अनुबंध टूट जाते हैं। इस विधि में सूखे चारे को भिगोकर किसी मटकी में ठूँस–ठूँस कर भर देते हैं फिर उस मटकी को चूल्हे की धीमी आँच पर रखा जाता है। आजकल इस प्रक्रिया को सोलर कूकर से भी किया जाता है। इस प्रकार के सोलर कूकर काजरी द्वारा भी बनाये गए हैं। इस विधि में भीगे हुए चारे को सोलर कुकर में सुबह रख दिया जाता है। जो शाम तक पककर तैयार हो जाता है। तैयार चारे में खनिज लवण, गुड़ या अन्य पौष्टिक पदार्थ मिलाकर पशु को खिलाने से पशु के स्वास्थ में सुधार व दुग्ध उत्पादकता में वृद्धि होती है।

चित्र 10.2. निम्न कोटि के सूखे चारे की पौष्टिकता बढ़ाने के लिये यूरिया द्वारा उपचारण

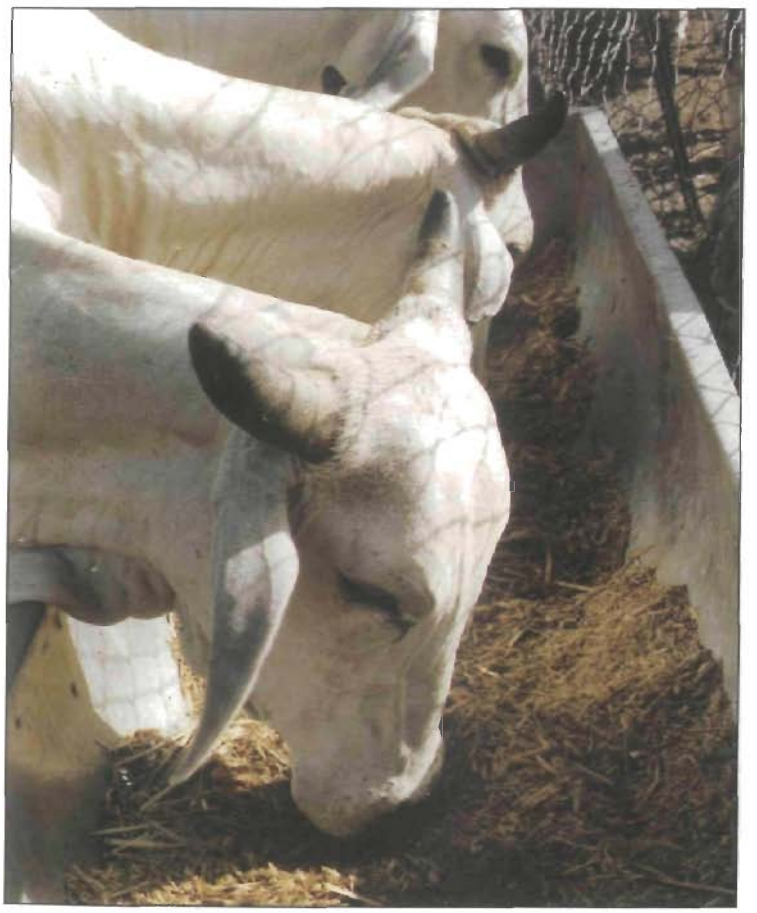

चित्र 10.3. यूरिया उपचारित चारा खाते पशु

11

गौशाला और प्रव्रजन द्वारा पशुधन प्रबन्धन

रतन लाल डागा
प्रगतिशील कृषक, मथानिया, जोधपुर

राजस्थान कृषि प्रधान राज्य है। जहाँ की 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या कृषि पर आधारित है। देश में व्याप्त कुल शुष्क क्षेत्र का 62 प्रतिशत क्षेत्र राज्य के अन्तर्गत सम्मिलित है। इस क्षेत्र में आजीविका का साधन वर्षा आधारित खरीफ फसलों में मूंग, मोठ, उड़द, ग्वार एवं बाजरा इत्यादि ली जाती हैं। इन फसलों से प्राप्त चारे को पशु आहार के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त पशुओं को खिलाने हेतु सेवण एवं धामण घासों की खेती की जाती है। पशुपालन कृषि का अभिन्न अंग है तथा ये एक–दूसरे के पूरक हैं।

विगत कुछ वर्षों से अकाल की त्रासदी के कारण सबसे ज्यादा पशुधन में गौवंश की भारी क्षति हुई है। अकाल में सबसे पहले अधिकांश घरों से गायों को बाहर निकाला गया जिससे आमजन को दोहरा नुकसान भुगतना पड़ा। प्रथम तो गौवंश कम होने लगा तथा दूसरा ये बेकार समझी जाने वाली गायें इधर–उधर घूमकर फसलों को नुकसान पहुंचाने लगीं जिससे आम किसान की नींद हराम हो गई।

समाज में गौवंश की विशेष महत्ता के कारण गौशालाओं का निर्माण होने लगा तथा वहाँ पर अकाल की मार से छोड़ी गयी गायों को रखना प्रारम्भ हुआ। इन गौशालाओं के संचालन हेतु समाज से धन एकत्रित कर चारे–पानी का प्रबन्ध होने लगा।

वर्तमान समय में पूरे विश्व में जैविक खेती की ओर ध्यान दिया जा रहा है। हरित क्रांति के नाम से रासायनिक उर्वरक व कीटनाशकों के प्रयोग से दूषित अनाज, सब्जी, फल से मानव जाति में अनेक बीमारियाँ घर करने लगी हैं। जैविक खेती में पशुधन की अहम् भूमिका है। इस को ध्यान में रखते हुए गौशालाओं के प्रबन्धन में सुधार लाया जाए तो गौशालाएं आय का एक साधन हो सकती हैं। गौवंश से भरपूर लाभ लेने के लिए कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार है –

आवास प्रबन्धन

गायों को बांधने की जगह साफ सुथरी एवं आरामदायक होनी चाहिए। पशुशाला का फर्श ईंटों का व थोड़ा ढ़लानदार होना चाहिए जिससे गोबर, गौमूत्र आदि बहकर बाहर जा सके। पशुशाला ऊँचे स्थान पर होनी चाहिए। गौशाला (फार्म) में पर्याप्त संख्या में छायादार पेड़ लगाने चाहिए। छोटे बच्चों को सर्दी से बचाने के लिए विशेष ध्यान देना चाहिए। पशुओं के नीचे ईंटें नहीं हों तो सूखे बिछावन का प्रयोग करें। इसके लिए लकड़ी का बुरादा, सूखी घास तथा पुआल का प्रयोग भी किया जा सकता है।

आहार प्रबन्धन

दाना, सूखा चारा, हरा चारा खिलाना, पशुओं को आहार खिलाने लाना व ले जाना, पशु आहार का संग्रह करना तथा चारे की ढ़ानो को साफ करना आदि कार्य आहार प्रबन्धन के अन्तर्गत आते हैं। एक गाय (पशु) के लिये 2 कि.ग्रा. हरा चारा व 5 कि.ग्रा. सूखा चारे की आवश्यकता होती है।

पानी प्रबन्धन

पशु को दिन में दो–चार बार पानी पिलाना चाहिए तथा खेलियों को रोजाना साफ करना चाहिए। एक पशु को प्रतिदिन औसतन 18 – 20 लीटर पानी की आवश्यकता होती है।

प्रजनन प्रबन्धन

मद या 'गर्मी' में आये पशुओं को पहचानना एवं चिन्हित पशुओं को कृत्रिम गर्भाधान/प्राकृतिक गर्भाधान सर्विस के लिये ले जाना। गर्भित पशुओं की देखभाल करना। सांडों के शारीरिक विकास तथा क्रियाओं के सुचारू प्रचालन के लिए उनको ठीक ढंग से रखना चाहिए। छः माह की आयु तक बछड़े–बछड़ियों को इकट्ठा रखा जा सकता है बाद में उन्हें अलग कर दें। छोटे बाड़ों में रहने वाले सांडों की प्रजनन शक्ति बनाए रखने के लिए उन्हें व्यायाम करवाना अति आवश्यक है। उनके घूमने–फिरने के लिए 40 मीटर लम्बा तथा 20 मीटर चौड़ा स्थान आवश्यक है। तीन वर्ष की आयु में सांड वयस्क हो जाता है। जब तक सांड पूरी तरह प्रौढ़ नहीं हो जाता तब तक उसे सीमित रूप से प्रजनन के लिए प्रयोग करना चाहिए। प्राकृतिक प्रजनन में एक सांड़ 50 से 60 गायों के लिए पर्याप्त होता है। यदि प्रजनन दो या तीन माह में ही सीमित हो तो एक सांड 30 गायों के समूह के लिए पर्याप्त होता है। दूसरी पीढ़ी के लिए उसी सांड को प्रजनन के लिये काम में नहीं लेना चाहिए।

पशु स्वास्थ्य प्रबन्धन

- बीमार पशुओं को पहचानना व चिह्नित करना।
- बीमार पशुओं को चिकित्सालय ले जाना।
- पशुओं को बीमारी से बचाने के लिए प्रति वर्ष विभिन्न संक्रामक रोगों के लिए रोग प्रतिबंधक टीके लगवाना।
- बीमार पशुओं की देखभाल करना।

दुग्ध प्रबन्धन

- दुधारू पशुओं को दुहाई के स्थान पर ले जाना।
- अयन की सफाई करना।

- हाथों एवं अयन को जीवाणु रहित करना।
- दुहाई के बर्तनों को साफ करना।
- दुहाई करना व दूध को सुरक्षित रखना।

विपणन

- दूध एवं दूध से बने पदार्थों जैसे मक्खन, घी, खोआ इत्यादि को बेचना।
- दूध एवं दुग्ध उत्पाद की बिक्री का हिसाब–किताब रखना।

गौशालाएं आर्थिक बोझ न बनकर कमाई का साधन बनें इसके लिए गोबर, गौमूत्र का कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट, गोबरगैस, गौमूत्र कीटनियंत्रक के बारे में जानकारी लेना अति आवश्यक है।

कम्पोस्ट खाद

सामग्री :

- पशुओं से प्राप्त गोबर एवं मूत्र।
- बकरी एवं भेड़ की मींगणी एवं मूत्र।
- फसल तथा जानवरों के बाड़े से प्राप्त कचरा, घास एवं पेड़ों की पत्तियां।

विधि :

- जानवरों के बाड़े के पास थोडी ऊंचाई वाले स्थान पर 3 मी. लम्बा, 1.5 मी. चौड़ा तथा 2 मी. गहरा गड्ढ़ा बनाएं।
- अगर कच्चा गड्ढ़ा हो तब पतले गोबर का 2.5 से. मी. मोटा लेप अंदरूनी क्षेत्र में करें।
- गोबर, भेड़ एवं बकरी की मींगणी तथा उपलब्ध कचरा स्वतंत्र रूप से गड्ढ़े के पास इकट्ठा करें।
- सर्वप्रथम फसल का कचरा तथा बाड़े के मूत्र सहित भीगे कचरे की 30 से.मी. की तह दबाकर गड्ढ़े में भरें।
- उपरोक्त तह पर 10 बाल्टी पानी में 2 किलो ग्राम यूरिया खाद का घोल बनाकर छिड़काव करें।
- कचरे की 30 सें. मी. मोटी तह के ऊपर 30 सें. मी. मोटी गोबर के गाढ़े घोल की तह दें तत्पश्चात् 10 बाल्टी पानी में 2 किलो ग्राम यूरिया मिलाकर छिड़काव करें। यह क्रम तब तक जारी रखें जब तक कि गड्ढ़ा पूर्ण रुप से न भर जाये।

- गड्ढ़ा पूरा भरने के बाद 25 – 30 बाल्टी सादा पानी चारों तरफ से छिड़काव करें।
- गोबर एवं मिट्टी का लेप जमीन की सतह से 45 से. मी. ऊपर तक भरकर मुंह अच्छी तरह से बंद कर दें ताकि गड्ढ़े में नमी व तापक्रम बना रहे तथा अंदर की गैस बाहर न आए।
- 45 दिन बाद गड्ढ़े के चारों कोनों में छोटा सा छेद बनाकर प्रत्येक छेद में 5 बाल्टी सादा पानी ड़ालकर छेद बंद कर दें।
- एक गड्ढ़ा भरने के बाद दूसरे गड्ढ़े में भी इसी प्रकार कम्पोस्ट खाद बनायें।
- एक गड्ढ़े में 3 – 3.5 महीने में कम्पोस्ट खाद तैयार हो सकती है।
- कम्पोस्ट खाद को जब खेतों में ड़ालना हो तो ऊपर से लेप हटाकर, खाद को निकालकर खेत में ड़ालें तथा खेत में कम्पोस्ट खाद फैलाने के तुरन्त बाद कल्टी हल चलाकर मिट्टी में मिलाना अतिआवश्यक है अन्यथा उसमें मौजूद नत्रजन हवा व धूप से नष्ट हो सकती है।
- कम्पोस्ट खाद 2 से 3 टन प्रति बीघा खेत में ड़ालें। फल वृक्षों में 10 – 20 किलो ग्राम खाद प्रति पेड़ देनी चाहिये।
- कम्पोस्ट खाद में अनुमानित पोषक तत्व इस प्रकार होते हैं –

  नत्रजन – 0.4 से 0.6 प्रतिशत

  फॉस्फोरस – 0.4 से 0.5 प्रतिशत

  पोटाश – 0.4 से 0.5 प्रतिशत

इसके अतिरिक्त इस खाद में केल्शियम, गंधक, जस्ता, तांबा, लोहा, मैंगनीज भी मौजूद होते हैं। अतः कम्पोस्ट खाद भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने के साथ रासायानिक खादों की भी कार्य क्षमता बढ़ाती है।

केंचुआ खाद (वर्मीकम्पोस्ट)

- लगभग 2 से 2.4 मी. चौड़ा व आवश्यकतानुसार लम्बाई रखकर छप्पर तैयार करें। उसमें अंदर प्रवेश करने और बाहर निकलने के लिये चौड़ाई की दिशा में द्वार रखें। इस छप्पर में प्रवेश और बाहर जाने का रास्ता छोड़कर चारों ओर से घेराबन्दी करें। इस छप्पर की चौड़ाई के बीचो बीच 60 से. मी. चौड़ा रास्ता छोड़कर दोनों में 1 मी. की दो लाइन 15 से. मी. गड्ढ़े वाली बनाएँ। इस खाई में ईंटों के टुकड़े (चूरा नहीं) भूमि पर समतल बिछायें। ईंट के दो टुकड़ों के बीच में पोली जगह रहने दें। केंचुओं को इसमें पनाह मिलेगी।
- अगल – बगल की इन ईटों की कतारों पर घास, पुआल, गन्ने एवं केले के पत्ते आदि या अन्य मोटा कचरा टुकड़े करके 15 से. मी. ऊँचाई तक बिछाएँ।

- इस कचरे पर अच्छी पकी कम्पोस्ट खाद या बायोगैस की खाद ही ड़ालें। यह अतिरिक्त गर्मी को रोकेगी। फिर अधपकी खाद उस पर ड़ालें। यह केंचुओं के लिये भोजन होगा।

- इन दोनों कतारों पर लम्बाई के हिसाब से कुल दो हजार केंचुए समान रूप से बिखेर दें। उन पर गौमूत्र 1 हिस्सा 10 गुना पानी में मिलाकर छिड़क दें तथा ऊपर से 15 से. मी. मोटी परत कचरा एवं गोबर मिलाकर (75 प्रतिशत गोबर, 25 प्रतिशत कचरा) डालें। इसके पश्चात् 15 से. मी. कचरा टुकड़े करके डालें।

- नमी बनी रहे इतना पानी हर दिन छिड़कें। गर्मी के दिनों में दिन में दो बार अर्थात् सुबह–शाम पानी का छिड़काव करें लेकिन कीचड़ न हो उतने ही पानी का छिडकाव करें।

- पुराने बोरे पानी में भिगोकर दोनों कतारों को ढ़क दें।

- दोनों कतारों के बाहर कचरा व गोबर न रहे, अन्यथा केंचुए उसे खाने के बहाने बाहर भाग जाएंगें।

- केचुओं की क्यारियों में तापमान न बढ़ने दें। हर सप्ताह इसकी जांच करें।

- चार से छः सप्ताह के भीतर काले रंग का सेन्द्रिय खाद बनेगा। हाथ से उठाने पर वह हल्का और भुरभुरा होगा और केंचुए ऊपर से रखे गये बोरों से चिपके हुए दिखेंगे।

- यह अवस्था प्राप्त होने पर तीन दिन पानी का छिड़काव बंद करें। इससे केंचुए नीचे की ओर चले जायेंगें।

- उसी जगह तैयार हुए खाद के छोटे ढ़ेर 60 से. मी. पर बनावें जिससे प्रकाश दिखते ही केंचुए, नीचे ईटों के टुकडों के बीच चले जायेंगें। फिर दो दिन बाद यह खाद नीचे बिछी परत को धक्का न पहुँचाते हुए हाथों से उठाकर छाँव में या बोरों में भरकर रख दें।

- यह खाद उठाने के बाद उसी क्रम में परत दर परत खाद – गोबर – कचरा ड़ालें। इस समय केंचुए बाहर से लाकर डालने की जरूरत नहीं, नीचे ईंटों में गये केंचुए ऊपर आकर अपना काम शुरू कर देंगें।

- 75 प्रतिशत ताजा गोबर 25 प्रतिशत बारीक कचरा भीगोकर छाया में दस दिन रखकर उसका प्रयोग करना अच्छा रहता है।

- तैयार केंचुआ खाद में केंचुओं के अंडे व छोटे केंचुए रह जाते हैं इसलिए इस खाद को छाया में रखकर, उसमें नमी बनी रहने के लिए, उस पर पानी का छिड़काव करते रहना चाहिए।

- खाद बनाने के लिए पहली बार केंचुए मंगाने पड़ते हैं। बाद में उनकी संख्या अपने आप उचित वातावरण में बढ़ती रहेगी। एक माह की उम्र में ही केंचुए प्रजोत्पादन शुरू कर देते हैं। ढाई सौ केंचुए साल भर में पांच लाख की संख्या में बढ़ जाते हैं।

स्थानीय केंचुए प्राप्त करने का तरीका : खेत में किसी बड़े पेड़ के नीचे गोलीनुमा केंचुओं की विष्ठा दिखेगी। उसी जगह 30 से. मी. गहरा गड्ढ़ा बनाकर उसे पानपत्ती और गोबर से भरकर ऊपर से पानी का छिड़काव करें और उसे गीले बोरे से ढक दें। प्रतिदिन पानी छिड़कने का काम जारी रखें। तीन सप्ताह के बाद बोरी और पानपत्ती हटाकर वहां पाये गये केंचुओं को इकट्ठा कर सकते हैं।

गोबर गैस

प्रत्येक किसान को अपने फार्म पर गोबर गैस प्लांट लगाना चाहिये। जनता बायोगैस प्लांट किसान के लिए अधिक उपयोगी साबित हुआ है। इसमें एक द्वार से गोबर का पानी में घोल बनाकर डाला जाता है। दूसरे छेद में से पकी पतली खाद जिसे स्लरी कहते हैं, बाहर आती रहती है, जिसे खाद के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। इसमें 2 प्रतिशत नाइट्रोजन होती है। गैस निकालने के लिए गुम्बदनुमा आकृति के ऊपर एक नली लगी हुई होती है, उससे गैस का कनेक्शन करते हैं। 5 – 6 सदस्यों के परिवार के लिये 3 घन मीटर का गोबर गैस संयंत्र पर्याप्त होता है। रोजाना करीब 50 किलोग्राम ताजे गोबर की आवश्यकता रहती है।

परोक्ष रूप से पशु हमारे लिए ऊर्जा का साधन भी हैं। गोबर का उपयोग गोबर गैस संयंत्र में करके, उनसे उत्पन्न गैस का ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। गैस का उपयोग भोजन बनाने, गैस की बत्ती से रोशनी करने, चारा काटने, पानी के पम्पसेट को चलाने, जनरेटर आदि विविध कार्यों में किया जाता है। ऊर्जा के सीमित साधनों को देखते हुए भविष्य में गोबर गैस का महत्व बढ़ेगा।

गौमूत्र कीट नियंत्रक

तांबे के बर्तन में 10 लीटर गौमूत्र, 4 किलो ग्राम नीम की पत्ती व आधा किलो ग्राम लहसुन ड़ालकर, बर्तन का मुंह बंद करके, छाया में गड्ढ़ा खोदकर, उस बर्तन का मुँह बाहर रखकर, सारा बर्तन जमीन में गाड़ दें। इक्कीस दिन गड्ढ़े में रखने के बाद गौमूत्र, नीम पत्ती व लहसुन के घोल को गर्म करते हैं, जब तक गर्म करते रहें तब तक घोल आधा नहीं रह जाय। उसके बाद ठंडा करके, छानकर किसी प्लास्टिक के बर्तन में पैक कर देंगे वह कीट नियंत्रक होगा।

सब्जी, फल व फसलों पर चूसने वाले कीटों का नियंत्रण करने के लिये 3 लीटर कीट नियंत्रक को 100 लीटर पानी मिलाकर स्प्रे करें। नीम की पत्ती की तरह धतूरे की पत्ती, तुलसी, तम्बाकू आदि भी गौमूत्र के साथ कीटनियंत्रक बनाने के लिए काम में लेते हैं।

समाधि खाद

गौवंशीय प्राणी की स्वाभाविक मृत्यु होने पर उससे चर्म निकालने के पश्चात् सब को खेत में गड्ढ़ा खोदकर दबा देने के 6 महीने पश्चात् वह उत्तम खाद में परिवर्तित हो जाता है जिसे निकालकर खाद की भांति प्रयोग किया जा सकता है।

गौमूत्र में दस गुना पानी मिलाकर उसका तुरंत खाद जैसा उपयोग पेड़ की जड़ों में देकर या फसल पर छिड़ककर किया जा सकता है।

छाछ का उपयोग

ताँबे के बर्तन में सात दिन तक दस लीटर गाय की छाछ (मक्खन न निकली हुई) छाया में बर्तन का मुंह बंद करके रखने के बाद उसमें 100 लीटर पानी मिलाकर फसल पर फल–फूल लगने के पहले (एक एकड़) छिड़कने से उत्पादन में बढ़ोतरी होती है। मूंगफली, कपास व कद्दूवर्गीय सब्जी पर बहुत अच्छे परिणाम मिलते हैं।

इस तरह से गौशालाओं का प्रबन्धन कर पशुधन व कृषि दोनों को ही बचाया जा सकता है। गौशालाओं के निर्माण के बाद भी सम्पूर्ण पशुधन में गौवंश जिस तरह से अकाल की मार झेल रहा है, उसी तरह से अकाल की मार भेड़, बकरी पालन करने वालों पर भी पड़ती है। पश्चिमी राजस्थान की सीमा पर बसे लोगों का मुख्य व्यवसाय भेड़ पालन ही है। एक भेड़ वर्ष में दो बार ऊन देती है। देशी भेड़ वर्ष में दो बार, करीब 2 किलो ग्राम ऊन देती है। इसकी मींगणी व मूत्र कृषि के लिए बहुत ही उपयोगी होती है। सिंचित कृषि करने वाले किसान खाली पड़ी जमीन पर भेड़ पालकों से आग्रह करके, भेड़, बकरी को खेत में बिठाते हैं, जिससे उस जमीन पर मींगणी व मूत्र अच्छी मात्रा में मिल जाता है और जमीन उपजाऊ होती है।

कई बार लगातार अकाल पड़ने से भेड़ पालकों को भेड़ों को चराने के लिये पास के राज्यों में ले जाना पड़ता है। उसमें उनको लम्बा रास्ता तय करना पड़ता है, रास्ते में कई भेड़ें मर जाती हैं। कई किसान भेड़ों को ट्रकों में ले जाते हैं, फिर भी कई भेड़े मर जाती हैं। किराया भी ज्यादा पड़ता है तथा राज्य टैक्स अलग से भरना पड़ता है। गत वर्ष पड़ौसी राज्यों ने टैक्स भी बहुत ज्यादा कर दिया। इस समस्या की ओर सरकार को ध्यान देने की जरूरत है।

पशुधन को बचाने के लिये कुल मिलाकर निम्न बिन्दुओं पर समुचित ध्यान देने की आवश्यकता है –

- मरु विकास योजना के अन्तर्गत गोचर भूमि में चारा उगाना, गाँवों में छोटे–छोटे तालाबों का निर्माण करना और गोचर भूमि में वृक्ष लगाना।
- नहरी इलाकों की गोचर भूमि में चारा उत्पादन कर, चारा बैंक स्थापित करने चाहिये।

- अच्छी बरसात हो और चारा उत्पादन अच्छा हुआ हो, उस समय किसानों को ऋण या अनुदान पर चारा एकत्रित करवाना चाहिये। चारे के लिये गोदाम अनुदान पर बनवाये जायें। पानी के लिये पक्के टांके, तालाब बनाये जायें।
- संक्रामक रोगों से पशुओं की रक्षा के लिए टीकाकरण किया जाना अति आवश्यक है।
- पशुओं के विपणन की उचित व्यवस्था की जाय।
- पशु प्रदर्शनी तथा मेलों का आयोजन किया जाय।
- पशु चिकित्सालयों को प्रभावी बनाया जाय।
- पशुओं की नस्ल सुधार हेतु कार्यक्रम किये जायें।

गीता में कहा है

'परस्पर भावभन्तः श्रेय परभवाप्स्थय'

अर्थात खेत में फसल डोलती है, पकती है तब फल, फूल व अनाज आदमी के लिए व जानवरों के लिये चारा, कड़वी, पुआल और इन दोनों के द्वारा छोड़ा हुआ कूड़ा–कचरा और मल–गोबर–मूत्र खेती के लिए आहार बनता है। इस तरह से प्रकृति का सन्तुलन बना रहता है।

12 मरुक्षेत्र में पशुओं की बीमारियों के रोकथाम हेतु प्रबंधन

बसन्त कुमार माथुर एवं आलोक चन्द माथुर

राज्य की 1997 की गणनानुसार राजस्थान में कुल 54.4 लाख पशु हैं। प्रकृति की विपरीत परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता रखने वाली यहाँ की पशु नस्ल सर्वोत्तम है।

वैज्ञानिक दृष्टि से पशुपालन की मुख्य शाखाएं हैं – पशु पोषण, पशु प्रजनन एवं पशु स्वास्थ। पशु को स्वस्थ रखने हेतु उन में होने वाली मरु क्षेत्र की विभिन्न बीमारियों के बारे में जानकारी आवश्यक है। पशुओं में विभिन्न प्रकार के कीटाणुओं से होने वाली बीमारियों को मुख्यतः चार वर्गो में विभाजित किया जा सकता है –

कुपोषण सम्बन्धी बीमारियाँ

(प्रोटीन की कमी, मिल्क फीवर, ग्रास टिटेनी, कोबाल्ट की कमी, पाईका, विटामिन–ए की कमी आदि)

रेगिस्तानी क्षेत्रों में होने वाली मुख्य बीमारियाँ अधिकतर असन्तुलित पोषण या कुपोषण के कारण होती हैं। इनका मुख्य कारण प्रोटीन, कैल्शियम, फॉसफोरस, विटामिन ए एवं कुछ विशेष लवणों की कमी है। इन तत्वों की कमी के कारण पशु दिनों–दिन कमजोर होने लगता है तथा बढ़वार रुक जाती है और उसकी हड्डियाँ मुख्य तौर पर पसलियाँ दिखाई देने लगती हैं। पशु की थुम्बी कम होने लगती है। पशु अभोज्य पदार्थ जैसे जूता–चप्पल, मिट्टी, मल, कपड़ा, पौलिथीन थैलियाँ आदि खाने लगता है तथा दाँत किटकिटाने लगता है। पशु का हाजमा प्रायः खराब होने लगता है। कब्जी, आफरा या कभी दस्त लग जाते हैं। पशु के पेट में दर्द रहता है जिसके कारण वह बेचैन रहता है व पैर पटकता है। इसके अलावा पशु की त्वचा सूखने लगती है व बाल/ऊन झड़ने लगते हैं। उत्पादक क्षमता लगातार कम होने लगती है व दूध जल्द सूख जाता है। पशु की प्रजनन क्षमता कम हो जाती है तथा पशु लम्बे समय तक 'गर्मी' में नहीं आता। पशु में गर्भ नहीं ठहरता, उत्तेला (फिराव) खाने लगता है, बच्चा अधूरा गिरा देता है, जर अटक जाती है, ब्याने से पहले अथवा बाद में आर (योनि एवं गर्भाशय का बाहर आना) शरीर से बाहर आने लगती है जिसमें संक्रमण होने पर पशु की मृत्यु तक हो जाती है। पशु की आँखों में पानी आता है, शाम एवं रात को दिखना कम हो सकता है, आँखों पर सफेद फूला भी आ सकता है।

चिकित्सा :

- सूखे चारे को यूरिया उपचारित कर खिलायें जिससे पशु को प्रोटीन एवं शर्करा (ऊर्जा) उपलब्ध हो सके।

- अकाल में विशेष तौर पर सभी पशुओं को लवण विटामिन्स मिश्रण जो कि बाजार में विभिन्न ट्रेड नामों (जैसे न्यूट्रिमिन, ऐग्रिमिन फोर्ट, मिल्कमिन इत्यादि) से उपलब्ध है, निम्न मात्रा में खिलाना चाहिए:

दुधारू गाय/भैंस	– 25 से 30 ग्राम प्रति दिन
बाखड़ी गाय/भैंस	– 10 से 15 ग्राम प्रति दिन
बछड़ी/पाडी	– 10 से 15 ग्राम प्रति दिन
भेड़/बकरी	– 3 से 5 ग्राम प्रति दिन

  यह लवण मिश्रण अनुपचारित/उपचारित चारे में या बाँटे में या किसी अन्य भोज्य पदार्थ में मिलाकर पशु को प्रति दिन खिलायें ।

- रतोंधी/आँख पर फूला व चमड़ी सूखी होने पर पशु को विटामिन ए का इजेंक्शन लगवाना चाहिये। इस हेतु सबसे अच्छा तरीका है कि प्रत्येक 2 – 3 महीने बाद पशु को विटामिन ए का इजेंक्शन (ट्रेड नाम विटेड, विटाए इत्यादि) अवश्य लगवा दें।

- शरीर की ऊर्जा की आवश्यकता पूरी करने हेतु समय – समय पर पशु को रसकट गुड़ या शीरा (मोलासीस) खिलाते रहना चाहिये।

जीवाणु जनित रोग

(जीवाणुओं के द्वारा पशुओं में मुख्यतः निम्न बीमारियाँ पाई जाती हैं जैसे टी. बी., थैनेला, गल घोटू, ब्लेक क्वाटर एवं न्यूमोनिया)

गोली वाला रोग या लँगड़ा बुखार (बी क्यू) : यह बीमारी दो वर्ष तक के बछड़ा – बछड़ी में होती है। भेड़–बकरियों में इसका प्रकोप कम होता हैं। स्वस्थ पशु पहले इसकी चपेट में आते हैं। यह बीमारी भी कलास्ट्रिडियम ग्रुप के विशेष जीवाणु से होती है। इस बीमारी में पशु को तेज बुखार हो जाता है व लंगड़ाने लगता है पशु के कंधे या पुटठे की मांसपेंशियों में सूजन आ जाती है जो फोड़े की तरह बन जाता है। इसे दबाने पर कर्र–कर्र की आवाज आती है। पशु की 1–2 दिन में ही मृत्यु हो जाती है। इस बीमारी के इलाज हेतु बाजार में दवा उपलब्ध है, परन्तु इसका बचाव ज्यादा अच्छा रहता है। बचाव के लिये मल्टी कम्पोनेन्ट क्लोसट्रिडियम वेक्सीन का टीका अप्रैल से जून माह (मानसून के पहले) के बीच लगवा लेना चाहिये।

ऐन्थ्रैक्स (तिल्ली ज्वर) : यह जीवाणु जनित बीमारी है तथा गाय–भैंस, भेड, बकरी, सुअर, घोड़े, खच्चर व कुत्तों में पाई जाती है। इसमें अचानक मृत्यु, मुँह, नाक, गुदा एवं भग द्वार से झागयुक्त काला रक्त स्राव, मांसपेशियों में कम्पन, दाँत किटकिटाना, ऑखों का घूमना, श्वसन कठिनाई आदि लक्षण पाये

जाते हैं। इसका बचाव व उपचार एन्टी एन्थ्रैक्स सीरम, एन्थ्रैक्स स्पोर वैक्सीन, इन्ट्राड़रमिक स्पोर वैक्सीन, एन्थ्रैक्स वैसीलस वैक्सीन है। इसका बचाव ही अति आवश्यक है क्योंकि इसकी विशिष्ट चिकित्सा अनुपलब्ध है।

निमोनिया : सर्दी प्रारम्भ होते ही अकाल की मार झेल रहे कमजोर पशु निमोनिया की चपेट में अधिक संख्या में आते हैं। इससे बचाव के लिये पशु को रात में खुला न छोड़ें। पशु को उचित बाड़े में रखें। बीमार पशु का सर्दी से बचाव कर पशु चिकित्सक से इलाज करावें। यह मुख्यतः बेक्टीरिया जनित रोग होता है व एन्टीबायोटिक का पूरा इलाज आवश्यक है।

संक्रामक दस्त : अकाल के समय अक्सर पशु भूख के कारण सड़ा–गला चारा एवं अन्य अभोज्य पदार्थ खा जाते हैं। इन पदार्थो में क्लोसट्रिडियम एवं अन्य जीवाणुओं का संक्रमण होता है जिसके कारण पशुओं को दस्त लग जाते हैं एवं मृत्यु तक हो जाती है। वैसे असंक्रामक दस्त होने पर पशुओं को साधारण दस्त रोकने की दवायें जैसे नेबलोन या डायरोक दी जा सकती है, खुराक – गाय/भैंस, 25 से 30 ग्राम व भेड/बकरी, 5 से 10 ग्राम सुबह शाम दो दिन तक दें। बचाव हेतु सभी पशुओं (गाय, भैंस, भेड़, बकरी) को मल्टी कम्पोनेन्ट क्लोसट्रिडियम वेक्सीन नाम का टीका लगवा लेना चाहिये । खुराक, भेड़/बकरी 4 से 5 मि.ली. तथा गाय/भैंस 10 मि.ली.। यह टीका त्वचा के नीचे (सब–कट) लगता है। टीका बाजार में उपलब्ध है। इसके लिये पशु पालन विभाग से भी जानकारी एवं उपलब्धता मालूम की जा सकती है।

विषाणु जनित रोग

(भेड़ की माता, खुरपका – मुँहपका, दस्त (रिण्डरपेस्ट), रेबीज आदि)

मुरमरी (कोन्टेजियस ऐक्जिमा) : यह रोग मुख्यतः भेड़ व बकरी में होता है। पशु के मुँह पर मुरमरी हो जाती हैं जो कि धीरे–धीरे बढ़ने लगती हैं व खाने में परेशानी पैदा करती हैं। यह रोग तुरन्त ही साथ की भेड़ बकरियों में भी फैलने लगता है। यह वायरस जनित रोग है। मुँह के चारों तरफ नीली दवा (जेनसन वायलेट) लगानी चाहिये व बाद में मीठा तेल/वैसलिन लगाना चाहिये।

खुराड़ा – मुराड़ा/मुँह पका – खुर पका (एफ एम डी) : यह बीमारी जुगाली करने वाले पशुओं में अक्सर सर्दी के मौसम में होती है परन्तु अन्य मौसम में भी हो सकती है। इस बीमारी में पशु के मुँह में (जीभ, तलवा एवं मसूडों) छाले हो जाते हैं। जिसके कारण बहुत अधिक लार गिरती है। छाले मुँह के साथ – साथ खुरों के बीच की जगह तथा थनों पर भी हो जाते हैं। जिसके कारण पशु लंगड़ाने लगता है तथा दूध निकालने में भी पशु को दर्द के कारण परेशानी आती है। मुँह में लार के साथ खून भी आ जाता है। पैरों के घाव में कीड़े भी पड़ सकते हैं तथा कभी–कभी खुर की खोली भी उतर सकती

है। यह देशी पशुओं में अधिकतर 5 – 6 दिनों में ही ठीक हो जाती है परन्तु विदेशी एवं संकर पशुओं में इसका प्रभाव अधिक तीव्र होता है।

बीमारी होने पर मुँह एवं खुर के घावों को लाल दवा के बहुत हल्के घोल 1:10,000 के अनुपात में दिन में 3 – 4 बार धोना चाहिये। बाद में इन घावों पर घी/तेल में मिलाकर कीटाणुनाशक पाउडर जैसे बोरिक पाउडर, सल्फास पाउडर लगाना चाहिये। पावों में कीड़े पड़ जाने पर उस पर तारपीन का तेल एवं मीठा तेल बराबर की मात्रा में मिलाकर रूई द्वारा लगाना चाहिये। इलाज की अपेक्षा बीमारी से बचाव का टीकाकरण अधिक लाभकारी एवं सस्ता पड़ता है। इसका टीका बाजार में उपलब्ध है जिसे बर्फ या फ्रिज में रखना पड़ता है। यह टीका सितम्बर से दिसम्बर माह (सर्दी से पहले) में लगवा लेना चाहिये।

परजीवी जनित बीमारियाँ

(बाह्य परजीवी (टिक्स एवं माईटस), आन्तरिक परजीवी (निमाटोड, टरेमेटोडस एवं सीस्टोडस), प्रोटोजोआ आदि)

अकाल के समय पशु की शारीरिक शक्ति पहले ही कम होती है ऐसे समय में परजीवी पशु के शरीर के ऊपर (बाह्य परजीवी) तथा अन्दर (आंतरिक परजीवी) रहने से वह पशु का खून तथा भोजन चूसने लगते हैं अन्ततः पशु कमजोर व बीमार हो जाता है। यह परजीवी पशुओं द्वारा दूषित पानी पीने, गन्दगी में बैठने या साथी पशुओं से आ जाते है। अतः अकाल के समय प्रत्येक 3 – 4 महीने बाद पशु का बाह्य एवं आंतरिक परजीवीनाशक दवा से उपचार आवश्यक है।

बाह्य परजीवी उपचार/चिकित्सा : पशु के शरीर पर होने वाले विभिन्न प्रकार के जूँ, चिचड़ी, जवा आदि कीड़ों को मारने हेतु विभिन्न बाह्य परजीवी नाशक दवाइयाँ उपलब्ध हैं जैसे कि ऐक्टोमिन, सिपरोल एवं ब्यूटोक्स आदि। इन दवाइयों को एक लीटर पानी में एक से दो मि. ली. के हिसाब से मिलाकर पशु के शरीर पर फव्वारे द्वारा छिड़काव किया जाना चाहिये। यह छिड़काव पशु पर सुबह के समय बाड़े से बाहर खुली धूप वाली जगह पर करना चाहिये। साथ ही साथ पशुओं के बाड़े में भी छिड़काव या डस्टिंग करनी चाहिये (ऐण्डोसल्फान पाउडर 4 प्रतिशत) जिससे कि कोनों, दरारों के कोनों, दरारों व छोटे–बड़े छेदों में रहने वाले चिंचड़े बच न पायें।

सावधानियाँ :

- ये दवाएं फसलों पर छिड़कने वाली दवाओं की तरह बहुत जहरीली होती हैं अतः इन्हें सावधानी पूर्वक प्रयोग में लाना चाहिये।
- दवा का घोल छिड़कते समय पशु को छोटा बाधें।

- पशु की आँख एवं चेहरे पर दवा न छिड़कें।
- दवा छिड़कते समय चारा पानी पास नहीं होना चाहिये।
- दवा छिड़कने से पहले हाथों में दस्ताने पहने एवं स्वयं के चेहरे को ढ़क कर रखें।
- दवा को बच्चों की पहुँच से दूर रखें।
- दवा की खाली शीशी को काम में न लें बल्कि तोड़ कर मिट्टी में दबा दें।

दवा का छिड़काव विशेषतया ऐसी जगह करना चाहिये जहाँ यह बाह्य परजीवी अधिक संख्या में रहते हैं जैसे जाघों में, गुदा द्वार के आसपास, इत्यादि।

आन्तरिक परजीवी उपचार/चिकित्सा : सामान्य तौर पर एवं अकाल के समय विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग सभी पशुओं के अन्दर विभिन्न प्रकार के कृमि पाये जाते हैं जो कि पशु को सीधे नुकसान पहुँचाते रहते हैं। पशुओं में इस प्रकार के परजीवी होने का मुख्य कारण तालाब, खेली आदि का दूषित पानी होना है।

पशुओं को समय–समय पर आन्तरिक परजीवी नाशक दवाई पिला कर परजीवियों से रक्षा की जा सकती है। यह दवाई (खुराक) साल में कम से कम तीन बार (प्रत्येक चार महीने के अन्तराल पर) पशुओं को पिलाई जानी चाहिये। इन दवाइयों में वर्तमान समय में सबसे प्रभावशाली दवा फेनबेन्डेजोल एवं ऐलबेन्डेजोल है। यह दवायें कई रूप में (पाउडर, गोली व घोल) एवं नामों से बाजार में उपलब्ध हैं।

इन दवाओं की खुराक शरीर के वजन के अनुसार होती है। मोटे तौर पर 2 क्विंटल वजन हेतु 1.5 ग्राम (डेढ़ ग्राम) वाला एक बोलस (बड़ी गोली) दी जाती है अतः सामान्य तौर पर भैंस को 2 बोलस, छोटी गाय को एक बोलस दिया जाता है। भेड़ एवं बकरियों हेतु गोलियाँ अलग आती हैं जो कि 150 मिली ग्राम की होती है। प्रति 20 किलो ग्राम वजन हेतु एक गोली दी जाती है।

अन्य बीमारियाँ

आफरा : इस बीमारी में पशु के पेट में गैस इकट्ठी होने के कारण पेट फूल जाता है, रोग गम्भीर होने पर पशु की तत्काल मृत्यु हो सकती है। आफरे के कई कारण हो सकते हैं जैसे फलीदार हरा चारा अधिक खाना, कमजोर पशु द्वारा अधिक चारा खा लेना व तुरन्त पानी पीना, आहार नली में चोट लगने या किसी कारण रुकावट पैदा होने, अचानक एक चारे के स्थान पर बदल कर अन्य चारा देने पर भी पेट में बार–बार गैस भर जाती है। आफरे का तुरन्त इलाज करवाना चाहिये।

चिकित्सा : मुँह में जबड़ों के बीच लकड़ी की एक डंडी डाल दें और सीगों की जड़ में पतली रस्सी बांधकर डंडी को इसी स्थिति में कायम रखें। पशु के बायें पांसू पर तारपीन के तेल में मीठा तेल मिलाकर जोर से मालिस करें। निम्नलिखित सावधानियाँ बरतें –

- पशु को इस तरह खड़ा करें कि उसके अगले पैर ऊँचाई पर रहें।
- पशु को पिसा हुआ कोयला, काला नमक, अदरक या हींग और सरसों खिलाने से फायदा होगा।
- चिकित्सक की सलाह से टिमपोल/बलोटासील इत्यादि आवश्यकतानुसार दें।

गोड़ (गर्दन में गांठ) : यह रोग पशु द्वारा कांटे युक्त चारा खाने से लार ग्रन्थि प्रभावित होने के कारण उत्पन्न हो जाता है। गांठ पर प्रारम्भ में टिंचर आयोडीन लगाना चाहिये व पकने पर मवाद निकाल, नियमित मलहम लगा कर आवश्यकतानुसार पशु चिकित्सक की सलाह लें। अकाल के समय यह रोग गायों व बकरियों में अक्सर देखा जा सकता है।

III औषधीय पौधे

13 बारानी क्षेत्रों में सोनामुखी की खेती

प्रहलाद राय कोठारी, मनजीत सिंह एवं अजीत सिंह शेखावत

भारत वर्ष में विभिन्न प्रकार की औषधीय महत्व की अधिकांश जड़ी–बूटियां पाई जाती हैं। वर्तमान समय में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हर्बल उत्पादों एवं जड़ी–बूटियों की बढ़ती जा रही मांग, हर्बल उत्पादों के प्रति लोगों के पुनर्झुकाव तथा इनकी व्यवसायिक स्तर पर खेती के अत्यधिक लाभकारी होने जैसी विशेषताओं ने विशेष तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में जिस सर्वाधिक संभावना सम्पन्न व्यवसायिक क्षेत्र को जन्म दिया है वह है औषधीय पौधों की खेती तथा इनसे जुड़े व्यवसाय।

ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोजगार के क्षेत्र में युवा वर्ग की ज्यादा से ज्यादा भागीदारी बढ़ाने के लिए तथा स्थानीय संसाधनों के बेहतर उपयोग करने के लिए औषधीय पौधों की खेती के बारे में तथा उनके प्रसंकरण एवं विपणन की जानकारी अति आवश्यक है।

प्रायः ऐसे कृषक जिनका औषधीय पौधों की कृषि के बारे में कोई अनुभव न हो अथवा जो परम्परागत कृषि छोड़कर कोई ऐसा जोखिम न उठाना चाहते हों अथवा जो अपनी बंजर जमीन का उपयोग लाभार्जन हेतु करना चाहें, तो ऐसे कृषकों/क्षेत्रों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है – सेना, सनाय अथवा सोनामुखी की खेती। पूर्णतया बंजर भूमि में उपजाए जा सकने वाले इस औषधीय पौधे के लिए न तो ज्यादा पानी की आवश्यकता होती है, न खाद की तथा न ही किसी सुरक्षा अथवा देखभाल की। एक बार लगा देने के उपरान्त चार–पांच वर्ष तक उपज देने वाले इस पौधे को न तो कोई जानवर जैसे गाय, बैल, बकरी, हिरण, खरगोस आदि खाते हैं तथा न ही कीट ज्यादा हानि पहुंचाते हैं।

सनाय का पौधा कांटे रहित झाड़ीनुमा पौधा होता है। जिसकी ऊंचाई 40 से.मी. से 120 से.मी. तक की होती है। यह मूलतः अरब देश का एक बहुवर्षीय पौधा है तथा वहीं से यह भारतवर्ष में सर्वप्रथम तामिलनाडु में आया था इसलिए इसे ट्रिन्नेवेली सेना के नाम से भी जाना जाता है। राजस्थान में इसे सनाय या सोनामुखी के नाम से जाना जाता है।

सनाय मुख्यतया एक रेचक का कार्य करता है । इसकी पत्तियों तथा फलियों में सेनोसाईड पाये जाते हैं जिनका उपयोग दवाई निर्माण हेतु किया जाता है। यद्यपि सनाय की पत्तियों का मुख्य उपयोग पेट की बीमारियों से संबंधित दवाई बनाने हेतु किया जाता है परन्तु इसके साथ–साथ इनसे अनेकों अन्य

बीमारियो से सबधित दवाईया भी बनाई जा रही है, जैसे पीलिया, अस्थमा, मलेरिया, बुखार, अपच, आदि। वर्तमान मे अनेको आयुर्वेदिक, एलोपैथिक तथा यूनानी व होम्योपैथिक दवाईयो के निर्माता इसकी पत्तियो का उपयोग विभिन्न दवाइयो के निर्माण हेतु कर रहे है। सनाय के डठल भी कई उत्पाद बनाने मे काम आने लगे है अर्थात् इस पादप के सभी भाग उपयोगी है।

सनाय के निर्यात मे भारतवर्ष का एक महत्वपूर्ण स्थान है तथा विदेशी बाजार मे मुख्यत जापान, वेनूजुएला एव यूरोप के देशो मे एक अमिट छाप है। यूरोप मे इसको हर्बल – टी (शाक – चाय) के मुख्य घटक के रुप मे प्रयोग मे लाया जाता है। उपलब्ध आकडो के अनुसार भारतवर्ष इसकी पत्ती का करीब 33 करोड रुपये का निर्यात करता है।

सनाय की खेती के लिये शुष्क जलवायु तथा कम वर्षा की आवश्यकता होती है – विशेष रुप से ऐसे क्षेत्र जहा कभी खेती न हुई हो (बजर क्षेत्र) अथवा जहा खेती मे कभी रासायनिक खाद का उपयोग न किया गया हो, इसकी उपज काफी गुणवत्तापूर्ण होती है। इस प्रकार इसके लिए किसी अतिरिक्त सिचाई की आवश्यकता नही होती। इसकी जडे जमीन मे काफी नीचे तक चली जाती है अत एक बार उग जाने के उपरान्त इसकी जडे अपने आप पानी खोज लेती है। परिमाणत इसे सिचाई की आवश्यकता नही होती है।

सनाय की बुवाई बीजो द्वारा की जाती है, व बुवाई के लिए 15 जुलाई से 15 सितम्बर तक का समय उपयुक्त है। बरसात की अतिम वर्षा के तुरन्त बाद जब खेत मे पर्याप्त नमी हो तब इसकी बुवाई करना उपयुक्त रहता है। बुवाई हल या ट्रैक्टर से कतार मे तथा पौधे से पौधे की दूरी 30 से मी एव पक्ति से पक्ति की दूरी 40–45 से मी रखे। बीज 25 मि मी से ज्यादा गहरा न डाले। 10 – 12 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से बीज डाले।

सनाय के पौधो को कोई विशेष बीमारी एव कीट परेशान नही करते है। विशेषतया कीटनाशक एव रासायनिक खाद का प्रयोग भूलकर भी नही करे क्योकि इसकी पत्तियो का निर्यात केवल दवाइयो एव खाने के लिए ही किया जाता है।

इस फसल की एक बार बुवाई कर देने के उपरान्त इसे किसी विशेष रख–रखाव की आवश्यकता नही होती। बुवाई के करीब 100 दिनो के उपरान्त इसकी पत्तियॉ काटने लायक हो जाती है। पौधे की कटाई जमीन से 7 5 से मी ऊपर से करनी चाहिए। काटते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पौधा जमीन से न उखडे तथा जमीन से इतना ऊपर से कटे कि उसमे आसानी से दोबारा पत्ते आ जाये। इसके 70 – 80 दिन बाद दूसरी कटाई की जाती है। इस प्रकार एक बार लगा देने के उपरान्त यह पौधा 5 साल तक उपज देता रहता है तथा प्रतिवर्ष 3 से 4 कटाइयॉ ली जा सकती है।

सनाय के पत्तों का सूखने के उपरान्त भी हरा रंग रहना चाहिए इसलिए फसल काटने के उपरान्त उनकी छोटी–छोटी ढेरियां लगा देनी चाहिए। पत्तों का रंग हरा रहे इसके लिए पत्तों को छाया में सुखाया जाना उपयुक्त रहता है। सूखने पर पत्तियों को तिरपाल बिछाकर झाड़ लेना चाहिए जिससे पत्तियाँ तथा डंठल अलग–अलग हो जायें। पत्तियों को बोरो में भरकर बिक्री हेतु भिजवाया जा सकता है। तीन – चार कटाइयों से वर्ष भर में सनाय की फसल से लगभग 10 से 12 क्विंटल प्रति हैक्टर की उपज होती है।

यद्यपि प्रारम्भ में बीज किसी प्रमाणिक संस्थान से खरीदना चाहिए, परन्तु भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अथवा फसल को बढ़ावा देने की दृष्टि से यह उपयुक्त रहता है कि कृषक बीजों का उत्पादन भी स्वयं करें। पौधों की कटाई देरी से करके फलियों से बीज तैयार करें। एक प्रमुख औषधीय फसल होने के कारण सनाय की पत्तियों के लिए व्यापक बाजार उपलब्ध है।

सनाय के पत्तों की कटाई के समय का भी सही ध्यान रखना चाहिए। जब फसल कटने वाली हो तब ज्यादा बारिश नहीं पड़नी चाहिए, न ही पाला पड़ने वाला हो, उसके पहले ही कटाई करनी चाहिए। बारानी क्षेत्र में अनुसंधान के नतीजों से सनाय की खेती अत्यधिक लाभप्रद पायी गई है क्योंकि;

- सनाय की खेती किसी भी प्रकार की भूमि (विशेषतया बंजर भूमि) में की जा सकती है।
- अतिरिक्त सिंचाई की आवश्यकता नहीं है।
- किसी प्रकार की खाद अथवा कीटनाशकों की आवश्यकता नहीं।
- पशुओं तथा पक्षियों से फसल को कोई नुकसान नहीं।
- रख–रखाव पर कोई खर्च नहीं।
- ज्यादा देखभाल की आवश्यकता नहीं।
- फसल एक बार लगाने पर पांच वर्ष तक उत्पादन देती रहती है।
- बेकार बंजर भूमि का उचित उपयोग होता है।
- भूमि की ऊपरी मृदा को सुरक्षित रखती है।
- भू–संरक्षण तथा जल संरक्षण के लिये उपयुक्त पायी गयी है।
- फसल निर्यात मूलक होने से विपणन की कोई समस्या नहीं।

पत्तों के अलावा फली और डंठल भी बाजार में बेचे जा सकते हैं। कम समय में ही यह फसल मरुस्थल के कई भागों में प्रचलित हो गयी है और सोजत, बीकानेर आदि स्थानों में इसकी पत्ती को साफ करना, अलग–अलग ग्रेड बनाना और साफ करने के बाद इसे हाईड्रोलिक प्रेस से पैक करने के लिये कई औद्योगिक इकाइयाँ खुल गई हैं। काजरी में किये गये परीक्षणों और किसानों के खेतों पर कुछ पौधों पर वायरस के लक्षण देखे गये हैं। इसके अलावा सनाय से मिलते–जुलते पौधे (केसिआ इटेलीका) भी देखने में आये हैं। सनाय की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए ऐसे बीमारी युक्त व दूसरी जाति के पौधों को खेत में से निकाल कर नष्ट कर देना चाहिए।

14 पश्चिमी राजस्थान में मेहंदी की व्यवसायिक खेती

प्रनव कुमार राय, सज्जन सिंह राव एवं खेमचन्द

मेहंदी एक बहुवर्षीय सूखारोधी झाड़ीनुमा पौधा है। राजस्थान में इसकी खेती, पत्तियों में पाये जाने वाले रंग (1 से 2.5 प्रतिशत लासोन) के लिये की जाती है, जो कि केश रंगने और पारम्परिक साज–सज्जा में काम आता है। इसके अलावा इसके फूलों से प्राप्त सुगन्धित तेल (इत्र) और पौधे के विभिन्न औषधीय गुण सुप्रसिद्ध हैं।

राजस्थान देश में मेहंदी पत्ती का सबसे प्रमुख उत्पादक प्रदेश है। गुजरात (बारदोली) व मध्य प्रदेश अन्य उत्पादक प्रदेश हैं। राजस्थान में पाली जिला विशेषकर सोजत क्षेत्र मेहंदी पत्ती का मुख्य उत्पादन व व्यापारिक केन्द्र है। जिले की 28000 हैक्टर क्षेत्रफल में फैली व्यवसायिक खेती से किसानों को प्रतिवर्ष 40 करोड़ रूपये से अधिक की आमदनी होती है।

जलवायु और भूमि

यद्यपि मेहंदी के पौधे अनेक प्रकार की मृदा व जलवायु में उगाए जा सकते हैं लेकिन अच्छी गुणवत्ता की पैदावार के लिये सामान्य बलुई दोमट भूमि एवं उष्ण और शुष्क जलवायु उत्तम है। जहाँ 400 – 500 मि.मी वर्षा मेहंदी पुनर्विकास और अच्छी वृद्धि के लिये पर्याप्त है, वहीं फसल पकने के लिये तेज धूप, शुष्क वातावरण और गर्मी जरूरी है। इन्हीं कारणो से पश्चिमी राजस्थान में सीमान्त शुष्क और अर्ध – शुष्क क्षेत्र मेहंदी उत्पादन के लिये श्रेष्ठ साबित हुए हैं। इसकी खेती की विधि सरल है और सीमित संसाधनों पर निर्भर करती है।

पौधशाला

मेहंदी फसल की शुरूआत पौधरोपण से होती है। एक हैक्टर में पौधरोपण के लिये 1.5 मी x 10 मी की 8 – 10 क्यारियों में पौधे निम्न विधि से उगाए जा सकते हैं। क्यारियों में 40 – 50 से.मी गहरी बलुई मिट्टी होनी चाहिये, तथा 8 – 10 टन प्रति हैक्टर की दर से सड़ा हुआ खाद या कम्पोस्ट डालना चाहिए । दीमक नियंत्रण के लिये मिथाइल पाराथियॉन 10 प्रतिशत चूर्ण मिलाना चाहिए। मेहंदी का 5 – 6 किलोग्राम बीज उपचारित कर क्यारियों में समान दर से बोना चाहिए।

बीज उपचार : बीज को 10 – 15 दिन तक लगातार पानी में भिगो कर रखा जाता है, हर दिन ताजा पानी प्रयोग करते हुए समय की बचत के लिये 3 प्रतिशत नमक के घोल में एक दिन भिगो कर एक और दिन साधारण पानी में रख कर धो लेना पड़ता है।

बुवाई का समय : फरवरी – मार्च

बुवाई : उपचारित् बीज की मात्रा के बराबर रेत मिलाकर बीज को क्यारियों में छिड़ककर बुवाई करते हैं, तत्पश्चात् हल्का झाड़ू फेरकर व बारीक सड़ा हुआ गोबर ऊपर से छिड़क कर बीज को ढ़क दिया जाता है।

सिंचाई : 10 से 15 दिन में बीज का अंकुरण पूरा होने तक प्रति दिन सिंचाई की आवश्यकता होती है। बाद में हर दूसरे दिन या आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिये।

निराई–गुड़ाई : बुआई के 20 – 30 दिन बाद और समय–समय पर हल्की निराई गुड़ाई करते हैं। पौधशाला में पौधे 3 से 4 माह की अवधि में 30 से 45 सेमी की ऊँचाई प्राप्त कर लेते हैं और खेत में स्थानान्तरित करने योग्य हो जाते हैं।

रोपाई

रोपाई के लिए खेत में पहले हल, तवेदार (हैरो) और कल्टीवेटर चला कर मिट्टी भुरभुरी कर ली जाती है। दीमक नियंत्रण हेतु खेत में 25 किलो ग्राम प्रति हैक्टर मिथाइल पाराथियॉन या क्लोरपाइरीफॉस डस्ट का छिड़काव तथा उत्पादकता व जल संग्रहण बढ़ाने के लिये 5 टन प्रति हैक्टर कम्पोस्ट खाद डालनी चाहिये।

पौधों की रोपाई जुलाई – अगस्त में बरसात के बाद जल्दी की जाती है। पौधशाला में उपलब्ध रोप (जड़ से उखाड़े पौधे) के अधिकतम तना व जड़ को काट कर छोटा करके खेत में स्थानान्तरित करते हैं। खेत में रोपाई 45 से 30 से.मी. की दूरी पर खूटी से 10 – 15 मि.मी. गहरा गडढा करके की जाती है। क्लोरपाइरीफॉस 35 ई.सी. घोल में जड़ों को गीला करके लगाने से दीमक से अतिरिक्त बचाव होता है। जड़ को सूखने से रोकने के लिए आस–पास की मिट्टी को अच्छी तरह दबाना अति महत्वपूर्ण है। रोपण कार्य पूर्ण होने के बाद एक दो बरसात होना जरूरी होती है ताकि रोप खेत में सफलतापूर्वक स्थापित हो सके। रोपे गये पौधों के उचित विकास के लिये 40 किलोग्राम प्रति हैक्टर नत्रजन पौधरोपण के समय देनी होती है।

सिंचाई

सामान्यतः मेहंदी की खेती बरसात पर आधारित खरीफ फसल के रूप में लेते हैं। सफल रोपण के बाद दो या तीन अच्छी वर्षा मेहंदी पत्ती उत्पादन के लिए पर्याप्त है। लेकिन प्रथम वर्ष पौधरोपण के बाद वर्षा नहीं होने की स्थिति में मेहंदी की सफल स्थापना के लिये एक सिंचाई की आवश्यकता रहती है। तत्पश्चात् उत्पादन बढ़ाने या अत्यधिक सूखे से फसल को बचाने के लिये सिंचाई करना एक वैकल्पिक जरूरत है।

चित्र 14.1. मेहंदी के पौधों की कलमों की रोपाई का दृश्य

चित्र 14.2. पाली जिले के सोजत क्षेत्र में मेहंदी की खेती का दृश्य

अन्तराशस्य व पोषण

खरपतवार नियन्त्रण और नमी संरक्षण के लिये निराई – गुडाई जरूरी है। प्रथम वर्ष कुदाली से और बाद के वर्षों में हल चलाकर कर सकते हैं। मेहंदी फसल में एक से दो गुडाई 30 – 50 दिन के अंतराल पर की जाती है। पौधों की उचित बढ़वार के लिये मेहंदी के स्थापित खेतों या बागवानों में हर वर्ष प्रथम निराई – गुड़ाई के समय 40 किलो ग्राम प्रति हैक्टर नत्रजन उर्वरक पौधों के कतारों के दोनों तरफ डालनी चाहिए। अच्छी बरसात की स्थिति में दूसरी निराई – गुडाई के समय इसे दोहरायें।

कीट नियन्त्रण

मेहंदी का मुख्य शत्रु दीमक है। इसके नियंत्रण के लिए 25 किलोंग्राम प्रति हैक्टर की दर से मिथाइल पाराथियॉन या क्लोरपाइरीफॉस डस्ट खेत में निराई – गुड़ाई के समय डालनी चाहिये।

अधिक वर्षा और बदली से उत्पन्न ठंड और नमी वाले वातावरण में मेहंदी की फसल को केस्टर सेमीलूपर से काफी नुकसान पहुँच सकता है। इसकी लटें पत्तियों को तेज गति से खा कर नष्ट करने की क्षमता रखती हैं। क्यूनालफॉस 0.05 प्रतिशत सक्रिय तत्व छिडक कर इसकी रोकथाम करनी चाहिये।

कटाई

मेहंदी की फसल को साल में एक या दो बार काटते हैं। मुख्य फसल मानसून के बाद तेज गर्मी से पत्तियां पकने पर अक्टूबर – नवम्बर में काटी जाती है। कटाई का समय उत्पादन की दृष्टि से बहुत महत्व रखता है। शाखाओं के निचले भाग में पत्तियां पूरी तरह पीली पड़ने और स्वतः झड़ने से पहले ही मेहंदी की फसल काट लेनी चाहिये, क्योंकि पत्तियों का आधा उत्पादन पौधों के निचले एक चौथाई भाग से मिलता है।

पत्तियों से भरी डालियों/शाखाओं को जमीन के नजदीक से काट कर सूखे खेत या अन्य स्थान पर खुले में सूखने के लिये तीन चार दिन तक रख दिया जाता है, सुखाते समय फसल बरसात/पानी से भीगनी नहीं चाहिये। एक भी बौछार कटी हुई मेहंदी की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकती है। इसलिए कटाई के समय मौसम साफ और खुला होना आवश्यक है। सूखने के बाद पत्तियों को झाड़ कर इकट्ठा किया जाता है और बोरियों में भरकर सूखे स्थान पर भण्डारण किया जाता है।

उपज

बारानी फसल से औसतन 1000 से 1500 किलो ग्राम सूखी पत्ती प्रति हैक्टर प्राप्त होती है। स्थापना के प्रथम तीन वर्ष तक पैदावार कम होती है (200 से 600 किलो ग्राम प्रति हैक्टर) मेहंदी बागान सामान्यतः 20 से 30 साल तक उपजाऊ और लाभप्रद रहती है। इस अंतराल के बाद दीमक से इतने पौधे नष्ट हो जाते हैं कि लाभ के लिए किसान को पुनः नई फसल लगानी पड़ सकती है।

आर्थिक लाभ

मेहंदी की खेती में मुख्य लागत प्रथम वर्ष लगभग रू. 15000 प्रति हैक्टर आती है। जिसमें 15 प्रतिशत खर्च जुताई, 55 प्रतिशत मजदूरी और 30 प्रतिशत रोप खरीदने पर होता है। स्वयं रोप उगाने से यह खर्च और कम किया जा सकता है। बाद के वर्षों में इसका आधा व्यय रख–रखाव, कटाई, पत्ती झड़ाई, इत्यादि पर होता है।

मेहंदी की खेती से कुल आमदनी व लाभ सूखी पत्ती की उपज, गुणवत्ता और बाजार (मण्डी) में आवक पर निर्भर करती है। मण्डी में सूखी पत्ती औसतन 20 रू. प्रति किलो ग्राम की दर से बिकती है। एक अनुमान के अनुसार 750 किलो ग्राम उपज से लगभग 6000 रू. प्रति हैक्टर शुद्ध लाभ होता है। स्थापना के प्रथम तीन वर्षों में इससे कम आर्थिक लाभ मिलता है परन्तु बाद में अच्छी उत्पादन व भाव मिलने पर शुद्ध लाभ 2 से 3 गुणा तक बढ़ सकता है।

15

गुग्गुल – एक औषधीय पौध

सुभाष कुमार जिन्दल एवं मनजीत सिंह

जड़ी बूटियों की अपार सम्पदा से हमारा देश विश्व के सम्पन्नतम राष्ट्रों की श्रेणी में आता था। समय के साथ–साथ जड़ी – बूटियों का ज्ञान व भण्डार कम होता गया परन्तु अब भारत सरकार और वैज्ञानिकों का रूझान इस ओर बढ़ा है जिससे औषधीय पौधों की खेती एक व्यावसायिक रूप ले रही है। गुग्गुल इनमें प्रमुख है। गुग्गुल का पौधा, भारतवर्ष के अलावा पाकिस्तान के सिंध व बलूचिस्तान क्षेत्रों, अरब, अफ्रीका व अफगानिस्तान के दक्षिणी भागों में पाया जाता है। भारतवर्ष में यह पौधा राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, आसाम, सिलहट, पूर्वी बंगाल, मैसूर आदि राज्यों के जंगलों में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। यह एक बहुशाखीय झाडीनुमा तथा धीमी गति से बढ़ने वाला पौधा है। इसके पत्ते चिपके तथा 3–3 पत्रक वाले होते हैं। इसकी शाखाएं श्वेत, मुलायम तथा अग्रभाग पर नुकीली होती है। इसकी छाल हरापन लिए पीले रंग की होती है गुग्गुल के तने व शाखाओं पर कागज की तरह की एक झिल्ली सी होती है। इसके तने और शाखाओं से जो गोंद निकलता है वही गुग्गुल कहलाता है।

गुग्गुल का औषधीय उपयोग

गुग्गुल एक दिव्य औषधि है। इसका वर्णन वेदों में भी किया गया है। यह कृमिनाशक, गण्डमाला हर, कफ निस्सारक, मूगल, रसायन, वल्य, शीत प्रशमन, वर्ण्य, कुष्ठध्न लेखन, नाडीबल्य, व्रणशोधक व जन्तुध्न होता है। यह रक्तशोधन, रक्तकण व श्वेतकण वर्धक व यकृत उत्तेजक भी है। वातजन्य व्याधियों में इसका उपयोग विशेष रूप से किया जाता है। गुग्गुल का उपयोग वातरक्त, आमवात, व्रणशोथ, नाडीव्रत, भगन्दर, कुष्ठ, प्रमेह, मूत्रकृच्छ, शेथ, शलीपद, गण्डमाला, उपदंश, नेत्ररोग, शिरारोग, हृदयरोग, अम्लपित्त, स्त्रीरोग, पाण्डुरोग, उदररोग आदि में प्रभावी रूप से किया जा सकता है।

गुग्गुल के धूम्र को अथर्व में यक्ष्मा के कीटाणुओं को नष्ट करने वाला कहा गया है। इसकी गंध से यक्ष्मा के कीटाणु मृगों के समान भाग जाते हैं। नाड़ी संस्थान पर गुग्गुल का प्रभाव बहुत लाभकारी रहता है। इस संदर्भ में एक तो यह वात को संतुलित स्थिति में बनाए रखता है दूसरे समस्त नाड़ी संस्थान को ताकत प्रदान करता है। गुग्गुल त्रिदोष हर, शोथध्न, कृमिध्न व वेदनाहारी होने के कारण कैंसर में भी लाभदायक है। हृदयरोग, विशेषकर हृदयावरोध एवं पाण्डु में भी यह उपयोगी है। यह वसा व पित्त के चयापचय के कारण उत्पन्न होने वाला हृदयरोगों को दूर करने में भी श्रेष्ठ है।

गुग्गुल में प्रमुख रूप से पाए जाने वाले तत्व गुग्गुल के स्टीरोन्स जेड व ई, गुग्गुल स्टीरोल्स, डाइटरपीनायडस, टरपीन और कैम्बरीन है। आयुर्वेद में इसकी दवाएं योगराज गुग्गुल, किशेरगुग्गुल व चन्द्रप्रभा वटी है।

गुग्गुल का कृषिकरण

1960 के दशक में भारतवर्ष में इसका वार्षिक उत्पादन 500 मीट्रिक टन था जो कि 1990 के दशक में मात्र 5 मीट्रिक टन रह गया। गुग्गुल के पौधों से परम्परागत विधि से गुग्गुल निकालने व अत्यधिक दोहन के कारण इसके पेड़ लगातार मरते गये व इसके फलस्वरूप यह पौधा खत्म होने के कगार पर आ गया है। इस लिए भारत सरकार ने इसे दुर्लभ प्रजाति के पौधों की श्रेणी में सूचीबद्ध कर दिया है। इसके परिणामस्वरूप गुग्गुल के या इससे बनी औषधि के निर्यात पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया है। लेकिन यदि किसान अपने खेत पर इसका वृक्षारोपण कर इसकी खेती करके इसका उत्पादन करता है तो वह इसे निर्यात कर सकता है। अब भारतवर्ष में कई स्थानों पर सफलतापूर्वक इसकी खेती की जा रही है।

आज से कुछ दशक पहले भारतवर्ष के जगलों में यह पादप बहुतायत में पाया जाता था। परन्तु इसमें से गोंद निकालने के लिये अति अधिक चीरे लगाने के कारण यह पौधा नष्ट होने की स्थिति में आ गया है। राष्ट्रीय कृषि तकनीकी परियोजना के अन्तर्गत जोधपुर, बीकानेर और सरदार कृषि नगर में गुग्गुल की कई नस्लों को भारत के भिन्न–भिन्न हिस्सों से एकत्रित करने का कार्य किया गया है और तेजी से बढ़ने वाली किस्मों की पहचान की गयी है।

प्रवर्धन

गुग्गुल का प्रवर्धन बीज से, कलम से, गुट्टी बांधना, व टिशू कल्चर से किया जा सकता है, परन्तु सबसे आसान, बढ़िया व कम कीमत वाला तरीका कलम लगाना ही है। वैसे तो साल में किसी भी समय कलम लगाई जा सकती है। परन्तु सबसे उचित समय जिसमें सबसे ज्यादा कलमों की जड़ निकलती हैं और स्वस्थ व मजबूत होती हैं – वह है फरवरी के दूसरे सप्ताह से मार्च के दूसरे सप्ताह तक। कलम की मोटाई तर्जनी अंगुली से पतली नहीं होनी चाहिए तथा हाथ के अंगूठे से मोटी नहीं होनी चाहिए। कलम लगभग 20 सेन्टीमीटर लम्बी होनी चाहिए।

कलम को रोपने के लिए पोलीथिन की थैलियों की आवश्यकता होती है। इन थैलियों में काली मिट्टी, बालू मिट्टी एवं खाद का मिश्रण (1:2:1) भरा जाता है। कलम के निचले हिस्से को 5 सैकण्ड के लिए 4000 पीपीएम आई.बी.ए. में डुबाना चाहिए। लगाने के एक से दो महीने के बीच इन कलमों में नए पत्ते आने शुरू हो जाते हैं तथा जुलाई–अगस्त तक यह पौधे खेत में लगाने लायक हो जाते हैं।

कलम को पेड़ से काटने के बाद 1–2 दिन तक छाया में रखने के उपरान्त हारमोन से उपचारित करने पर अच्छे नतीजे पाए गये हैं।

खेत में स्थानान्तरण

जुलाई से सितम्बर तक का समय इन पौधों (कलमों) को खेत में लगाने का होता है। इस कार्य हेतु सर्व प्रथम 60 X 60 X 60 से.मी. के गड्ढ़े पौधे लगाने के लिए खोदे जाते हैं। जिस थैली में पौध लगाई गई हो उस पोलीथिन की थैली को ब्लेड से काट कर अलग कर लें व उस पौधें को मिट्टी के पिण्ड सहित तैयार किए गए खड्ढे में रोप दें। पौधों को खेत में लगाते समय कतार से कतार व पौधे से पौधे की दूरी 2 मीटर की रखी जाती है। इस प्रकार प्रति हैक्टर 2500 पौधे लगाए जाते हैं। पौधा लगाने के बाद उस के चारों तरफ की मिट्टी को हल्का सा दबा देना चाहिए व हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए।

गुग्गुल के साथ अन्य फसल की खेती करनी है तो पंक्ति से पंक्ति व पौधे से पौधे की दूरी 4 मीटर रखें । गुग्गुल को कोई विशेष कीड़ा या बीमारी नहीं लगती लेकिन दीमक से इसे अवश्य बचाना होता है। दीमक के नियंत्रण के लिए डरमेट का उपयोग किया जाता है। औषधीय पौधों की खेती करने में रासायनिक खाद तथा रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग नहीं करना चाहिए। अतः दीमक नियंत्रण के लिए जैविक तरीका अपना सकते हैं। इसके लिए तैयार किए गए गड्ढ़ों में 2 किलोग्राम नीम की खली डालें या 2 किलोग्राम आक के पत्ते बारीक पीस कर 100 लीटर पानी में घोल तैयार कर लें तथा प्रत्येक पौधे को दो – दो लीटर घोल पिलावें। हर पन्द्रह दिन के अन्तराल से यह प्रक्रिया दो वर्ष तक अपनावें। इससे पौधों को दीमक से बचाया जा सकता है। गुग्गुल के पौधों को अतिरिक्त सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। यह पौधा कम पानी में भी जिन्दा रह जाता है।

गुग्गुल इकट्ठा करना

जब पौधा पांच से आठ साल का हो जाता है तो इसके तने में तेज चाकू से चीरा लगाया जाता है। परिणाम स्वरूप उस पौधे से रस बाहर निकल कर गुग्गुल बनना शुरू हो जाता है। चीरा लगाने का सब से उचित समय दिसम्बर से फरवरी का होता है । हर पौधे से 500 ग्राम तक गुग्गुल प्राप्त किया जा सकता है। मुख्य तने में चीरा देकर गुग्गुल प्राप्त करने से पौधा मर भी जाता है। इसलिए गुग्गुल के व्यावसायिक उत्पादन के लिए एक सुरक्षित विधि अपनाई जानी चाहिए । इसके अनुसार गुग्गुल का पौधा 8 वर्ष का हो जाने पर मुख्य तना व मोटी शाखाओं को छोड़ कर हाथ के अंगूठे से कम वाली पतली शाखाओं को कटर द्वारा काट लिया जाता है। इसके उपरान्त इन शाखाओं को छोटे–छोटे टुकड़ों (10 से 25 मि.मी. तक) में काटकर धूप में सुखा लिया जाता है। सूखने पर इन टुकड़ों को बारीक पीस कर

साल्वेंट विधि से गुग्गुल निकाल लेते हैं। यह एक रासायनिक प्रक्रिया है और इसका प्रायोगिक उत्पादन सफलतापूर्वक किया जा चुका है।

गुग्गुल के वृक्षारोपण से आय

गुग्गुल का बाजार मूल्य 200 – 350 रू प्रति कि.ग्रा. है। प्रति वर्ष 7 से 9 क्विंटल गुग्गुल प्रति हैक्टर प्राप्त की जा सकती है इस प्रकार गुग्गुल के वृक्षारोपण से काफी पैसा कमाया जा सकता है।

16

औषधीय पौधों की खेती – एक लाभकारी व्यवसाय

सुरेश कुमार एवं फरजाना परवीन

औषधीय पौधों से निर्मित दवाओं, स्वास्थ्यवर्धक खाद्य पदार्थो, सौन्दर्य प्रसाधनों एवं पौष्टिक आहार हेतु औषधीय पौधों की मांग स्थानीय तथा विश्व स्तर पर लगातार बढ़ रही है। विश्व की कुल वनौषधि सम्पदा का एक बड़ा हिस्सा भारतवर्ष के विभिन्न भौगोलिक एवं जलवायु वाले क्षेत्रों मे पाया जाता है। भारत वर्ष में लगभग 7500 जंगली पेड़–पौधे औषधि के रुप में उपयोग किये जाते हैं। शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्र में जहाँ बहुत कम वर्षा होती है, अनेक प्रकार की वनौषधि सम्पदा पायी जाती है। इन्ही क्षेत्रों के कुछ महत्वपूर्ण औषधीय पौधों का वर्णन इस लेख में किया है।

तुलसी (*Ocimum sanctum*)

तुलसी का पौधा औषधीय गुणों से परिपूर्ण होने के साथ – साथ सुगन्धित तेल का भी महत्वपूर्ण स्त्रोत है।

वनस्पतिक वर्णन : इसका पौधा रोमयुक्त 30–120 से.मी. ऊँचा व सुगन्धित एवं बैंगनी रंग का होता है। इसमें बैंगनी रंग के फूलों के गुच्छे निकलते हैं। इसके बीज छोटे, चपटे, प्रायः चिकने, अण्डाकार एवं काले रंग के होते हैं। इसमें फूल पूरे वर्ष आते रहते हैं। पांच प्रजातियों में से दो श्याम यानि काले तथा राम यानि हरे रंग की तुलसी प्रमुख हैं।

उपयोग : तुलसी का तेल विभिन्न प्रकार की औषधियाँ बनाने में प्रयुक्त किया जाता है। पत्तियों का रस, ज्वर, खांसी, जुकाम और शरीर के दर्द में लाभकारी है। सम्पूर्ण पौधे का रस कान के दर्द में विशेष लाभकारी है। दंत रोगों में पत्तियों का काढ़ा उपयोग किया जाता है, इसके बीज मूत्र विकारों में सहायक (Diuretic) होते हैं। तुलसी का रस चर्म रोगों के लिये लाभकारी है। तीव्र गन्ध के कारण यह मच्छरों को भगाने में उपयोग में लायी जाती है। तुलसी का सेवन केवल शरद ऋतु में ही किया जाना चाहिए।

खेती : पहले तुलसी के बीजों से नर्सरी में पौधे अप्रैल से जून माह तक तैयार कर लें। गोंबर की खाद 20 टन/हैक्टर डालकर तवेदार हल से जमीन जोतकर समतल करें तथा अच्छी वर्षा उपरान्त क्यारियाँ बनाएँ। छः सप्ताह पुरानी पौध को खेत में रोपें तथा आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। इसको लगभग 15 – 20 दिन में पानी देना पड़ता है। सालाना 20 – 25 सिंचाई करनी पड़ती हैं। कम से कम तीन बार खरपतवार निकालना चाहिए। खेतों को साफ सुथरा रखें। तीन – चार माह के पश्चात् पौधों की पत्तियों को काट लें एवं छाया में सुखाएँ। 3 – 4 दिन में पत्तियाँ सूख जाएगीं। कुल 35 क्विंटल पत्तियाँ एक

हैक्टर से प्राप्त की जा सकती हैं। जिनका बाजार मूल्य 15 – 18 रू प्रति कि.ग्रा. रहता है। इस प्रकार प्रति हैक्टर लगभग 50,000 रू की आमदनी प्राप्त की जा सकती है।

ग्वार पाठा (*Aloe vera*)

वनस्पतिक वर्णन : यह 30–45 से.मी. ऊँचा, बहुवर्षीय, मांसल पौधा है। इसके पत्ते 45 से.मी. लम्बे, 7 – 10 से.मी. चौड़े एवं किनारों पर कांटे युक्त होते हैं, इसके मध्य भाग से पुष्प दण्ड निकलता है, जिस पर लाल व हल्के पीले फूल लगते हैं। इसकी पत्ती को काटने पर विशेष गंध युक्त लसलसा द्रव निकलता है। यह पौधा प्रायः सभी स्थानों पर पाया जाता है।

उपयोग : औषधीय गुणों से भरपूर इसके करीब 250 उत्पाद आजकल बाजार में बिक रहे हैं। इसकी पत्तियों के रस से मालिश करने पर चर्म रोगों में व जली हुई त्वचा पर आराम मिलता है। इसका छिलका दांत पर रगड़ने पर दंत विकारों में लाभ मिलता है। यह कब्ज नाशक है, तथा गठिया रोग में लाभकारी है। यकृत की सूजन दूर करने में काम आता है। सौन्दर्य प्रसाधन, स्किन क्रीम में बहुतायत से उपयोग में लिया जाता है।

खेती : इसको अकेले या अन्य फसलों के साथ, बारानी या सिचांई, टीबा, कंकरीली या दोमट, किसी भी वातावरण में लगाया जा सकता है। खेत को जोतकर तैयार करें, 15 टन/ हैक्टर गोबर की खाद डालें तथा जड़ से निकले बच्चे ग्वारों को पहली वर्षा के बाद 1–1 मीटर की दूरी पर लगाएँ। यदि पानी उपलब्ध है तो बरसात के उपरान्त सिंचाई अवश्य करें।

उपज : एक वर्ष पश्चात् पत्तियाँ काट कर फार्मेसी वालों को बेच सकते हैं, बेचान अनुबंध से सुविधा रहती है। एक हैक्टर से लगभग 10–12 टन हरी पत्तियाँ मिलती हैं। जिनसे लगभग दूसरे वर्ष में 18000 रू प्रति हैक्टर एवं तीसरे से 10 वर्ष तक करीब रु 30,000/– प्रति हैक्टर तक की आय हो सकती है।

गिलोय (*Tinospora cordifolia*)

वनस्पतिक वर्णन : यह एक बहुवर्षीय बेल है, जो पठारी या रेतीली भूमि में उगने वाले झाड़ों या पेड़ों पर प्राकृतिक रुप से उगती है तथा उगाई भी जा सकती है। इसके हृदयाकार पत्ते एवं छाल मोटी दाने युक्त होती है। इसमें नर व मादा पुष्प अलग–अलग होते हैं। फल लाल रंग के होते हैं जो फरवरी से अप्रेल में आते हैं।

उपयोग : पूरा पौधा औषधीय है। इसका रस पीलिया एवं मूत्र विकार में उपयोगी है। सूखे तने का चूर्ण शक्तिवर्धक है, तथा दस्तों व उल्टियों में प्रभावी है। गठिया तथा वायु रोग में उपयोगी है।

खेती : तने की कलम काट कर फरवरी – मार्च में रोपने पर 2 – 3 माह में पौधे तैयार कर सकते हैं तथा बरसात में खेत में लगा सकते हैं। बीजों से भी बुवाई कर सकते हैं। एक हैक्टर में 5000 कटिंग

चित्र 16.1. तुलसी *(ओसिमम सेंक्टम)*

चित्र 16.2. ग्वार पाठा *(एलो वेरा)*

चित्र 16.3. बड़ा गोखरू *(पेडिलियम म्यूरेक्स)*

तक लगा सकते हैं। खेत को तैयार करते समय 10–12 टन प्रति हैक्टर की दर से गोबर की खाद डाल सकते हैं। खरपतवार सही समय पर निकालें। कटिंग लगाने के बाद पानी देवें। यदि वर्षा न हो तो बाद में 2 – 3 सिंचाई की आवश्यकता होती है। एक वर्ष बाद बेल के तने जमीन के ऊपर से काट कर 10 से.मी. के टुकड़े करके सुखा लेते हैं।

उपज : पहले वर्ष कम यानि 10–12 क्विंटल प्रति हैक्टर व इसके पश्चात् अधिक उपज ली जा सकती है । प्रथम वर्ष 5000 रू प्रति हैक्टर लेकिन उसके पश्चात् कई वर्षो तक 15–18 हजार रुपये प्रति हैक्टर तक आय ले सकते हैं। इनको खेजड़ियों के तनों के साथ उपर भी चढ़ा सकते हैं। एक खेजड़ी के साथ 2 – 3 बेलें लगा सकते हैं। इसके अलावा इसकी बेल को खेतों की मेड़ो पर, मेड़ पर लगे पेड़ या झाडों पर लगा सकते हैं। बेल को घर या झोंपे के ऊपर भी चढ़ा सकते हैं। एक बेल से औसतन एक पाव तक सूखा गिलोय ले सकते हैं। यदि फैलाव ज्यादा है, तो उपज भी ज्यादा होगी। सूखी गिलोय 20 रु प्रति किलोग्राम के भाव से बेची जा सकती है।

रतनजोत (*Jatropha curcas*)

वनस्पतिक वर्णन : जमालघोटा के नाम से मशहूर यह पौधा आज डीजल का विकल्प है। इसका पौधा अक्सर सड़क किनारे, पथरीली इलाके तथा परती भूमि पर मिलता है। एक ऊँचा झाड़ या छोटा पेड़ नुमा इस पौधे में 3 – 5 नोक की हृदयाकार पत्तियाँ होती हैं। हरे, पीले फूल तथा गोल फल में भूरे काले बीज होते हैं। बीजों में 40 प्रतिशत तेल होता है।

उपयोग : फल एवं बीज का उपयोग रक्ताल्पता, भगन्दर तथा दस्तों (*Chronic dysentry*) को ठीक करता है। छाल को गठिया व कोढ़ (*Leprosy*) में उपयोगी मानते हैं। टहनियों का दातुन करने से दांत रोग ठीक होते हैं। मसूड़ो से रक्त बहना बंद हो जाता है। बीज का तेल जुलाब लेने के काम आता है। इसी तेल से अब गाड़ियाँ चलाने की कोशिश की जा रही है।

खेती : बीज या तने की कटिंग नर्सरी में फरवरी में लगाते हैं, ताकि जुलाई में यह खेत में लगाने हेतु तैयार हो जाए। खेत में 2 मीटर x 2 मीटर या 2 मीटर x 1 मीटर की दूरी के साथ 60 x 60 x 60 से.मी. के गड्ढे करके उनमें गोबर / मींगणी की खाद डालकर जुलाई में इन पेड़ो को लगा सकते हैं। प्रथम वर्ष 1 – 2 सिंचाई देने पर बढ़वार अच्छी होती है। 2 वर्ष बाद डालों की छंटाई से तीसरे वर्ष अच्छे एवं ज्यादा फल लगते हैं।

उपज : तीन वर्ष उपरान्त एक पेड़ से लगभग 1/2 किलोग्राम, जो कि चौथे वर्ष 1 किलोग्राम, पांचवे वर्ष व बाद में 2 – 4 किलोग्राम प्रति पेड़ बीज प्राप्त होता है, जो कि बाजार में 10 रु प्रति किलोग्राम की दर से बिकता है। एक हैक्टर में 2500 पेड़ लगाने से तीसरे वर्ष में शुद्व लाभ 18000 रू प्रति हैक्टर से बढ़कर सात वर्ष उपरान्त 50000/– रु प्रति हैक्टर तक प्राप्त की जा सकती है।

बड़ा गोखरु (*Pedalium murex*)

वनस्पतिक वर्णन : एक वर्षीय, शाकीय, मांसल 30से 45 से.मी. तक ऊँचा यह पौधा अक्सर परती बंजर भूमि पर बरसात में उगता है। इसकी पत्तियाँ विपरीत विन्यास में आगे से नुकीली लेकिन पीछे से हृदयाकार होती हैं। फूल पत्तियों के डंठल के नीचे से निकलते हैं, जिसका रंग पीला होता है। फल में चार मजबूत काँटे होते हैं। फूल एवं फल अगस्त से अक्टूबर में लगते हैं।

उपयोग : इसके सभी हिस्से उपयोगी हैं। फल का उपयोग मूत्र विकार एवं नपुसंकता दूर करने में प्रभावी है। इसकी कई दवाइयाँ बाजार मे उपलब्ध हैं।

खेती : बीजों को अच्छी तरह जुताई किए हुए खेत में पहली बरसात के बाद लगाएँ। रेतीली जमीन में अच्छी बढ़वार होती है। ध्यान रखें कि ये पौधे 60 x 60 से.मी. से ज्यादा दूर न हों। बरसात यदि बिल्कुल न हो तो दो सिंचाई आवश्यक है, वरना इसकी भी आवश्यकता नहीं है।

उपज़ : फलों को सितम्बर–अक्टूबर में इकट्ठा कर छाया में सुखाएँ। गोखरू के फलों को 80 रु प्रति किलोग्राम तक बेचा जा सकता है।

सहजन (*Moringa oleifera*)

वनस्पतिक वर्णन : यह एक मध्यम ऊँचाई वाला पेड़ है, जो कि बगीचों, सड़क किनारे व घरों में दिखाई देता है। तीन पत्रकों की एक पत्ती होती है एवं प्रत्येक पत्रक विपरीत विन्यास में हृदयाकार होते हैं। फूल सफेद एवं सुगन्धित होते हैं। फल, एक लम्बी फली के रूप में होता है जिसमें 9 धारियाँ होती हैं।

उपयोग : पेड़ के सभी भाग उपयोगी हैं। यकृत एवं हृदय संबंधी रोगों में उपयोगी है। पत्ते, फूल व फल सब्जी के रुप में प्रयोग आते हैं। बीज का तेल गठिया में प्रभावी है।

खेती : बरसाती दिनों में तने की कलम से लगाते हैं। इसकी विधिवत खेती एवं आय के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। लेकिन हर शहर की सब्जी मण्डी में इसके कच्चे व पक्के फल बहुतायत से बिकते हैं। खेती के लिए 60 x 90 x 60 से.मी. के गड्ढ़ें में कलम से तैयार पौधे जुलाई माह में रोपते हैं तथा सिंचाई करते हैं। इसको रसोई के निकले पानी देकर भी उगा सकते हैं। पानी से बढ़वार अच्छी होती है।

IV बागवानी एवं अन्य क्रियाएँ

17 उन्नत बेर उद्यान विकास

पुरखा राम मेघवाल

सूखे से मुकाबले की रणनीति के तहत बेर की खेती का महत्वपूर्ण योगदान है। यह एक बहुउपयोगी फल वृक्ष है जिसके विभिन्न भागों का आर्थिक उपयोग होता है। पौष्टिक फलों के अलावा इसकी पत्तियाँ पालतू जानवरों के लिये एक उत्तम किस्म् का चारा प्रदान करती हैं। इसके अतिरिक्त इसमें प्रति वर्ष होने वाली कटाई–छंटाई से उपयोगी काँटेदार झाड़ियाँ प्राप्त होती हैं जिनका उपयोग बाड़ बनाने व भण्डारित चारे की सुरक्षा के लिये किया जाता है।

उन्नत किस्मों का चयन

उन्नत बेर की 300 से भी अधिक किस्में विकसित हो चुकी हैं लेकिन सभी किस्में बारानी क्षेत्रों विशेषकर कम वर्षा वाले क्षेत्रों के लिये उपयुक्त नहीं हैं। ऐसे क्षेत्रों के लिये अगेती व मध्यम समय में पकने वाली किस्में ज्यादा उपयुक्त पाई गई हैं। अगेती किस्में (गोला, काजरी गोला, मूण्डिया) दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में पकना प्रारम्भ होकर पूरे जनवरी माह तक उपलब्ध रहती हैं। मध्यम किस्मों (सेव, कैथली, छुहारा, दण्डन) के फल मध्य जनवरी से मध्य फरवरी तक पकते हैं। देर से पकने वाली किस्में मध्य फरवरी से मार्च के अन्त तक उपलब्ध रहती हैं, उदाहरण – उमरान, इलायची, टीकड़ी इत्यादि।

पौधे लगाना

सर्व प्रथम जिस खेत में बगीचा स्थापित करने जा रहे हैं उसमें से जंगली झाड़ियाँ वगैरह काट कर समतल कर देना चाहिये। अगर सिंचाई के लिये कोई स्थाई जल स्रोत नहीं हो तो एक टांका (20000 लीटर क्षमता) प्रति एकड़ जमीन के अनुसार जरूर बनाना चाहिये ताकि उसमें वर्षा जल एकत्रित किया जा सके व आवश्यकता पड़ने पर इसे सिंचाई के लिये उपयोग में ले सकें। खेत की तैयारी मई – जून के महीने में ही कर देनी चाहिये। इसके लिये 6 x 6 मीटर की दूरी पर रेखांकन करके 0.6 x 0.6 x 0.6 मीटर आकार के गड्ढ़े खोदें। इनको कुछ दिन धूप में खुला छोड़ने के पश्चात इसमें 10 किलोग्राम मीगंणी की खाद मिट्टी में मिला कर भर दें तथा गड्ढे के मध्य बिन्दु पर एक लकड़ी की खूँटी गाड़ दें। पहली अच्छी बरसात होने के बाद जुलाई – अगस्त में पहले से कलिकायन किये हुए पौधे प्रत्यारोपित करें। पौधे लगाते समय ध्यान रहे कि पोलीथिन की थैली एक तरफ से ब्लेड से काट कर जड़ो वाली मिट्टी को यथावत रखते हुए पहले से भरे हुए गड्ढ़ों के मध्य बिन्दु पर पोलीथिन के आकार (10 x 25

से.मी.) का छोटा गड्ढ़ा खोद कर पौधों को प्रतिरोपित करें तथा उसके चारों तरफ की मिट्टी को अच्छी तरह दबाने के बाद सिंचाई करें। तत्पश्चात् 10–15 दिन के अन्तर पर सिंचाई करते रहें।

कटाई – छंटाई

पौधों की अच्छी बढ़वार व उत्तम गुणवत्ता वाले फल प्राप्त करने के लिये कटाई–छंटाई नितान्त आवश्यक है। प्रारंभिक वर्ष में मूल तंत्र से निकलने वाली शाखाओं को समय–समय पर हटाते रहें ताकि कलिकायन किये हुए ऊपरी भाग की उचित वृद्धि हो सके। इसके बाद एक मजबूत ढांचे के विकास के लिये अगले दो वर्षो में पेड़ों की छंटाई की जाती है। इसके लिये दो से चार मज़बूत शाखाओं को हर दिशा में बढ़ने देते हैं प्रत्येक शाखा के बीच 15 – 30 से.मी. की दूरी रखते हैं। बेर में प्रतिवर्ष फल उत्पादन के लिये कृन्तन करते हैं क्योंकि इसकी पत्तियों की कक्ष से जो नये प्ररोह निकलते हैं उन्ही पर फल व फूल लगते हैं। जितनी अधिक नई शाखाएं निकलेंगी उतने ही ज्यादा फल लगेंगे। इसलिये प्रति वर्ष कृन्तन का उद्देश्य पेड़ को अधिक से अधिक नई शाखाओं के उत्पादन के लिये उकसाना होता है। बेर के पेड़ मई की तेज गर्मी के साथ ही सुषुप्तावस्था में प्रवेश कर जाते हैं यही समय कृन्तन करने का सबसे उपयुक्त है। इस समय पिछले वर्ष की सभी शाखाओं को 4 – 5 आँख छोड़कर शेष को काट देते हैं (चित्र 17.1) साथ ही अनचाही, रोगग्रस्त, सूखी तथा एक दूसरी के ऊपर से गुजरने वाली शाखाओं को उनके निकलने के स्थान से पूरा ही हटा देते हैं।

सिंचाई

बेर के पौधों में एक बार भली भांति स्थापित हो जाने के पश्चात बहुत ही कम सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। अगर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो तो गर्मियों में 15 जून के बाद एक भारी सिंचाई करें ताकि उसमें प्रस्फुटन शुरू हो सके। इसके बाद अगर मानसूनी वर्षा ठीक ठाक हो तो सितम्बर तक सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है वरना 15 – 20 दिन के अन्तर पर सिंचाई जारी रखें। इसके पश्चात फल लग जाने तक सिंचाई में थोड़ा विराम देते हैं। तदुपरान्त 15 नवम्बर से फलों के पकने तक एक महीने के अन्तर पर सिंचाई करते रहें। किस्म विशेष के संभावित पकने के समय से करीब 15–20 दिन पहले सिंचाई बन्द कर दें, ताकि फलों में मिठास बढ़िया विकसित हो सके।

खाद एवं उर्वरक

खाद एवं उर्वरकों की जरूरत क्षेत्र विशेष की मिट्टी की उर्वरता शक्ति के अनुसार भिन्न–भिन्न हो सकती है तथा यह पौधों की उम्र पर भी निर्भर करती है। फिर भी एक सामान्य जानकारी के लिये खाद एवं उर्वरकों की मात्रा नीचे तालिका 17.1 में दर्शाई गई है –

तालिका 17.1. पौधों की उम्र अनुसार खाद एवं उर्वरकों की मात्रा और इनके देने का समय

पौधों की उम्र, (वर्ष)	गोबर की खाद, कि. ग्रा. प्रति पौधा	सुपर फास्फेट, ग्राम प्रति पौधा	यूरिया, ग्राम प्रति पौधा
1	10 कि. ग्रा.	350 ग्राम	220 ग्राम
2	20 कि. ग्रा.	700 ग्राम	440 ग्राम
3	30 कि. ग्रा,	1400 ग्राम	1100 ग्राम
4	40 कि. ग्रा.	1750 ग्राम	1200 ग्राम
5	40 कि. ग्रा.	1750 ग्राम	1200 ग्राम
खाद देने का समय	मई – जून	जून – जुलाई	आधा जुलाई में आधा नवम्बर में

निराई – गुड़ाई

वर्षा ऋतु में विशेषकर पौधों के चारों ओर बहुत सारे खरपतवार उग आते हैं । इन्हें समय–समय पर निकालते रहना चाहिये। पौधों के चारों ओर 1.5 मीटर व्यास का थाला बनावें तथा इसको खरपतवारों से मुक्त रखें (चित्र 17.2)।

रोगों एवं कीडों से बचाव

फल मक्खी : इस मक्खी की वयस्क मादा बढ़ते हुए फलों पर अण्डे देती हैं तथा ये अण्डे लटो में बदल कर फल को अन्दर से नुकसान पहुँचाते हैं और फल खाने योग्य नहीं रहते। इसकी रोकथाम व नियंत्रण के लिये मई – जून में बाग की मिट्टी पलटें। जब अधिकांश पौधों पर फल मटर के दाने के आकार के हो जायें उस समय मोनोक्रोटोफास 36 एस.एल. 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी या एण्डोसल्फान 35 ई. सी. 1 मि.ली. या डाईमिथोएट 30 ई. सी. 1 मि. ली. प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें तथा दूसरा छिड़काव 15 – 20 दिन बाद करें।

छाल भक्षी कीट : यह कीट शाखाओं के जोड़ पर छाल के अन्दर घुस कर छाल को खा कर इसको कमजोर बना देता है । फलस्वरूप फलों के बोझ के कारण वह शाखा टूट जाती है तथा उस शाखा पर लगे फलों का सीधा नुकसान होता है। रोकथाम के लिये बगीचे को साफ रखें तथा जुलाई माह में डाइक्लोरवास 1 मि. ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर नई शाखाओं पर छिड़काव करना चाहिये।

छाछया रोग : इस रोग के प्रकोप के कारण पत्तियों, फूलों व कच्चे फलों पर सफेद पाउडर छा जाता है । फलस्वरूप पत्तियाँ मुड़कर झड़ जाती हैं तथा फूल व फल भी झड़ जाते हैं । इसके नियंत्रण के लिये केराथेन 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर दो – तीन छिड़काव 15 दिन के अन्तर पर करें।

फल–उत्पादन व आर्थिक विश्लेषण

सूखे से मुकाबले के लिये बेर की खेती वास्तव में एक सुरक्षा कवच साबित हुई है। सही अर्थ में बेर एक बहुउपयोगी फलदार पौधा है (चित्र 17.3) इन्ही कारणों से बेर को अकाल के विरूद्ध बीमा की संज्ञा दी जाती है। पिछले बीस साल में वर्षा आधारित खेती व सीमित सिंचाई के द्वारा किया गया औसत फल व अन्य उत्पाद तथा उनसे अर्जित आय का विवरण तालिका (17.2) में दर्शाया गया है :

तालिका 17.2. बेर (किस्म गोला) से औसत फल व अन्य उत्पाद व आय का विवरण

उत्पाद	दर,रू. / कि.ग्रा.	बारानी अवस्था		सिंचित अवस्था	
		उपज, क्विंटल / है.	आय, रूपये / है.	उपज, क्विंटल / है.	आय, रूपये / है.
फल	600	48	28800	97	58200
सूखी जलाऊ लकड़ी	60	9	540	13	910
सूखी पत्तियों का चारा	250	5	1250	8	2000
कांटेदार शाखाऐं (सूखी)	50	11	550	18	900
कुल आय			31140		62010
अनुमानित खर्चा			15000		27000
शुद्ध आय			16140		35010
परम्परागत खेती से कुल आय (बाजरा फसल से)			6000		9000

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि बेर की खेती बारानी अवस्था में भी बहुत फायदेमंद है, फलों के अलावा सूखी जलाऊ लकड़ी, पत्तियों का चारा तथा कांटेदार शाखाएँ अतिरिक्त आमदनी का साधन हैं। इस परिस्थिति में भी बेर की खेती से एक हैक्टर में लगभग 15000 रूपये की शुद्ध आय प्राप्त की ज़ा सकती है। खर्चे के रूप में एक बड़ा हिस्सा (लगभग 80 प्रतिशत) श्रम का है। जिसका मतलब है इसकी खेती वर्ष के अधिकांश समय में रोजगार के अवसर पैदा करती है। अगर बेर की खेती सिंचित अवस्था में की जाये तो सकल व शुद्ध आय दोनों करीब दुगनी हो जाती है। अगर हम वर्ष 2002 के सूखे को देखें तो बेर की गोला किस्म ने उस वर्ष भी 11 किलोग्राम प्रति पेड़ फल उत्पादन दिया जिससे कम से कम 8–10 हजार रूपये प्रति हैक्टर की शुद्ध आय अर्जित हुई है। इस तरह बेर की खेती सूखे से लड़ने के लिये एक वरदान है।

चित्र 17.1. बेर के बगीचे में पौधों की कटाई–छटाई का दृश्य

चित्र 17.2. कृन्तन किया हुआ बेर का पनपता बगीचा

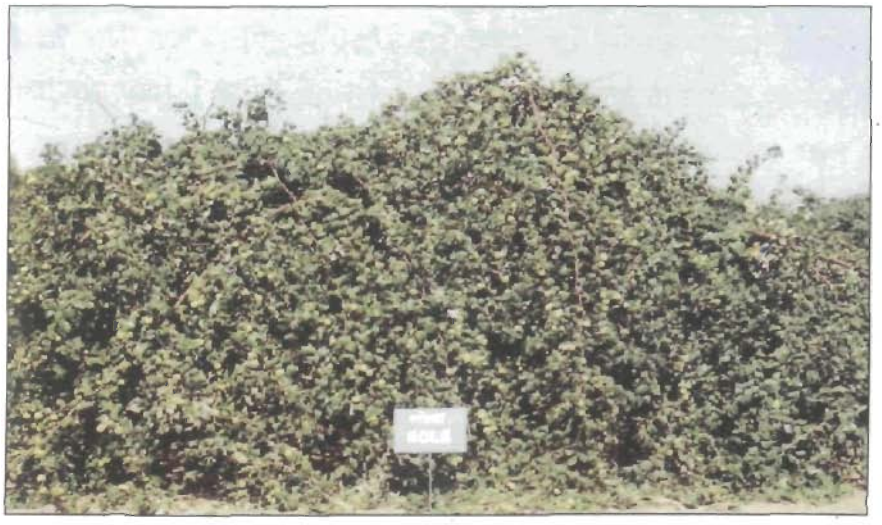

चित्र 17.3. काजरी द्वारा विकसित गोला बेर के फलों से लदा वृक्ष

18

शुष्क क्षेत्रों में पारम्परिक फसल–चक्र में उन्नत किस्मों का समावेश

जबरदान कविया एवं तेजेन्द्र कुमार भाटी

राजस्थान के उत्तर–पश्चिमी भाग में थार रेगिस्तान अपने पांव पसारे हुए है। यहाँ की रेतीली भूमि में जल व पोषक तत्वों को रोक कर रखने की क्षमता नहीं के बराबर है। गर्मियों (अप्रैल से जून) में यहाँ हवायें बहुत तीव्र गति (30–40 किलो मीटर प्रति घण्टे) से बहती हैं तथा अपने साथ खेत की ऊपरी सतह की उर्वरा मृदा का क्षय करती हुई ले जाती है। विगत वर्षो में इस क्षेत्र में चारागाहों की भूमि में निरन्तर कमी आई है तथा किसानों में फसल उत्पादन की ओर रूझान बढ़ा है। समुचित फसल, जल एवं मृदा प्रबन्ध के अभाव में भूमि की उर्वरा शक्ति निरन्तर कम हो रही है साथ ही फसल उत्पादन पर भी विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। इसके अलावा जनसंख्या तथा पशु संख्या में वृद्धि होने से जुताऊ भूमि पर अतिरिक्त दबाव बढ़ गया है। जनसंख्या बढ़ने से खेती योग्य भूमि का प्रति व्यक्ति जोत कम होने पर भूमि को बार–बार जोतने से भी भूमि का उपजाऊपन प्रति वर्ष कम होता जा रहा है।

राजस्थान के उत्तर–पश्चिमी भाग में खरीफ में पैदा होने वाली मुख्य फसलें बाजरा, मोठ, मूंग तथा ग्वार हैं। किसान सदियों से इन फसलों की अलग–अलग रूप से बुवाई करते आ रहे हैं तथा अपने खेतों का उपजाऊपन बनाये रखने के लिये कई सार्थक तरीके अपनाते आ रहे हैं। इस तरह का अनुभव उनको पीढ़ी दर पीढ़ी मिलता आया जो कि फसल उत्पादन कार्यक्रम बन गया। नागौर, बीकानेर, जोधपुर, पाली तथा जैसलमेर जिलों के किसान खेतों का उपजाऊपन बराबर बनाये रखते हुए अधिक फसल उत्पादन के लिये खेती एक निश्चित फसल चक्र के रूप में करते आ रहे हैं जिनको वैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर बहुत ही उपयोगी पाया गया है। अतः इन फसल चक्रों को इनकी विशेषताओं व थार मरुस्थल की विभिन्न आन्तरिक परिस्थितियों के साथ अगर उन जिलों के अलावा अन्य जिलों के किसानों के लिये प्रसारित किया जाय तो भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने व अधिक उपज प्राप्त करने में सहायता मिल सकती है। इन पारम्परिक फसल चक्रों के साथ उन्नत कृषि तकनीकों में उन्नत किस्म, समन्वित पोषक तत्व, जल पौध संरक्षण, उन्नत कृषि यन्त्रों का प्रयोग उचित समन्वय कर यहाँ के किसान अपने खेत से अधिक आमदनी प्राप्त करने के साथ ही इसकी उत्पादकता क्षमता में भी वृद्धि कर सकते हैं। मुख्य रूप से निम्नलिखित पारम्परिक फसल चक्र अपनाये जा रहे हैं –

परती भूमि – ग्वार – बाजरा/बाजरा + मोठ

जोधपुर जिले के किसान यह फसल–चक्र अपनाते हैं। खेत को परती /खाली रखने के बाद ग्वार की फसल लेते हैं तथा तीसरे वर्ष उसी खेत में बाजरा/बाजरा + मोठ की बुवाई करते हैं। इस तरह भूमि का उपजाऊपन बराबर बना रहता है क्योंकि इस फसल–चक्र में दलहनीय फसल की बुवाई व भूमि को परती रखने जैसी मृदा की उर्वरा क्षमता बढ़ाने वाली तकनीकों का समावेश है।

सेवण घास – ग्वार – बाजरा – मोठ

बीकानेर जिले में सेवण घास बहुतायत से होती है। खेत में हर वर्ष खरीफ की बुवाई करते रहने से सेवण घास बहुत फैल जाती है। 3–4 वर्ष बाद उस खेत में ट्रैक्टर हैरो चलाकर सेवण घास के बूझों को तोड़ना पड़ता है जिससे सेवण घास हल्का पड़ने से अन्य फसलों की बुवाई में पहले वर्ष ग्वार की बुवाई करते हैं बाद में दूसरे वर्ष बाजरा तथा तीसरे वर्ष मोठ की बुवाई करते हैं। इस फसल चक्र से सेवण घास मृदा में कार्बनिक तत्व की मात्रा बढ़ाने में बड़ी सहायक है साथ ही खेत में भूमि को वायु के कटाव से बचाती है तथा इस विधि में वर्षा जल भी भूमि में अधिक मात्रा में समाता है। इस तरह सेवण घास के साथ दलहनी फसलें मोठ, ग्वार से अच्छा उत्पादन प्राप्त होता है।

परती भूमि – तिल – ग्वार – बाजरा

नागौर जिले के किसान अपनी सुविधानुसार खेत को 1 से 3 वर्ष तक (खेत का 10–15 प्रतिशत भाग) खाली रखते हैं। जिसे परती रखना कहते हैं। तद्उपरान्त दूसरे वर्ष ग्वार व तीसरे वर्ष बाजरा लिया जाता है। यह विधि पूर्ण रूप से वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है। इस फसल चक्र में यह पाया गया है कि जमीन को खाली छोड़ने से मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है। परती रखने के बाद प्रथम वर्ष तिल लेने से अच्छा उत्पादन 4–5 क्विंटल प्रति हैक्टर लिया जा सकता है तथा उसी खेत में द्वितीय वर्ष में ग्वार की फसल लेने से अच्छा उत्पादन 8–10 क्विंटल प्रति हैक्टर के साथ मृदा की उर्वरा शक्ति में भी वृद्धि होती है। तीसरे वर्ष उसी खेत में बाजरे की फसल ली जाती है। इस फसल चक्र में किसान भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाये रखते हुए बाजरे का अच्छा उत्पादन 8 से 10 क्विंटल प्रति हैक्टर लेते हैं।

परती भूमि – ग्वार/मोठ – बाजरा

पाली व नागौर जिले के किसानों में यह फसल चक्र प्रचलित है। इस फसल चक्र के अन्तर्गत पहले वर्ष किसान खेत में पशुओं को चराने के लिये खाली छोड़ देते हैं व दूसरे वर्ष ग्वार या मोठ की बुवाई करते हैं तथा तीसरे वर्ष बाजरे की फसल लेते हैं।

मूंग – तिल – ग्वार या ग्वार – तिल

पाली जिले में लघु व बड़े किसान उपरोक्त फसल चक्र से खेती करते हैं। पाली जिले की भूमि में दोमट मिट्टी अधिक मात्रा में है इस कारण फसल चक्र में किसान तिल को अधिक महत्व देते हैं।

फसल चक्र में हरी खाद

पाली जिले में खेतों में हरी खाद के लिये अधिकतर किसान ग्वार की बुवाई करते हैं। ग्वार में फूल आने के समय किसान ट्रैक्टर हैरो चलाकर जमीन में दबा देते हैं। कुछ किसान हरी खाद के लिये सनई या ढैंचा की खेती भी करते हैं तथा ग्वार की खड़ी फसल में फूल आने पर खेत में जुताई कर जमीन में मिला देते हैं जो कि हरी खाद के रूप में सड़ कर भूमि का उपजाऊपन बनाने में सहयोग करता है। इसे अपना कर किसान अपने खेत में कार्बनिक तत्व की मात्रा बढ़ा देते हैं तथा साथ ही 25 – 30 किलो ग्राम नत्रजन की भी उपलब्धता अगली फसल के लिये बढ़ जाती है। पाली जिले में सरदार समंद बांध के क्षेत्र में किसान खरीफ में ग्वार या तिल की बुवाई करते हैं। बांध में उपयुक्त जल नहीं भरने पर तिल को फसल के रूप में ले लेते हैं। बांध में सिंचाई योग्य जल की आवक होने पर ग्वार/तिल की खड़ी फसल में फूल आने पर उसे जुताई कर जमीन में हरी खाद के लिये मिला देते हैं तथा रबी में गेहूँ या रायड़ा की फसल लेते हैं।

फसल–चक्र में सोनामुखी

अकाल/सूखे की समस्या का सामना करने के लिए इस क्षेत्र के किसान विगत 5 वर्षो से सोनामुखी फसल लेने लगे हैं क्योंकि सोनामुखी से अनावृष्टि, अतिवृष्टि तथा वर्षा की अनिश्चितता होने पर भी अच्छी आमदनी मिलने लगी है। सोनामुखी फसल को निम्न क्रम में लिया जाता है –

सोनामुखी – बाजरा – गेहूँ

सोनामुखी के साथ बाजरा

सोनामुखी – मोठ

केवल सोनामुखी (3 वर्ष)– बाजरा

सोनामुखी – तिल

इस फसल चक्र को अपनाने से खेत को खाली रखने की आवश्यकता नहीं रहती। किसान सोनामुखी के डंठल का खाद के रूप में उपयोग करके बाजरा तथा गेहूँ में अच्छी पैदावार लेने लगे हैं।

पारम्परिक फसल चक्र में उन्नत किस्मों को अपनाने से किसानों को सूखे की स्थिति का सामना करने में बहुत मदद मिल सकती है क्योंकि निम्न किस्में कम समय में पकने की क्षमता रखती हैं –

बाजरा – एच. एच. बी. 67 तथा सी. जेड. पी. 9802

ग्वार – आर. जी. सी. 936

मोठ — काजरी मोठ 2, आर. एम. ओ. 40

मूंग — आर. एम. जी. 62

तिल — आर. टी. 46

19

कुमट से गोंद उत्पादन

हामिद अली खान एवं लक्ष्मीनारायण हर्ष

कुमट (अकेशिया सेनिगल) मरु प्रदेश में पाया जाने वाला जाना माना बहुउपयोगी वृक्ष है। कुमट की फली एवं इसके बीज को भोजन में स्वादिष्ट सब्जी की तरह उपयोग किया जाता है। इसके पत्ते पशुओं के लिए चारे के रूप में काम आते हैं एवं लकड़ी का उपयोग ईंधन के अतिरिक्त कृषि उपयोगी यंत्रों के हत्थे आदि बनाने में होता है। कुमट की शाखाएं घनी एवं कांटेदार होती हैं। इसलिए इसको खेतों के चारों ओर बाड़ की तरह लगाने से फसल की सुरक्षा होती है।

कुमट, औषधीय गुणों से युक्त बहुमूल्य गोंद, (गम–अरेबिक) का महत्वपूर्ण स्त्रोत है। हमारे देश में कुमट के पेड़ राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश एवं हरियाणा के शुष्क क्षेत्रों में बहुतायत में पाये जाते हैं परन्तु प्राकृतिक रूप में इन पेड़ों से गोंद बहुत कम मात्रा में ही प्राप्त होता है जबकि सूडान इस गोंद का मुख्य निर्यातक देश है । कुमट से प्राप्त होने वाला यह गोंद औषधि उद्योग के अतिरिक्त, कपड़ा, कागज, चर्वण निर्यास, सौन्दर्य सामग्री, खाद्य पदार्थ इत्यादि उद्योगों में भी प्रचुर मात्रा में उपयोग किया जाता है । इसी कारण विभिन्न उद्योगों में उपयोग के लिए प्रतिवर्ष इस गोंद का भारी मात्रा में आयात किया जाता है। यही कारण है कि कुमट के पेड़ों से अधिक मात्रा में गोंद प्राप्त करने की दिशा में काजरी जोधपुर में अनुसंधान किया गया है एवं कुमट से अधिक मात्रा में गोंद प्राप्त करने की तकनीकी विकसित की गई है। विकसित तकनीक से एक वृक्ष से एक किलोग्राम से भी अधिक मात्रा में गोंद प्राप्त किया जा सकता है। कुमट से अधिक मात्रा में गोंद उत्पादन की तकनीकी के मुख्य बिन्दु इस प्रकार है –

कुमट के पेड़ों को उपचारित करने की विधि

कुमट से अधिक मात्रा में गोंद प्राप्त करने की तकनीक बहुत ही साधारण है इस तकनीकी में कुमट के पेड़ के तने में समुचित ऊँचाई पर गिरमट से लगभग 1.5 से.मी. व्यास एवं 5 से.मी. गहराई का एक छेद किया जाता है। इस छेद में प्लास्टिक की सिरिन्ज से निश्चित सांद्रता का 4 मि.ली. गोंद उत्प्रेरक (इथिफोन) घोल (780 मि.ग्रा. सक्रिय तत्व 4 मि.ली. घोल में) डाल दिया जाता है। तंत्पश्चात् छेद को साफ की हुई चिकनी मिट्टी के लेप द्वारा बाहर से बन्द कर दिया जाता है। इसके उपरान्त पेड़ पर कहीं किसी तरह का घाव नहीं किया जाता है। यदि पर्यावरणीय परिस्थितियां अनुकूल हों तो शीघ्र ही चार या पांच दिनों में उपचारित पेड़ों पर जगह – जगह से गोंद का रिसाव आरम्भ हो जाता है (चित्र 19.1–4) जब गोंद सूख जाता है और कड़ा हो जाता है तो इसे इकट्ठा कर लिया जाता है। एक बार गोंद एकत्र करने के पश्चात उपचारित पेड़ पर कुछ ही दिनों में पुनः गोंद आने लगता है इस

प्रकार उपचारित पेड़ से दो या तीन बार गोंद इकट्ठा किया जा सकता है। यह गोंद फार्मेकोपिया ऑफ इण्डिया में वर्णित 'भारतीय गम' के मापदण्ड के अनुरूप पाया गया है।

पेड़ों के उपचार का उपयुक्त समय

अधिक गोंद उत्पादन के लिए कूमट के पेड़ों के उपचार का उपयुक्त समय वह है जब पेड़ पर लगी पत्तियां एवं फलियां लगभग सूख कर गिर जाती हैं। यह समय पश्चिमी राजस्थान में फरवरी के अन्तिम सप्ताह से प्रारम्भ होकर मई या जून तक चल सकता है। पर्यावरणीय दृष्टि से अधिक तापक्रम एवं सूखा मौसम अधिक गोंद प्राप्त करने में सहायक होते हैं।

पेड़ों से गोंद इकट्ठा करना

पेड़ों पर तैयार गोंद को एक उचित लम्बाई के बांस की सहायता से धीरे से धक्का लगाकर एवं पेड़ के नीचे बड़ा कपड़ा आदि बिछाकर आसानी से इकट्ठा कर लिया जाता है इस विधि से स्वयं का कुमट के कांटों से बचाव हो जाता है और गोंद जमीन की मिट्टी एवं अन्य कूड़ा करकट से सुरक्षित भी रहता है।

निश्चय ही कुमट से अधिक मात्रा में गोंद प्राप्त करना पश्चिमी राजस्थान के किसानों के लिए एक अच्छी अतिरिक्त आमदनी का साधन है इससे न केवल क्षेत्रीय ग्रामीणों की आर्थिक दशा में सुधार होगा अपितु क्षेत्रीय लोग इस बहुउपयोगी वृक्ष के संरक्षण एवं इसकी पैदावार बढ़ाने के लिए भी प्रेरित होंगे। फलतः नये–नये क्षेत्र तथा मुख्य रूप से वह क्षेत्र जो कृषि योग्य नहीं है वनस्पति की परिधि में आएंगे जिससे पर्यावरण सुरक्षा की दिशा में भी योगदान होगा । अधिक मात्रा में गोंद उत्पादन से अब तक आयात किये जाने वाले बहुमूल्य गम–अरेबिक में न केवल हमारा देश आत्मनिर्भर हो सकता है अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गम–अरेबिक की मांग को देखते हुए अतिरिक्त गोंद विदेशों को निर्यात भी किया जा सकता है।

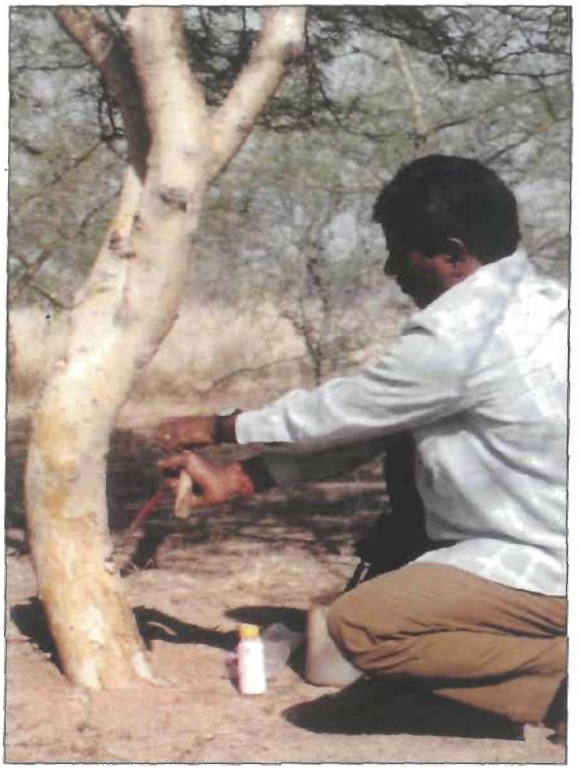

चित्र 19.1. कुमट के पेड़ के तने में छिद्र बनाना

चित्र 19.2. गोंद उत्प्रेरक घोल छिद्र में डालना

चित्र 19.3. चिकनी मिट्टी के लेप से छिद्र को बन्द करना

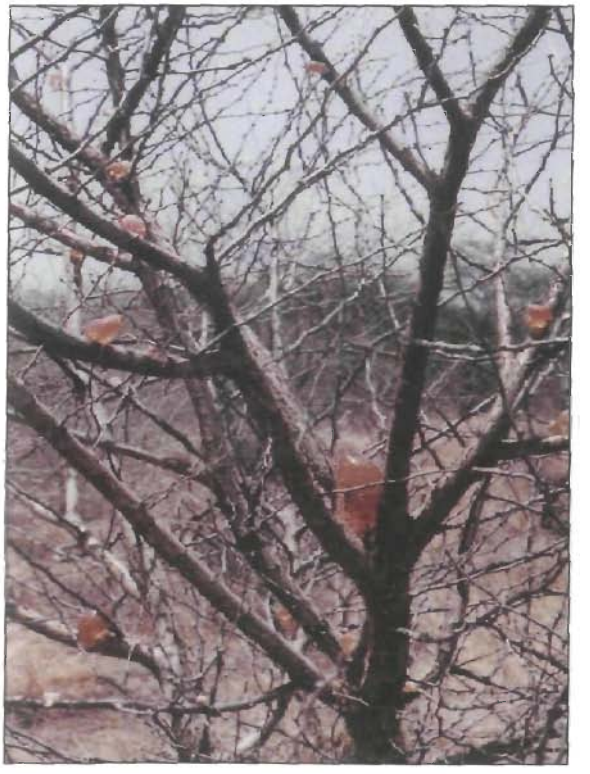

चित्र 19.4. उपचारित कुमट के पेड़ पर लगे गोंद का दृश्य

20

खरपतवारों से आय उपार्जन

सुरेश कुमार एवं फरजना परवीन

सृष्टि के प्रारंभ से ही मनुष्य अपनी महती आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वनस्पतियों पर निर्भर रहा है। खाद्य, चारा, लकड़ी, फल, कपड़े तथा औषधियों के स्त्रोत, ये पादप मनुष्य के आसपास बहुतायत में मिलते आये हैं । हाल के दशकों में औषधीय पौधों का बढ़ता प्रचलन व उपयोग, व्यापार व निर्यात की आकर्षक संभावनाओं के परिपेक्ष्य में इनको अच्छी आय के स्त्रोत में लक्षित किया जा रहा है। इन्हीं में से कुछ पौधे जो पश्चिमी राजस्थान में खरपतवार के रूप में खेतों, खलिहानों या फिर ओरन, गोचर आदि में मिलते हैं थोड़ा श्रम करके एकत्रित किये जा सकते हैं तथा उन्हें स्थानीय स्तर पर बेच कर किसान अतिरिक्त आय अर्जित कर सकते हैं। इनका वर्णन निम्नलिखित है –

शंख पुष्पी (*Convolvulus microphyllus*)

वनस्पतिक वर्णन : शंखपुष्पी का पौधा सिन्तरी के नाम से जाना जाता है, रेतीली जमीन में खरपतवार के रुप में उगता है। यह प्रायः जमीन पर फैलने वाला पौधा है। इसकी पत्तियां लम्बी व नुकीली होती हैं। इसका पुष्प गुलाबी सफेद रंग का होता है। इसमें फूल व फल अगस्त से सितम्बर माह में लगते हैं।

उपयोग : सम्पूर्ण पौधा (पंचाग) औषधीय रुप से उपयोगी है। यह प्रायः बुद्धिवर्धक औषधियां बनाने में काम आता है।

उपज : फल और बीज के पकने से पहले ही पौधा एकत्रित करके छाया में सुखा देना चाहिए। सूखे पौधे को बाजार में बेचने पर 15–20 रू प्रति ग्राम के हिसाब से प्राप्त किये जा सकते हैं।

मकोय (*Solanum nigrum*)

वनस्पतिक वर्णन : यह वर्षा ऋतु में बाग–बगीचों व खाली स्थान पर पाया जाता है यह पौधा देखने में मिर्ची के पौधे की तरह लगता है। इसके पुष्प छोटे, सफेद रंग के गुच्छे में लगते हैं। इसका फल गूंदी के फल के आकार का बैंगनी रंग का होता है। इसमें फल व फूल सितम्बर से दिसम्बर माह में आते हैं।

उपयोग : सम्पूर्ण पौधा औषधीय है। यह चर्मरोगों जैसे खुजली व दाद में उपयोगी है। पौधे का रस एवं क्वाथ पीलिया रोग में और यकृत की वृद्धि कम करने में लाभकारी है। पौधे का लेप फटे एवं जले हुए भाग पर जोड़ो एवं फोड़े फुन्सी पर लगाने से घाव जल्दी भर जाता है।

उपज : पौधे के छोटे – छोटे टुकड़े काट कर धूप मे सुखाना चाहिये और फलों को अपरिपक्व अवस्था में तोड़ना चाहिये। सूखे पौधे का बाजार मूल्य 10 रु एवं फल का 30–40 रू प्रति किलोग्राम है।

छोटा गोखरू (*Tribulus terrestris*)

वनस्पतिक वर्णन : यह रेतीली एवं कंकरीली जमीन पर वर्षा ऋतु में पाया जाने वाला पौधा है। यह जमीन पर फैलने वाला पौधा है । इसकी पत्तियाँ चने के पत्तों जैसी होती हैं। फूल पीले रंग का होता है और फल के ऊपर दो बड़े व दो छोटे कांटे होते हैं।

उपयोग : सम्पूर्ण पौधा औषधीय है इसकी जड़ व फल मूत्र वर्धक एवं गुर्दे की पथरी में लाभदायक है। इसकी पत्तियां खून को साफ करने वाली और मुख रोग में भी उपयोगी हैं। पौधे को पानी में मसलकर पीने से नपुसंकता दूर होती है।

उपज : सम्पूर्ण पौधे के छोटे–छोटे टुकड़े करके छाया में सुखाना चाहिये। फल को पकने के बाद तोड़कर धूप में सुखाना चाहिये। सूखे फलों को बेचकर 15–20 रुपये प्रति किलोग्राम से प्राप्त किये जा सकते हैं।

इन्द्रायन (*Citrullus colocynthis*)

वनस्पतिक वर्णन : यह पौधा रेगिस्तानी क्षेत्र में बेल के रुप में वर्षा ऋतु में पाया जाता है। यह तुम्बे के नाम से जाना जाता है इस पर पीले रंग के फूल लगते हैं। इसका फल पकने पर पीले रंग का सफेद धारी वाला होता है।

उपयोग : इसका फल, जड़ और बीज काम में लिये जाते हैं । इससे गुणकारी औषधि जुलाब तैयार किया जाता है। इसकी जड़ पीलिया, मूत्ररोग, गंठिया एवं कान के दर्द में लाभकारी है। पके फल की धूनी मुँह में लेने से दंत रोगों में आराम मिलता है। इसके बीजों से तेल निकाला जाता है ।

उपज : फल पकने के बाद जड़ को जमीन से निकाल छोटे–छोटे टुकड़े कर धूप में सुखा लेते हैं। पके हुए फल से बीज अलग करके उनको भी सुखाते है जड़ का बाजार भाव 10 – 15 रु प्रति किलोग्राम होता है।

अपामार्ग (*Achyranthes aspera*)

वनस्पतिक वर्णन : यह वीरान क्षेत्रों में, बंजर स्थानों में, रेतीली भूमि पर, बड़े वृक्षों के नीचे पाया जाता है। यह प्रायः अंधा जाला के नाम से जाना जाता है। इसके फूल छोटे, हरे रंग के और नीचे की तरफ झुके रहते हैं । इसके बीज कांटेदार होते हैं।

उपयोग : इसका सम्पूर्ण पौधा औषधीय रुप में उपयोगी है। अपामार्ग पथरी, दंत, खांसी बलगम और पेट के रोगों में लाभकारी है।

उपज : फल आने से पहले पौधों को छाया में सुखाकर एकत्रित करें। बीजों को परिपक्व होने पर एकत्रित कर धूप में सुखाना चाहिये। इसके पौधे और बीज को बेचने पर 8 – 15 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से आय प्राप्त कर सकते हैं।

पुनर्नवा (*Boerhavia diffusa*)

वनस्पतिक वर्णन : यह पौधा सांटी एवं चिनावरी के नाम से जाना जाता है। प्रायः सभी स्थानों पर वर्ष – पर्यन्त मिलता है इसकी शाखायें जमीन पर फैल कर फिर खड़ी रहती हैं। फूल गुच्छे के रुप में गुलाबी रंग के होते हैं।

उपयोग : सम्पूर्ण पौधा उपयोगी है। यह मूत्र वर्धक एवं कब्ज नाशक है। रतौंधी में अत्यधिक उपयोगी है पत्तियों की सब्जी बनाकर काम में लिया जाता है इसकी पत्तियों व जड़ को पीसकर बिच्छू के काटे स्थान पर लगाने से विष उतर जाता है।

उपज : पूरे पौधे को जड़ सहित उखाड़कर जड़ को अलग सुखाया जाता है। इसकी जड़ का मूल्य 12–20 रु प्रति किलोग्राम प्राप्त होता है।

शरपुखाँ (*Tephrosia purpurea*)

वनस्पतिक वर्णन : यह प्राकृतिक रुप से सभी मैदानी व रेगिस्तानी इलाकों मे पाया जाता है। यह एक बहुवर्षीय, बहुशाखित 30 से 75 से.मी. ऊँचा पौधा होता है। इसके हरे, गोल, चिकने तने से 5 – 9 पत्रकों की पत्तियां निकलती हैं पत्रक की ऊपरी सतह चिकनी व नीचे वाली रोयेंदार होती है । इसके पुष्प बैंगनी रंग के होते हैं और फली सीधी, चपटी व रोयेंदार होती है।

उपयोग : सम्पूर्ण पौधा, उदर रोग, त्वचा रोग, गुर्दा रोग और श्वास नली की सूजन दूर करने के काम आता है। पत्तियों का धुंआ अस्थमा में उपयोगी है । बीजों के तेल से खुजली तथा एग्जीमा रोग ठीक हो जाते हैं।

उपज : फल आने के पश्चात् इसको जड़ सहित उखाड़ कर छाया में सुखाना चाहिये। सूखने के पश्चात् जड़ अलग कर ली जाती है। सूखे पौधे को बेचने पर 10–15 रु प्रति किलोग्राम व जड़ को बेचने पर 30–40 रु प्रति किलोग्राम की आय अर्जित की जा सकती है।

बल (*Sida cordifolia*)

वनस्पतिक वर्णन : यह प्राकृतिक रुप से रेगिस्तान में पायी जाने वाली वनस्पति है इसके पौधे पर सफेद रुई जैसे रोंये पाये जाते हैं। फूल पीले रंग के होते हैं और फल गोल, चक्राकार एवं कंघी की तरह होते हैं।

उपयोग : सम्पूर्ण पौधे का क्वाथ बार – बार आने वाले ज्वर में लाभकारी है। फोडे को जल्दी पकाने के लिये पत्तियों व जड़ को पीस कर उसका लेप लगाया जाता है यह एक बलवर्धक औषधि भी है।

उपज : फल पकने के बाद पौधे को जड सहित उखाड़कर धूप में सुखाया जाता है। पके फल से बीजों को अलग किया जाता है। इस पौधे के बीज 20 रु प्रति किलोग्राम एवं पंचाग 10 रु प्रति किलोग्राम की दर से बेचे जा सकते हैं।

चामकस (*Corchorus depressus*)

वनस्पतिक वर्णन : यह कंकरीली भूमि में सड़क के किनारे शुष्क जमीन पर पाया जाता है। यह वर्षा ऋतु में अधिक होता है। यह जमीन पर फैलने वाला पौधा है। इसके फूल पीले रंग के और फलियाँ चार धारीवाली होती हैं।

उपयोग : सम्पूर्ण पौधा बलवर्धक है।

उपज : पौधे को दोपहर के समय छोटे–छोटे टुकड़े करके धूप में सुखाना चाहिये। सूखा पौधा 10 – 15 रु प्रति किलोग्राम की दर से बेचा जा सकता है।

कालमेघ (*Andrographis paniculata*)

वनस्पतिक वर्णन : यह पौधा छायादार व नमी वाले स्थान पर पाया जाता है इसको किरायता के नाम से भी जाना जाता है। यह एक वर्षीय पौधा है। इसका तना चतुष्कोणीय होता है इसका फूल हल्के बैंगनी रंग का होता है। इसकी फली चपटी व लम्बी होती है।

उपयोग : सम्पूर्ण पौधा औषधीय है। यह पीलिया, यकृत संबंधी रोग और श्वास संबंधी रोगों में लाभकारी है। पौधे का क्वाथ रक्त शोधक एंव ज्वर में काम आता है। इसकी सूखी पत्तियों व तने से चिरायता नामक औषधि बनाई जाती है।

उपज : सम्पूर्ण पौधे को फल और बीज आने के पश्चात् उखाड़ कर छाया में सुखा लेना चाहिये। इसका पंचाग 18 रु प्रति किलोग्राम की दर से बेचा जा सकता है।

चित्र 20.1. शंख पुष्पी
(कनवोल्यूलस माइक्रोफिलस)

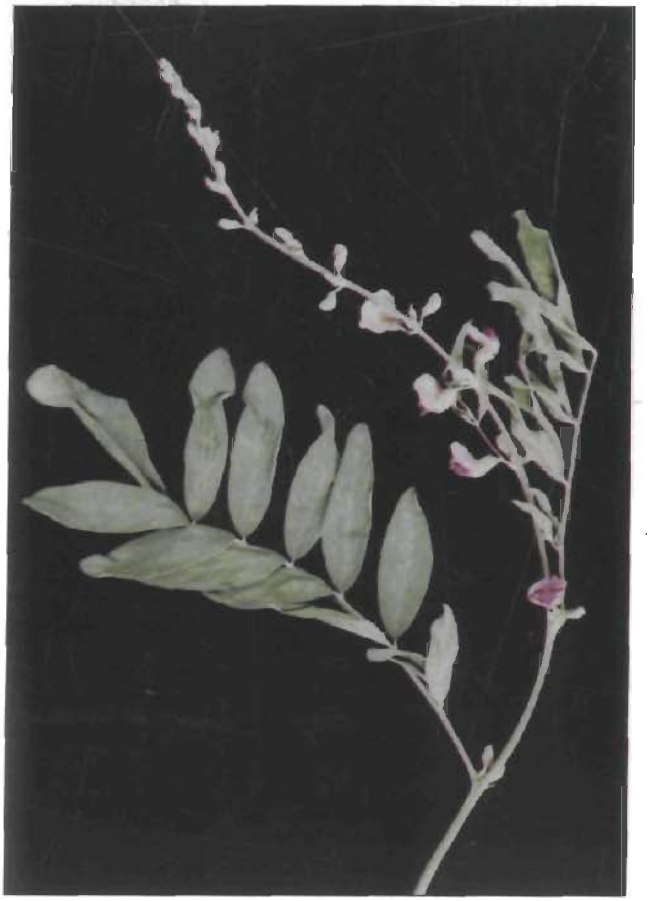

चित्र 20.2. शरपुखाँ
(टेफरोसिया परफ्यूरिया)

चित्र 20.3. इन्द्रायन *(सिटरुलस कोलोसिन्थिस)*

21

विलायती बबूल के उपयोग

जीवन चन्द्र तिवारी एवं लक्ष्मीनारायण हर्ष

भारतवर्ष में विलायती बबूल मुख्यतः जलाऊ लकड़ी के लिए एक तीव्र फैलने वाले खरपतवार के रूप में जाना जाता है। यद्यपि इसकी फलियाँ शुष्क व अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में पशुओं के चारे में एक प्रमुख भाग होती हैं, फिर भी इसे वांछित महत्व नहीं मिल पाया है। इसके बहु–आयामी उपयोग का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

जलाऊ लकड़ी के रूप में

शुष्क व अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में विलायती बबूल की लकड़ी घरेलू ईंधन का एक महत्वपूर्ण तथा आसानी से उपलब्ध होने वाला स्रोत है। इसकी लकड़ी समान रूप से व कम धुएं के साथ जलती है तथा इसका कैलोरीमान भी बहुत ऊँचा है (4200 किलो कैलोरी/किग्रा)।

पौधे की तरुण अवस्था (2–3 वर्ष) में ही जलाऊ लकड़ी के सभी गुण आ जाते हैं। जिससे हरी शाखाओं को ही एक–दो दिन धूप में सुखाकर काम में ले सकते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में तो प्रायः प्रतिदिन की आवश्यकता के अनुसार लकड़ी काटकर सीधे ही चूल्हे में जलाने में उपयोग कर लेते हैं। इसकी लकड़ी लघु उद्योगों में भी ईंधन के रूप में काम में ली जाती है जैसे भट्टी में धातुओं की सफाई, मिट्टी के बर्तन बनाने व बेकरी आदि। इस कार्य के लिए प्रायः 10 से.मी. से ज्यादा व्यास के तने ही उपयोग में लिए जाते हैं।

ईंधन के लिए 1–10 से.मी. व्यास की शाखाओं को लगभग 1 मी. लम्बा काटकर, 10–15 शाखाओं की एक साथ गठरी बाँधकर गॉव/शहर में बेचने के लिए लाया जाता है। प्रायः छोटी (आधा मीटर तक) व लम्बी शाखाओं (एक मीटर से ज्यादा) को अलग–अलग बेचा जाता है। शाखाओं को मानसून समाप्त होने के बाद काटकर घर के पास 15–20 दिन सूखने के लिए रख दिया जाता है। एक सामान्य प्रथा यह भी है कि जो पेड़ की कटाई करता है, वही व्यक्ति सूखी शाखाएं भी प्रयोग में लेता है तथा इसमें पंचायत आदि संस्थाओं का कोई हस्तक्षेप नहीं होता है।

लकड़ी का कोयला (चारकोल)

लकड़ी अधिक स्थान घेरने वाली व परिवहन में महंगी साबित होती है। इसका कोयला बनाने से वजन कम होने के साथ कीमत व ऊर्जामान बढ़ जाता है। चारकोल का उपयोग मुख्यतः भोजनालय, बेकरी, छोटे लोहे का सामान बनाने एवं मक्का या चावल के दानों को भूनने के लिए उपयोग में लिया जाता है। चारकोल की कीमत स्थान विशेष व परिवहन लागत पर निर्भर करती है। समान्यतः 20

किलोग्राम चारकोल भरी थैली 80 रुपए में मिलती है। चारकोल का उत्पादन उसके उपभोग क्षेत्र से काफी दूर के स्थानों पर होता है जिनमें गुजरात का कच्छ व राजस्थान के पाली, जालोर तथा सिरोही जिले मुख्य हैं। यहां यह आजीविका का एक प्रमुख साधन है।

अधिक व्यास वाले तनों (10 सेमी से बड़े) का उपयोग उन्हें हवा की अनुपस्थिति में जलाकर चारकोल बनाने में किया जाता है। पारंपरिक रूप से मिट्टी से ढककर चारकोल बनाया जाता है (चित्र 21.1)। चारकोल बनाने से पूर्व लगभग समान व्यास के तनों/शाखाओं का अलग–अलग ढ़ेर बना लिया जाता है। इसके उपरान्त इन शाखाओं को पानी में थोड़ा गीला करके मिट्टी से ढ़ककर आग लगा दी जाती है। ढ़ेर के आकार के अनुसार 3–8 दिन में चारकोल बनने की प्रक्रिया पूरी हो जाती है। इसके बाद ढ़ेर से मिट्टी हटा दी जाती है तथा चारकोल ठंडा होने दिया जाता है और अन्त में वर्गीकृत कर थैलों में भरकर बाजार में बेच दिया जाता है। एक किलोग्राम चारकोल बनाने के लिए लगभग 6–7 किलोग्राम लकड़ी की आवश्यकता होती है।

चारकोल बनाने के लिए उन्नत विधि – रिटार्ट भट्टी : हालांकि यह विधि अभी भारतवर्ष में उपलब्ध नहीं है लेकिन कई देशों में बहुत प्रचलित है। इसमें धातु के बेलनाकार कक्ष में (2 मीटर लंबा व 1 मीटर व्यास) लकड़ी का ढ़ेर जमा कर कक्ष के बाहर से आग लगाकर इस कक्ष में से गुजारी जाती है। इस प्रकार मात्र 48 घण्टे में अधिक मात्रा में (लगभग 32 प्रतिशत) चारकोल बन जाता है।

इमारती लकड़ी के रूप में

विलायती बबूल की लकड़ी को इमारती लकड़ी के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है। अच्छे गोल तनों को फर्नीचर बनाने में, लम्बे व अपेक्षाकृत कम सीधे तनों का खंभे व बल्लियों के रूप में तथा अन्य को चिप्स, प्लाईबोर्ड, कार्डबोर्ड इत्यादि बनाने में उपयोग किया जाता है। अधिकतम मूल्यवर्द्धन लकड़ी से बोर्ड या केन्ट बनाने में होता है। लकड़ी कठोर होने के कारण हाथ की आरी की बजाय मशीनयुक्त आरियों से इसकी कटाई–छंटाई होती है।

भारत वर्ष में विलायती बबूल की लकड़ी का प्रयोग फर्नीचर उद्योग में बहुत सीमित मात्रा में होता है। इसका मुख्य कारण सीधे तनों की अनुपलब्धता और कुछ हद तक अज्ञानता है। अन्य देशों में इसकी लकडी का अच्छी गुणवत्ता के कारण फर्नीचर बनाने में बहुतायत से उपयोग होता है। इसकी लकड़ी की गुणवत्ता शीशम या सागवान जैसी ही होती है (तालिका 21.1)।

तालिका 21.1. विलयती बबूल, शीशम व सागवान की लकड़ी के कुछ भौतिक व यांत्रिक गुणों का तुलनात्मक अध्ययन

गुण	विलायती बबूल	शीशम	सागवान
घनत्व (किग्रा/मी^{3})	721	850	641
मुड़न क्षमता (MOE. 10^3)	97	125	102
सिकुड़न (प्रतिशत)			
आयतनात्मक	4.7	8.5	7.0
सीधाई में	2.2	5.8	5.8
गोलाई में	2.6	2.7	2.5

MOE : Modules of Elasticity

वास्तव में विलायती बबूल की लकड़ी, भारतवर्ष में उपयोग में ली जाने वाली अच्छी इमारती लकड़ियों के कई गुणों में समान व अधिक ही है। इसकी लकड़ी में सफाई व पॉलिश अच्छी होती है। विलायती बबूल की लकड़ी में स्वर्णिम भूरे से लाल रंग के अलग सीधे दाने आभासित होते हैं जो शीशम की लकड़ी जैसे ही लगते हैं। अतः इसे खिड़कियों के फ्रेम, अलमारी, फर्नीचर, खिलौने या फर्श में उपयोग हेतु उष्ण कटिबन्ध की एक अच्छी लकड़ी माना जा सकता है। लकड़ी को संसाधित करने से पहले उसे उपचारित करना जरूरी है जिसमें लकड़ी में बिना कोई विकृति के नमी प्रतिशत 50 से घटाकर 10 तक लाना जरूरी है।

विलायती बबूल की लकड़ी को सुरा पात्र, संगीत वाद्य, पेंसिल व छोटे खिलौने बनाने के लिए भी उपयोग में लाया जाता है। भारतवर्ष में इसका उपयोग धीरे–धीरे फर्नीचर, कुटीर उद्योग, कृषि औजार आदि बनाने में बढ़ता जा रहा है।

फली का पशु चारे में उपयोग

विलायती बबूल की फलियों का उपयोग गाय, बकरी, भेड़, ऊँट, घोड़े आदि के चारे के रूप में लम्बे समय से किया जा रहा है (चित्र 21.2)। शुष्क व अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में फली आने के मौसम में इन वृक्षों के पास चरवाहों को पशुओं के झुण्ड के साथ देखा जा सकता है तथा लगभग 60 प्रतिशत फली गिरते ही पशुओं द्वारा खा ली जाती हैं।

इसकी फलियां गाय, बकरी, भेड़, घोड़ा आदि सभी पशुओं को काफी पसन्द आती हैं। पकी हुई फली में औसत नमी 12 प्रतिशत, प्रोटीन 10 प्रतिशत, पचनीय प्रोटीन 8 प्रतिशत, वसा 2 प्रतिशत, रेशा 14 प्रतिशत, कुल घुलनशील शर्करा 55 प्रतिशत, केल्शियम 0.20 प्रतिशत, और फास्फोरस 0.15 प्रतिशत होता है।

विलायती बबूल की फली के उत्पादन के बारे में कोई क्रमवार अध्ययन उपलब्ध नहीं है। काजरी के वैज्ञानिकों द्वारा 1991–92 में गुजरात, राजस्थान व उत्तर प्रदेश के सर्वेक्षण में लगभग 50 वृक्षों का फली उत्पादन देखा गया तथा औसतन 20 किलोग्राम/वृक्ष (5–25 किलोग्राम/वृक्ष की सीमा में) उत्पादन पाया गया। ब्राजील के एक अध्ययन के अनुसार आदर्श प्रबन्धन से 10X10 मीटर अन्तराल के रोपवन से 6 टन फली/हैक्टर/वर्ष प्राप्त हुई जिनमें कुछ वृक्षों से 170 किलोग्राम तक फलियॉ प्राप्त की गईं।

भारतवर्ष में इसकी फलियों को संसाधित कर पशु खाद्य में शामिल करने के कुछ प्रयास किए गए हैं। फलियों को 4–5 से.मी. लम्बे टुकड़ों में काटकर (60 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान पर 8 घण्टे तक) नमी की मात्रा 7 प्रतिशत तक होने तक सुखाया जाता है। फिर इन्हें डिस्क–मिल में (डिस्क के बीच दूरी 3–4 मि.मी. रखकर) पीसा जाता है ताकि बीज व बीजावरण न पिसे। इसके बाद 1.2 मि मी. व्यास वाले छिद्रों की छलनी से छानकर पशु आहार हेतु आटा तैयार किया जाता है। इसे गेहूं की भूसी, मूंगफली के छिलके, कपास के बीज या चावल की भूसी के साथ मिलाकर आहार बनाया जाता है। विवेकानन्द अनुसंधान व प्रशिक्षण संस्थान, माडवी, भुज (गुजरात) से प्राप्त सूचना के अनुसार इस संस्थान में कई दुग्ध उत्पादक इसकी फली से बने चारे की बेहद मांग के साथ आते हैं। उनके अनुसार इस फली युक्त आहार को पशुओं को खिलाने पर दुग्ध उत्पादन में 20 प्रतिशत तक वृद्धि हो जाती है। इस संस्थान में फली का आटा बनाने के लिए मशीन भी विकसित कर ली है, जो बीज को सफाई से अलग कर देती है।

फली का मानव खाद्यान्न में उपयोग

थार रेगिस्तान में विलायती बबूल के वंश की प्रजाति खेजडी की फलियां सब्जी के रूप में काफी समय से प्रयोग में ली जा रही हैं किन्तु विलायती बबूल की फलियों का संपूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप में मानव खाद्य में शायद ही कहीं उपयोग होता हो। दक्षिणी अमेरिका में विशेषकर पेरू देश में इसकी फलियों का कई प्रकार से उपयोग किया जाता है जो निम्न प्रकार है –

फली के आटे का बेकरी में उपयोग : उपरोक्त वर्णित विधि से प्राप्त आटे को 250 माइक्रोन की छलनी से छाना जाता है। बिस्किट बनाने में इस आटे को 24 प्रतिशत तक गेहूं के आटे में मिलाया जाता है तथा आटे को गूंथकर बिस्किट बनाकर 205 डिग्री सेन्टीग्रेड पर 15 मिनट तक पकाया जाता है।

चित्र 21.1. विलायती बबूल की लकड़ियों से कोयले का उत्पादन

चित्र 21.2. विलायती बबूल + घास का पौष्टिक चारा

कॉफी के विकल्प के रूप में फली का प्रयोग : ब्राजील व पेरू में इसकी फलियों का प्रयोग कॉफी बनाने में किया जाता है। इसके लिए फलियों को मिट्टी के बर्तन में आग पर 30 मिनट तक भूना जाता है। भूनने की प्रक्रिया के पूरे होने से 3–4 मिनट पहले चार चम्मच शक्कर/किलोग्राम फली के अनुपात में मिला दिया जाता है। भूने हुए पदार्थ को ठंडा होने पर पीसकर कॉफी के रूप में प्रयोग करते हैं। कुछ लोग इसे व कॉफी को 50 : 50 अनुपात में मिलाकर कॉफी की असली सुगंध व स्वाद पाने के लिए पीते हैं।

फली से शर्बत बनाना : उत्तरी पेरू के निवासी फली से मीठा पदार्थ 'अल्गारोबिना' निकालकर उपयोग करते हैं। अल्गारोबिना बनाने के लिए 350 ग्राम फलियों को एक लीटर पानी में 2 घण्टे तक उबालकर व अच्छी तरह मसलकर छान लिया जाता है। यह पदार्थ शर्बत से कुछ गाढ़ा होता है। वहाँ के ग्रामीण क्षेत्रों में इसे फल रस या दूध में मिठास व सुगंध के लिए मिलाकर उपयोग में लेते हैं, जबकि शहरी इलाकों में इसे बेकरी में तथा एक विशिष्ट सुरा मिश्रण बनाने में उपयोग किया जाता है।

विसरित गोंद

विलायती बबूल के तने से सर्दी व गर्मी में गोंद विसरित होता है। औसतन एक पेड़ से 30–40 ग्राम गोंद निकलता है। इसमें कुछ ऐल्कलॉइड़ होने से स्वाद कडवा होता है अतः सीधे खाने में उपयोग में नहीं लिया जाता है किन्तु पान के लिए सुपारी के संसाधन में, कपड़ा उद्योग में व चिपकाने वाले पदार्थ बनाने में उपयोग किया जाता है। यदि विलायती बबूल की फली से गोंद निकाला जाए तो प्रतिवर्ष करोड़ों रूपए की आमदनी हो सकती है।

विलायती बबूल से विद्युत उत्पादन

विलायती बबूल की लकड़ी को सीधे जलाकर या गैसीकरण द्वारा विद्युत उत्पादन योग्य पाया गया है। लकड़ी में गंधक की मात्रा कम होने से यह अन्य स्रोत (कोयले) जैसा प्रदूषक नहीं है। विद्युत उत्पादन के लिए कुछ प्रारम्भिक प्रयोग अमरीका व भारत में किए गए हैं। यदि कोई त्रुटिरहित विधि विकसित हो सके तो इस प्रजाति के अथाह उपलब्ध संसाधन का विद्युत उत्पादन में लाभदायक उपयोग हो सकता है। राजस्थान सरकार के विज्ञान व प्रौद्योगिकी विभाग ने हाल ही में गैसीफायर से विद्युत बनाने के लिए तीन पाइलट प्रोजेक्ट प्रारम्भ करने की योजना बनाई है।

बीज से गोंद

विलायती बबूल के बीज में गैलेक्टोमेनन पोलीसेकराइड़ प्रकार का गोंद होता है। यह गोंद गाढ़ा करने, स्थिरीकरण व जैली बनाने वाले प्रयोग जैसे आईसक्रीम, सॉस, चीज आदि बनाने के उपयोग में लिया जाता है। गुणों में यह ग्वार गोंद के समान होता है और खाद्य गोंद के एक नए स्रोत के रूप में विकसित करने के लिए शोध कार्य का प्रमुख विषय बना हुआ है। गाढ़ेपन में इसका गोंद ग्वार के गोंद

के समान ही होता है। बीज से गोंद निकालने हेतु विभिन्न तरीके जैसे फलीय निष्कर्षण, यांत्रिक विधि से तोड़ना व अम्ल से बाह्य आवरण नष्ट करना आदि है। अभी तक यांत्रिक विधि सफल हुई है लेकिन इस विधि से उत्पादन कम मिलता है। टुकड़ों से गोंद निकालना केवल जलीय या फलीय निष्कर्षण से ही संभव है।

उपसंहार

एक अनुमान के अनुसार राजस्थान के शुष्क व अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में यह वृक्ष बहुतायत में फैला हुआ है। कृषकों के लिए इस वृक्ष का कटीला व झाड़ीनुमा होना एक अभिशाप के रूप में दृष्टिगोचर होता है एवं खेतों में यह फसलों पर विपरीत प्रभाव डालता है। इस लेख का सार यह है कि विलायती बबूल बहुतायत में बंजर भूमि व वनों में उपलब्ध है । इस वृक्ष के विभिन्न अवशेषों जैसे लकड़ी, फलियाँ, शाखाएं, बीज आदि के व्यापक उपयोग को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। यह एक कांटेदार झाड़ीनुमा वृक्ष है इसलिए इसकी कटाई व छंटाई के लिए उचित औजार/मशीन के विकास की आवश्यकता है।

22

कीट प्रबन्धन का रसायन रहित तरीका

सत्यवीर

जैविक नियन्त्रण का प्रयोग फसलों के अनेक नाशीकीटों में सफल सिद्ध हुआ है। विगत 70 वर्षो में यह विधि 200 कीट जातियों, माइटस व खरपतवारों के विरूद्ध 60 से अधिक देशों में सफलता से अपनाई जा चुकी है। कीट जैविक नियन्त्रण के सर्व श्रेष्ठ प्रमाण का तथ्य तो यह है कि अधिकांश कीट जातियाँ मानव के हस्तक्षेप के बिना ही यथोचित रूप में नियन्त्रित रहती हैं बल्कि मानव द्वारा विभिन्न रसायनों के अनियोजित प्रयोग से ही जैविक नियन्त्रण अस्त – व्यस्त हो गया है और वर्तमान नाशीकीटों की अभिवृद्धि इसका ही परिणाम है। उदाहरणार्थ, कारणाशी तल्प – शल्क (कोटनी कुशन स्केल : आइसेरिया पुरचेसी) के कारण नीम्बू उद्योग का नष्ट–भ्रष्ट होने का भय उत्पन्न हो गया था परन्तु इन्द्रगेप भृंग (लेडीबर्ड बीटल) को सन् 1888 में आस्ट्रेलिया से कैलिफोर्निया लाकर प्रयुक्त किया गया और थोड़े समय में इन नाशीकीटों को नष्ट कर दिया गया।

सम्पूर्ण शत्रु कीटों में लगभग एक तिहाई परभक्षी एवं शेष दो तिहाई परजीवी हैं। परभक्षी कीटों के शिकार करने की विधि एवं शरीर की रचना का विकास उनके शिकार के सुगमता से पकड़कर भक्षण के लिये सुविधाजनक सिद्ध हुआ है। परभक्षी में लेडीबर्ड बीटल प्रमुख है। इसकी विभिन्न जातियाँ जैसे महू जैसिड, स्केल, मिलीबग व अष्टपदी आदि कीटों के नियन्त्रण में महत्वपूर्ण योगदान देती है। इनकी वयस्क प्रतिदिन लगभग 50 महू खा जाती है। लेडीबर्ड बीटल के अतिरिक्त सिरफिड मक्खी, प्रेइंग मेण्टिड, टाइगर बीटल, ग्राउण्ड बीटल, ऐफिड लायन, क्राईसोपा आदि भी प्रभावी परभक्षी हैं। परजीवों में मुख्य रूप से हाइमेनोप्टेरा के इक्यूमोन, ब्रोकोनिड एवं चैलसिड और डिप्टेरा की अेकिनिड मक्खी मुख्य है।

प्रकृति में कीटाहारी कीट अपने आप कीड़ों की संख्या को नियंत्रित करते रहते हैं। कीड़ों के इस प्रकार के गुण को देखते हुए कुछ कीटों को विशेष रूप से पालकर उन्हें जैविक नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जा रहा है। वास्तव में यह कठिन कार्य है। इस प्रकार के प्रयासों में अमेरीका में सन् 1883 से 1894 तक कीटाहारी कीड़ों की 403 जातियाँ बाहर से लायी गयीं परन्तु केवल 73 जातियाँ ही वहाँ पाली जा सकीं। ऐसे ही हवाई द्वीप में भी 1890 तथा 1935 के बीच 279 जातियों में से 94 ही पनप सकीं। भारतवर्ष में भी जैविक नियंत्रण में उपयोग के लिये परजीवी तथा परभक्षी कीटों को बाहर से मंगाया गया। इनमें से 12 परजीवी कीटों का ही सफलतापूर्वक उपयोग किया जा सका है।

हमारे देश में जैविक नियन्त्रण की कुछ सफलताएँ प्राप्त हुई हैं (तालिका 20.1)। इनमें सन्तरा की स्केल (आइसेरिया पुरचेसी) का रोडोलिया बीटल के द्वारा नियन्त्रण हुआ है। भारत सहित विश्व में

लगभग 50 देशों में यह भृंग एक सफल नियन्त्रण कारक सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार सेव के महत्वपूर्ण कीट वूली महू (ऐरियोसोमा) के विरूद्ध परजीवी कीट ऐफिलिवस माली को आयात कर देश के दक्षिणी भागों में छोड़ा गया जिससे प्राप्त परिणाम उत्साहप्रद सिद्ध हुए हैं। इसी प्रकार सेव के अन्य प्रमुख कीट संजोश स्केल के लिये दो आयातित परजीवी प्रोसोपलटा तथा ऐफाइटस प्रभावकारी सिद्ध हुए हैं। गन्ने के तना बेधक के लिये ट्राईकोग्रामा परजीवी अत्यन्त सफल हुआ है। राजस्थान में रेगिस्तानी छिपकली (यूरोमेसटिक्स) टिड्डियों का एक महत्वपूर्ण परभक्षी है। इसी प्रकार नेवलों को चूहों के नियन्त्रण हेतु प्रयोग किया जाता है।

तालिका 20.1. भारतवर्ष में सफल कुछ आयातित प्राकृतिक कीट शत्रु

क्र.सं.	परपोषी कीट / पोषक जीव	आयातित परभक्षी / परजीवी कीट
1.	कोटनी कुशन स्केल	*रोडोलिया कार्डीनेलिस*
2.	कास्टर सेमीलूपर	*टीलोनोमस नवायी*
3.	आलू का शलभ	*बेकन गेलिची*
4.	कोकोनट केटरपिलर	*स्पोगोसिया वेजीना*
5.	सेनजोस स्केल	*एफाइटिस माइटीलेस्पीडिस*
6.	सेनजोस स्केल	*प्रोस्पेटेला परजीवीओसी*
7.	वूली एफिड	*एफिलिनस माती*
8.	फ्रूट फलाई	*ओपिअस बेन्डेनवोसी*
9.	गन्ने के बेधक	*ट्राईकोग्रामा माइनूटस*
10.	गन्ने के बेधक	*लिक्सोफेगा टायट्री*
11.	लेन्टेना खरपतवार	*सिनगेमिया हीमोरोइडल्स*

रोग उत्पादक सूक्ष्मजीवी

रोग उत्पन्न करने वाले सूक्ष्म जीवियों में कवक, विषाणु, प्रोटोजोआ और सूत्रकृमी प्रमुख हैं।

जीवाणु : कीटों में रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं में बेसिलस की जातियाँ मुख्य हैं। इनमें *बेसिलस थ्यूरिनजियसिस* एवं *बेसिलस पोपीली* अनेक नाशीकीटों के नियत्रंण में प्रभावी सिद्ध हुए हैं। ये जीवाणु मनुष्यों एवं अन्य जन्तुओं के प्रति हानिरहित हैं। रोगाणुओं के विषैले तत्व कीटों की आहार प्रणाली में पहुँचकर एपिथिलियल भिती को विच्छेदित कर देते हैं जिसके पश्चात् उसके स्पोर अंकुरित होकर विकसित होने लगते हैं।

विषाणु : कीटों में चार प्रकार के विषाणु पाये जाते हैं जैसे न्यूकिलयर पोलीहैड्रेसिस, साइटोप्लासमिक हैड्रेसिस, ग्रेनुलोसिस एवं नान इंक्लूजन विषाणु। हमारे यहाँ न्यूकिलयर पोलीहैड्रेसिस का प्रयोग तम्बाकू लट, चना लट तथा कातरा पर रोकथाम के लिये किया जाता है।

सूत्रकृमि : इन परजीवी सूत्रकृमियों का आक्रमण 1500 कीडों की प्रजातियों पर देखा गया है। इनमें नियोप्लेकटेना द्वारा जापानी बीटल तथा डी. डी. – 136 का धान तथा गन्ना तना छेदकों और कोडलिंग मोथ के विरूद्ध प्रभावी पाया गया है।

प्रकाश पाश व ट्रेप

अधिकांश कीट जातियों के निर्गमन, जीवन वृद्धि तथा चल प्रवृति उत्तेजित करती है। बहुत से कीट जैसे चित्तीदार कपास कीट, तिलचट्टा, लाल रोयेंदार लट आदि के वयस्क प्रकाश पाश की तरफ आकर्षित होते हैं, जिनकों इकट्ठे करके नष्ट किया जा सकता है। इन ट्रेप से नाशक जीवों की वास्तविक उपस्थिति का पता लगाने के लिये उपयोग में लाया जाता है तथा ये किसी भी नये नाशक जीव की प्रथम उपस्थिति और नाशक जीव के जीवन–चक्र की प्रगति, जिनमें वयस्क का निकलना तथा अंडा देने की अवस्थाएं प्रमुख हैं, को दर्शाने में बहुत अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इस प्रकार के ट्रेप में प्रकाश पाश, फीरोमोन ट्रेप तथा प्रलोभन पदार्थो से बनाये प्रलोभन ट्रेप प्रमुख हैं।

प्रकाश पाश द्वारा रात्रि में उड़ने वाले कीट जिनमें कई प्रकार के पतंगे तथा मच्छर सम्मिलित हैं, एकत्रित किये जाते हैं। ये कीट इन ट्रेप से निकलने वाले प्रकाश की ओर आकर्षित होकर उन्हे इकट्ठा करने के लिये रखे गये मारने वाले पदार्थ से भरे जार में गिर जाते हैं। चिपचिपे ट्रेप का सबसे अच्छा उदाहरण फलाई कागज है। इनके उपयोग से सेब के बागानों में सेब के मेगाट की गणना में सहायता मिलती है।

विभिन्न प्रकार के ट्रेपों में एक ऐसी विशेष श्रेणी भी है, जिनमें फीरोमोन का प्रयोग होता है। इस प्रकार के ट्रेप में एक विशेष प्रकार की सुगन्ध निकलती है। जिससे कीट उसकी ओर आकर्षित होते हैं। सेक्स फीरोमोन ट्रेप किसी विशेष जाति के नाशक कीट के नर द्वारा निकाले जाने वाले फीरोमोन से युक्त ट्रेप अपनी ओर उसी जाति की मादा को आकर्षित करते हें। इसके विपरीत मादा द्वारा निकाले गये फिरोमोन से युक्त फन्दे अपनी ओर नर को आकर्षित करते हैं। अन्य प्रकार के ट्रेप प्रलोभन पदार्थो से बनाये जाते हैं जैसे नर ओरियन्टल फलाई के लिये मिथाइल यूजीनोल, घरेलू मक्खी के लिये शक्कर तथा प्रोपिओनोनीट्राईल, मादा फल मक्खी के लिये प्रोटीन हाइड्रोलाइसेट आदि ।

नीम एक कीटनाशक

एक शक्तिशाली कीटनाशक के रूप में नीम प्राचीनकाल से ही विख्यात रहा है। यद्यपि कीटनाशक पदार्थ नीम के सभी हिस्सों में पाया जाता है। परन्तु नीम के बीज (निम्बौली) में इसकी मात्रा सबसे अधिक होती है। इसको निकालने के लिये किसी विशेष तकनीक की जरूरत नहीं है तथा किसान इसे गाँव में घर पर ही निकाल सकता है। इसके अलावा नीम का तेल एक शक्तिशाली फसल संरक्षक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। तेल निकालने के बाद बची हुई खली बहुत असरदार कीटनाशक एवं खाद का काम करती है। एक लीटर पानी में 20 मि.ली. नीम का तेल मिलाकर अच्छी तरह हिलाया जाता

है फिर एक मि. ली. के हिसाब से इमल्सीफायर (टीपोल या साबुन) मिला कर हिलाया जाये जिससे कि तेल और पानी भली–भांति मिल जायें। इमल्सीफायर ड़ालना और उसे अच्छी तरह मिलाना बेहद जरूरी है। हैंड स्प्रेयर के बजाये नैपसैक स्प्रेयर नीम के तेल के छिड़काव के लिये ज्यादा अच्छा रहता है।

कीट नियन्त्रण में नीम का जैविक प्रभाव : कीट नियन्त्रण में नीम उत्पाद विभिन्न स्तरों पर और विभिन्न तरीकों से काम करते हैं। यद्यपि रासायनिक कीटनाशकों से कीट तुरन्त मर जाते हैं लेकिन नीम से ऐसा नहीं है। नीम उत्पाद कीड़ो को निम्न प्रकार से निष्प्रभावी बनाता है –

- कीट के विकास पर प्रभाव : नीम के उत्पाद जुवनाइल हार्मोन को नियन्त्रित करते हैं। जिससे लार्वा की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाना रुक जाता है। इस अवस्था में यह पुरानी त्वचा को छोड़ता है तथा विकसित होता है। नीम से निकाले गए उत्पाद एकडासोन एन्जाइम का बनना नियन्त्रित करते हैं इससे लार्वा में रूपान्तरण की क्रिया नहीं होती और वह मर जाता है। इससे बनने वाला कीट पूर्णतया विकसित नहीं हो पायेगा, निष्प्रभावी होगा और अन्य कीट पैदा नहीं कर सकेगा।
- कीट की भूख पर नियंत्रण : नीम उत्पादों की विशेषता है कि यह कीट को खाने से रोकता है।
- नीम के उत्पाद से कीट में काइटिन का बनना बन्द हो जाता है और इससे कीड़े के शरीर की त्वचा कठोर नहीं बन पाती।
- यौन क्रिया में बाधा पड़ती है तथा अण्डे देने की क्षमता खत्म हो जाती है।
- वैज्ञानिक तकनीक से तैयार किये गये नीम उत्पाद कीड़ों में जहर का असर भी करते हैं।

अनाज के भण्डारण में नीम का बहुत महत्व है। नीम की पत्तियाँ तथा बीज का घोल, भण्डारण में लगने वाले सभी प्रकार के कीड़ों को कम करने में काफी सहायक हुआ है। अनाज और दाल को सूखी नीम की पत्तियों का पाउडर, निम्बौली पाउडर या नीम का तेल मिलाकर सुरक्षित रख सकते हैं। संचयित अनाज को कीड़ों से बचाने के लिये अनाज के कुल वजन का एक प्रतिशत नीम का तेल प्रयोग करते हैं यदि अनाज का भण्डारण बीज के उद्देश्य से किया जाये तो दो प्रतिशत नीम के तेल का उपयोग करें। अनाज भण्डारण में प्रयुक्त बोरों को पहले नीम के बीज के घोल 10 प्रतिशत में 15 मिनट तक ड़ालकर छाया में अच्छी प्रकार से सुखालें। भण्डारगृह के कच्चे फर्श को लीपने में गोबर के साथ नीम की खली या तेल का प्रयोग करें।

V खुम्बी उत्पादन

23 खुम्बी – एक परिचय

मनजीत सिंह एवं नन्दलाल व्यास

खुम्बी वर्षा ऋतु में जंगलों, चारागाहों तथा खेतों में बहुतायत में उगती देखी जा सकती हैं। रेगिस्तान में भी बरसात के बाद कई प्रकार की खुम्बी उगती हैं और इनमें से कुछ को एकत्रित करके स्थानीय लोगों द्वारा प्रयोग में लिया जाता है। सभी खुम्बी खाने योग्य नहीं होती हैं। कुछ खुम्बी अभक्षणीय तथा कुछ जहरीली भी होती हैं। इन जहरीली खुम्बियों के कारण ही कई बार मनुष्य भय के कारण भक्षणीय खुम्बियों को भी खाने से कतराता है। खुम्बी एक प्रकार की फफूँद है, जिसमें अन्य पौधों के समान हरित पदार्थ (क्लोरोफिल) नहीं होता। यह फफूँद अन्य पादप पदार्थों से अपना भोजन कुछ महीन धागों (माइसिलियम), जो पदार्थ के अंदर तक भेद जाते हैं, द्वारा सोखते हैं।

आदिकाल से ही खुम्बियों को जंगलों से इकट्ठी कर खाने का प्रचलन रहा है। राजस्थान में भी वर्षा के मौसम में दो प्रकार की खुम्बियाँ, पोडेक्सीस और फेलोरिना एकत्रित की जाती हैं (चित्र 23.1)। खुम्बी की वास्तविक खेती यूरोपीय देशों में सोलहवीं व सत्रहवीं सदी में हुई। वर्तमान में खुम्बी को इनकी पोषकता, औषधीय गुणवत्ता तथा आय के उत्तम साधन के रूप में 100 से भी अधिक देशों में महत्व मिल रहा है। वर्तमान में विश्व का खुम्बी उत्पादन 50 लाख टन प्रति वर्ष है और इसमें 7 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से वृद्धि हो रही है। विकसित देशों में विशेषकर यूरोप व अमेरीकी देशों में खुम्बी एक बड़ी औद्योगिक इकाई के रूप में गिनी जाती है।

भारतवर्ष में विविध मौसम, विभिन्न किस्म के फसल अवशेष तथा सस्ती मानव शक्ति आसानी से मिल जाती है। इसलिये यहां पर शीतोष्ण तथा उष्ण सभी प्रकार की खुम्बी पैदा की जा सकती है। ऐसा अनुमान है कि भारतवर्ष में प्रति वर्ष लगभग 35.5 करोड़ टन फसल अवशेष उत्पन्न होते हैं और इनमें से लगभग 17 टन खेतों में ही जलाने के लिये अथवा सड़ने के लिए छोड़ दिये जाते हैं। इसका एक प्रतिशत भी यदि खुम्बी उत्पादन के लिये प्रयोग किया जा सके तो भारतवर्ष एक प्रमुख खुम्बी उत्पादक देश बन सकता है। प्रारम्भ में तो लोग खुम्बी को केवल इनकी स्वादिष्टता के कारण ही खाते थे, किन्तु इनमें पाये जाने वाले कई पौष्टिक तत्वों के कारण अब यह एक गुणकारी आहार के रूप में जाना जाने लगा है। खुम्बी में पाई जाने वाली प्रोटीन उच्च गुणवत्ता की होती है। इस प्रोटीन से शाकाहारी लोग अपने भोजन में प्रोटीन की कमी को पूरा कर सकते हैं। खुम्बी में सभी प्रकार के आवश्यक ऐमिनों अम्ल, विटामिन बी, सी, पैंटोथेनिक अम्ल, नियासिन तथा फोलिक अम्ल आदि के अतिरिक्त खनिज लवण भी

पांये जाते हैं। खुम्बी में कम वसा, कम नमक, कम शक्कर व अधिक रेशे होने की वजह से यह मधुमेह व मोटापे से ग्रस्त रोगियों के लिए उत्तम भोजन है। खुम्बी एक उत्तम शाकाहारी आहार है। इसके उत्तम गुण जैसे कोलस्ट्रोल न होने के कारण यह हृदय रोगियों के लिये एक अच्छा भोजन है। इसमें शर्करा एवं स्टार्च नहीं होने के कारण यह मधुमेह रोगियों के लिये एक वरदान है। भारत में मुख्यतः तीन प्रकार की खुम्बी, श्वेत (सफेद) बटन खुम्बी (*एगेरिकस बाईस्पोरस*), ढींगरी (*प्लूरोटस*) एवं पुंआल खुम्बी (*बॉल्वेरियेला*) की व्यवसायिक स्तर पर खेती की जाती है।

श्वेत बटन खुम्बी आज भी स्वदेशी व विदेशी बाजारों के लिये सर्वाधिक लोकप्रिय है। श्वेत बटन खुम्बी को ठण्डे प्रदेशों में तो साल में 4 – 5 बार उगाया जा सकता है, किन्तु मैदानी इलाकों में इसका उत्पादन एक या दो बार केवल सर्दियों में ही किया जा सकता है, जब तापमान कम रहता है। इसके अतिरिक्त गर्म प्रदेशों में बटन खुम्बी की *बाईटोर्किस* जाति की खेती 20 – 25 डिग्री सेन्टीग्रेड और ढींगरी की खेती 20 – 30 डिग्री सेन्टीग्रेड पर आसानी से की जा सकती है, क्योंकि इनका उत्पादन प्रायः कमरों के अन्दर ही किया जाता है। अतः इनके लिये उचित तापमान, नमी, हवा तथा प्रकाश आदि आवश्यकतानुसार उपलब्ध कराने की व्यवस्था की जा सकती है। सफेद बटन खुम्बी की ज्यादा प्रचलित जाति *एगेरिकस बाईस्पोरस* के लिये 16 से 18 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान की आवश्यकता होती है। प्राकृतिक रूप से यह तापमान राजस्थान राज्य के कुछ ही भागों में सर्दियों के मौसम में रहता है।

बटन खुम्बी की खेती के लिए कम्पोस्ट खाद की आवश्यकता होती है। कम्पोस्ट खाद में पैदावार ज्यादा होती है और बीमारियाँ भी कम आती हैं। बटन खुम्बी की खेती के लिए मरु क्षेत्र में प्राकृतिक स्थितियाँ उपयुक्त नहीं हैं और इसकी खेती के लिए ज्यादा धन अथवा विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

ढींगरी या ऑयस्टर खुम्बी (*प्लूरोटस*) सर्वाधिक लोकप्रिय प्रजाति है (चित्र 23.2) और विश्व खुम्बी उत्पादन में इसका बटन खुम्बी के बाद दूसरा स्थान है। ढींगरी खुम्बी आसानी से उगाई जाने वाली खुम्बी है। इसकी खेती के लिए किसी विशेष प्रकार की खाद तैयार करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। ढींगरी को बड़ी आसानी से धूप में सुखाकर अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इसकी खेती 20–30 डिग्री सेन्टीग्रेड पर आसानी से की जा सकती है। ढींगरी की 12 – 13 जातियाँ उपलब्ध हैं, जिनमें से राजस्थान के लिए *प्लूरोटस – सजोरकाजू* और *प्लूरोटस फ्लोरिडा* उपयुक्त हैं और इनकों अक्टूबर–नवम्बर से लेकर फरवरी – मार्च तक उगाया जा सकता है। इसकी खेती बाजरा, गेहूं, ग्वार, ज्वार आदि के भूसे (कुट्टी) पर आसानी से की जा सकती है। बरसात के मौसम की फसलों की कटाई के बाद किसान इसकी खेती को अपनाकर पौष्टिक भोजन के साथ–साथ अपनी आमदनी भी बढ़ा सकते हैं। इसका उत्पादन निम्नलिखित कारणों से अनुरूप है –

चित्र 23.1. मरुक्षेत्र में पाये जाने वाली खाने योग्य खुम्बी *(फेलोरिना)*

चित्र 23.2. श्वेत बटन खुम्बी *(अगेरिकस बाईस्पोरस)*

चित्र 23.3. ढींगरी *(प्लूरोटस)*

- इसे विभिन्न प्रकार के कृषि अवशेषों पर उगाया जा सकता है।
- इसे विभिन्न तापमान पर उगाया जा सकता है।
- इसकी उत्पादन क्षमता भोज्य पदार्थ के अनुपात में सर्वाधिक है (100 प्रतिशत तक)।
- इसमें बीमारियाँ व स्पर्धात्मक फफूंद द्वारा नुकसान की संभावना कम है।
- इसकी वृद्धि बहुत तेज है और उत्पादन आसान है।
- इसका उत्पादन मूल्य काफी कम है।
- यह ग्रामीण क्षेत्रों में आसानी से लगाई जा सकती है व बेरोजगारों के लिये रोजगार का साधन बन सकती है।
- इसका संसाधन विशेषतया सुखाना बहुत आसान है।
- बेरोजगारों एवं महिलाओं द्वारा इस खुम्बी को उगाने से उनके आर्थिक स्तर में सुधार आ सकता है।

खुम्बी की खेती के लिये कमरे का तापमान, नमी और वातावरण बहुत महत्वपूर्ण है। बटन खुम्बी के लिये रोशनी की कोई जरूरत नहीं होती परन्तु ढींगरी के लिये हल्की रोशनी का विशेष महत्व है।

बटन खुम्बी की खेती के समय अगर तापमान सही न हो या कार्बन–डाई–आक्साइड की मात्रा अधिक हो तो खुम्बी नहीं उगती है और जो उगती भी है वह देखने में विकृत होती है जिसका बाजार में कम मूल्य मिलता है। इसी तरह ढींगरी की खेती के समय अगर कमरे में हल्की रोशनी न हो और कार्बन–डाई–ऑक्साइड की मात्रा ज्यादा हो तो इसकी उपज बहुत कम होती है और खुम्बी विकृत हो जाती है।

बटन व ढींगरी खुम्बी के बाद कन्चपड़ा खुम्बी (*ऑरिकुलेरिया*) एक सम–शीतोष्ण सबसे लोकप्रिय खुम्बी है। इसे पेट की खराबी में औषधि के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है। यह लकड़ी के लट्ठों, लकड़ी के बुरादे, गेहूं के भूसे आदि पर आसानी से उगाई जा सकती है।

चावल की पराली पर उगने वाली खुम्बी (*वॉल्वेरियेला*) कम उत्पादन तथा भण्डारण के समय जल्दी खराब होने के कारण अपना स्थान ढींगरी व दूधिया खुम्बी (*केलोसाइबी*) को देती जा रही है। इस खुम्बी को 40 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान तक उगाया जा सकता है।

दूधियाँ खुम्बी (*केलोसाइबी इन्डिका*) उष्ण क्षेत्रों में उगाने के लिये उपयुक्त है। तामिलनाडु, आंध्र प्रदेश व कर्नाटक में इस खुम्बी की खेती लोकप्रिय हो रही है। चावल की पुराली पर उगने वाली खुम्बी

के बाद इसका दूसरा स्थान है। इसका रंग आकर्षक दूधिया (सफेद) व भण्डारण के समय गुणवत्ता का बना रहना इसके मुख्य गुण हैं।

खुम्बी की खेती के लिये सबसे महत्वपूर्ण है – इसका बीज, जिसे स्पॉन कहते हैं। आमतौर पर स्पॉन प्राप्त करने के लिए अग्रिम रुप से प्रबंध करना पड़ता है, क्योंकि खुम्बी की खेती करने में होने वाले खर्च का काफी हिस्सा स्पॉन के तैयार करने में खर्च हो जाता है। इसलिए स्पॉन का आर्डर देते समय खुम्बी की जाति और प्रजाति के बारे में ज्ञान होना आवश्यक है। स्पॉन खरीदते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि यह पुराना न हो तथा रोग मुक्त हो। इसे लाते समय अधिक तापमान या धूल–मिट्टी में नहीं रखना चाहिये। लाने के बाद इसे ठण्डे स्थान पर रखना चाहिये, और प्रयोग करने से पहले नहीं खोलना चाहिये।

खुम्बी की फसलों में कई प्रकार के फफूंद, जीवाणु, विषाणु तथा सूत्रकृमि आदि विभिन्न समस्याओं का कारण बनते है। प्रायः यह देखा गया है कि इस व्यवसाय में वही व्यक्ति अधिक सफल हो पाता है जो मजदूरों या कामगरों पर ज्यादा आंख मूंद कर विश्वास नहीं करते बल्कि स्वयं अपने हाथों या अपनी आँखों के सामने काम कराने में विश्वास रखते हैं और हमेशा 'रोकथाम इलाज से बेहतर' है वाले सिद्धान्त पर अमल करते हैं। इसमें शुरु से ही सजग रहने से उपरोक्त व्याधियों से बचाव हो सकता है किन्तु समस्या आने के बाद यदि उपचार की तरफ ध्यान दिया जाए तो बहुत देर हो चुकी होती है।

देश में खुम्बी उत्पादन को प्रोत्साहित करना चाहिए। यह एक अनोखी कृषि कार्य प्रणाली है जो विभिन्न कारणों से अनुकूल है। खुम्बी की खेती व्यवसाय की दृष्टि से आय का साधन तो है ही साथ ही इससे बेरोजगारों को रोजगार भी उपलब्ध होता है तथा व्यस्त किसान भी इनकी खेती करके अपनी आय को बढ़ा सकते हैं। राजस्थान में ढींगरी के उत्पादन की बढ़ती संभावनाएं हैं तथा सर्दी के मौसम में इसे आसानी से उगाया जा सकता है।

24 खुम्बी के बीज का उत्पादन, भण्डारण एवं परिवहन

नन्दलाल व्यास एवं मनजीत सिंह

अन्य फसलों की तरह, खुम्बी में भी स्पॉन (बीज) अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। खुम्बी के बीज को एक विशेष विधि से प्रयोगशाला में बनाया जाता है। उत्तम बीज समय पर न मिलने के कारण खुम्बी की खेती में बाधाएं आती हैं। भारतवर्ष में खुम्बी की उन्नत किस्मों का अभाव है। खुम्बी का बीज बनाने के लिये सर्वप्रथम शुद्ध कवक जाल संवर्द्धन बनाया जाता है जिसे उबले हुए गेहूं, बाजरा, ज्वार आदि के बीजों पर उगाया जाता है। इस प्रकार से तैयार किये गये संवर्द्धन को ही खुम्बी बीज या स्पॉन के नाम से जाना जाता है।

सफल खुम्बी उत्पादन, शुद्ध कवक जाल पर निर्भर करता है। खुम्बी के कवक जाल को फल (बेसिडियोकार्प) से कीटाणुरहित अवस्था में कृत्रिम माध्यम पर उगाने, उसका शुद्धिकरण एवं संरक्षण करने हेतु कीटाणुरहित प्रयोगशाला एवं तकनीकी जानकारी का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसी कारण किसान इसे कवक जाल या खुम्बी बीज को अपने घर पर तैयार नहीं कर सकते तथा इसे प्राप्त करने हेतु उन्हें सरकारी या गैर सरकारी खुम्बी बीज उत्पादक संस्थाओं से मदद लेनी पड़ती है।

खुम्बी कवक जाल संवर्द्धन बनाना

शुद्ध संवर्धन बनाने के लिए सबसे पहले कवक जाल के विकास के लिए उचित माध्यम तैयार किया जाता है। इस कार्य के लिए कई प्रकार के माध्यम अत्यन्त सुगम हैं। जिनमें से कुछ माध्यमों के बनाने की विधि निम्नलिखित है –

पोटेटो डैक्सट्रोस अगर :

आलू का अर्क	200 ग्राम
अगर–अगर पाउडर	20 ग्राम
डैक्सट्रोस	20 ग्राम
शुद्ध पानी	1 लीटर

एक पाव आलू को धोकर छिलका उतार कर छोटे–छोटे टुकड़ों में काट लिया जाता है। लगभग 200 ग्राम आलू को आधे लीटर पानी में 15 मिनट तक उबाला जाता है। इसी प्रकार एक दूसरे बर्तन में आधे लीटर उबलते पानी में अगर–अगर पाउडर एवं डैक्सट्रोस मिलाया जाता है। आलू के अर्क को छान कर इस मिश्रण में पानी की मात्रा मिलाकर एक लीटर कर लिया जाता है। तत्पश्चात् ओटोक्लेव

में 15 – 20 मिनट तक 121 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान पर रखा जाता है। इस प्रकार से तैयार कृत्रिम माध्यम पर खुम्बी कवक जाल संवर्द्धन बनाया जाता है।

माल्ट का अर्क :

माल्ट का अर्क	25 ग्राम
अगर–अगर पाउडर	20 ग्राम
शुद्ध पानी	1 लीटर

उबलते हुए पानी में माल्ट के अर्क को पांच मिनट तक उबाला जाता है। अगर–अगर पाउडर को कांच की छड़ी से हिलाते हुए मिश्रण में मिला दिया जाता है। तत्पश्चात् इस माध्यम को परखनलियों में लगभग 10 – 15 मि.ली. प्रति परखनली की दर से और फ्लास्कों में आधे हिस्से तक भर कर रुई का ढक्कन बनाकर बंद कर दिया जाता है। इन परखनलियों एवं फ्लास्कों को ओटोक्लेव में डालकर 1.05 कि.ग्रा. / से.मी.^{2} के दबाव पर 15–20 मिनट के लिए रखकर जीवाणु रहित किया जाता है। इन परखनलियों को ओटोक्लेव से निकालकर तिरछी अवस्था में ठंडा होने तक (2 घण्टे) रखा जाता है। ये परखनलियाँ एवं फ्लास्क संवर्द्धन बनाने के लिए अब तैयार हैं।

इन कृत्रिम माध्यमों के अलावा गेहूं अर्क माध्यम (गेहूं का अर्क 32 ग्राम, अगर पाउडर 20 ग्राम, शुद्ध पानी एक लीटर), चावल छिलका अर्क (चावल छिलका 200 ग्राम, जिलेटिन 20 ग्राम, शुद्ध पानी एक लीटर) आदि भी प्रयोग किये जा सकते हैं।

शुद्ध कवक जाल संवर्द्धन विधियां

उत्तक संवर्द्धन (टिशू कल्चर) : इस विधि से बीज बनाने के लिए खुम्बी की टोपी को 0.1 प्रतिशत मरक्यूरिक क्लोराईड से जीवाणु रहित किया जाता है। तने एवं टोपी के बीच से वनस्पतिक हिस्से को लेकर कृत्रिम माध्यम में पैट्रीप्लेट से 25 डिग्री सेन्टीग्रेड तापक्रम पर उष्मायंत्र में 4–5 दिन के लिए रख दिया जाता है। तत्पश्चात् किनारे से उगते हुए कवक जाल को सावधानी से कीटाणु रहित प्रयोगशाला में परखनलियों में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। इन परखनलियों को रुई के ढक्कन से बंद करके उष्मायंत्र में 25 डिग्री सेन्टीग्रेड तापक्रम पर लगभग 14 से 18 दिन तक रखने पर कवक जाल पूरी तरह से फैल जाता है।

बहु बीजाणु संवर्द्धन (मल्टी–स्पोर कल्चर) : अनेक बीजाणुओं के मिश्रण से बनाये गये बीज को फसल उगाने के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है। इस विधि से बीजाणु संवर्द्धन तैयार करने के लिए खुम्बी की टोपी में झिल्ली से ढके हुए पत्तेदार गलफडों में उपस्थित बीजाणुओं को प्रयोगशाला में जीवाणु

रहित कागज या पैट्रीप्लेट में इकट्ठा किया जाता है। इस स्पोर प्रिन्ट (जीवाणु छाप) को पांच–दस मि.ली. पानी में घोलकर उचित माध्यम में मिलाया जाता है। बीजाणु वाले इस माध्यम की निर्जलीकृत पेट्रीप्लेटों में 25 डिग्री पर उष्मायंत्र में 4 – 5 दिन रखा जाता है। तत्पश्चात् तेजी से उगते हुए कवक जाल के छोटे से टुकड़े को परखनलियों में स्थानान्तरित कर 25 डिग्री सेन्टीग्रेड पर 15–20 दिनों तक उष्मायंत्र में उगाया जाता है। इस विधि को बहुबीजाणु संवर्द्धन या मल्टी स्पोर कल्चर के नाम से जाना जाता है।

खुम्बी का बीज तैयार करना

खुम्बी के बीज को तैयार करने के लिए अनेक प्रकार के अनाज जैसे गेहूं, बाजरा, ज्वार, राई आदि या लकड़ी के बुरादे का प्रयोग किया जा सकता है। प्रायः खुम्बी का बीज गेहूं के दानों पर बनाया जाता है। गेहूं के दानों को पहले साफ किया जाता है फिर टूटे–फूटे दानों को बाहर निकाल दिया जाता है। गेहूं से दुगनी मात्रा में पानी डालकर 20–25 मिनट तक उबाला जाता है इसके पश्चात् जाली पर दानों को पलट लिया जाता है, जिससे अतिरिक्त पानी बाहर निकल जाये। तत्पश्चात् इन उबले हुए दानों को साफ कपड़े पर छाया में लगभग एक घण्टे तक सुखाया जाता है। इसके पश्चात् छलनी पर दानों में 2 प्रतिशत जिप्सम (कैल्शियम सल्फेट) तथा 0.5 प्रतिशत चाक पाउडर (कैल्शियम कार्बोनेट) अच्छे से मिला देते हैं। 100 किलो ग्राम सूखा गेहूं उबालने के लिए इसमें 2 किलोग्राम जिप्सम व आधा किलोग्राम चाक पाउडर को मिलाना चाहिये। इन रसायनो को मिलाने से न केवल गेहूं के दानों की अम्लीयता व क्षारयींता ठीक रहेगी अपितु यह दानों को आपस में जुड़ने से भी रोकेंगे। इसके पश्चात् इन दानों को ग्लूकोज या दूध की बोतल में लगभग 300 ग्राम प्रति बोतल की दर से भर कर पानी न सोखने वाली रुई के ढक्कन से बंद कर दिया जाता है तथा इन बोतलों को 1.05 कि.ग्रा. प्रति से.मी.^{2} के दाब पर ओटोक्लेव में 1.5 से 2 घण्टे के लिए रखा जाता है इसके पश्चात् इन बोतलों को ओटोक्लेव से निकाल कर ठण्डा होने के लिए रख दिया जाता है। बोतलों का सामान्य तापमान हो जाने पर ही इन बोतलों का प्रयोग मास्टर संवर्द्धन बनाने के लिए किया जाता है। इसके पश्चात् इन परखनलियों में पहले से तैयार शुद्ध कवक जाल संवर्द्धन को निर्देशन सुई की सहायता से माध्यम के साथ इन बोतलों में डाल देते हैं। और इन बोतलों को इस प्रकार से हिलाया जाता है कि कवक जाल गेहूं के दानों में दब जाये। तत्पश्चात् इन बोतलों को 25 डिग्री सेन्टीग्रेड पर उष्मायंत्र में रख दिया जाता है और 5–7 दिन बाद बोतलों को हिलाकर पुनः उष्मायंत्र में रखा जाता है। लगभग तीन सप्ताह में मास्टर संवर्द्धन तैयार हो जाता है।

इस विधि से बीज बनाने हेतु गेहूं, बाजरा, ज्वार आदि उबालने से लेकर रसायन मिलाने तक की प्रक्रिया समान ही होती है, परन्तु कांच की बोतलों की जगह पोलीप्रोपाइलिन के लिफाफों का प्रयोग किया जाता है। इन लिफाफों में सुविधानुसार 250, 500 या 1000 ग्राम गेंहू भर दिया जाता है। गेंहू लिफाफे की क्षमतानुसार ही भरा जाता है। गेहूं भरते समय लिफाफों का विशेष ध्यान रखा जाता है

कि लिफाफे लगभग आधे खाली रहें। इन लिफाफों पर मोटे प्लास्टिक के छल्ले जिनकी त्रिज्या 10–12 मि.मी. के लगभग होती है, में पिरो लिए जाते हैं और लिफाफे के खुले सिरे को बाहर की तरफ पलट लिया जाता है, जिससे लिफाफे का मुंह निश्चित आकार ले लेता है। अब पानी न सोखने वाली रुई के ढक्कन से लिफाफे के मुंह को बंद कर दिया जाता है। अगर लिफाफे पतले हों तो एक साथ दो लिफाफों का प्रयोग किया जाता है।

इन लिफाफों को रसायन में मिले गेहूं के साथ 1.05 कि.ग्रा. प्रति से.मी.^{2} के दाब पर ओटोक्लेव में 1.5 घण्टे तक जीवाणु रहित किया जाता है। इन लिफाफों के ठण्डा होने पर निर्जलीकृत निवेशन कमरे में लेमिनार फ्लो की उपस्थिति में ले जाया जाता है। पहले से बनाये मास्टर संवर्द्धन की बोतल को खोलकर मास्टर संवर्द्धन के दानों को अलग–अलग किया जाता है और इसमें से कुछ दानों को प्रत्येक पोलीप्रोपाईलिन के लिफाफों में डाल दिया जाता है। इन लिफाफों को भी मास्टर संवर्द्धन की बोतलों की तरह 25 डिग्री सेन्टीग्रेड के तापमान पर उष्मायंत्र में 2 – 3 सप्ताह के लिए रखा जाता है। यह गेंहू के लिफाफे बीजाई के लिए उपयोग में लाये जा सकते हैं। शुद्ध संवर्द्धन को श्वेत रेशमी तारों के रूप में पहचाना जाता है। जिन बोतलों या लिफाफों में अन्य रंग जैसे पीला, हरा, काला, गुलाबी, भूरा का कवक जाल फैलता दिखाई दे उन्हें निकाल देना चाहिए। संफेद खुम्बी के बीज को फैलने के लिए लगभग तीन सप्ताह का समय लगता है जबकि ढींगरी का बीज केवल दो सप्ताह में ही तैयार हो जाता है।

बीज का भण्डारण तथा परिवहन

जहाँ तक संभव हो सके ताजे खुम्बी के बीज को ही प्रयोग में लाना चाहिए। यदि अधिक मात्रा में बीज का उत्पादन व्यवसायिक तौर पर करना हो तो खुम्बी के बीज को 4 – 6 डिग्री सेन्टीग्रेड पर 2–3 माह तक रखा जा सकता है। भण्डारण करते समय खुम्बी के बीज को 25 डिग्री सेन्टीग्रेड से अधिक तापमान पर कभी भी नहीं रखना चाहिए। जहाँ तक हो सके परिवहन के दौरान स्पॉन को प्रशीतन गाड़ी में ही एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना चाहिए। स्पॉन का परिवहन करते समय इसे धूप व धूल–मिट्टी से बचाना चाहिये। यदि स्पॉन को तुरन्त प्रयोग न करना हो तो इसे किसी ठंडे स्थान पर रखना चाहिये और प्रयोग करने से पहले लिफाफों को नहीं खोलना चाहिये। अगर गलती से भी रोग युक्त स्पॉन अर्थात किसी स्पॉन के लिफाफे में काले, हरे व पीले रंग की फफूंद नजर आये तो ऐसे लिफाफे को काम में नहीं लेना चाहिये।

25

ढींगरी की खेती

मनजीत सिंह एवं नन्दलाल व्यास

खुम्बी वर्षा ऋतु में जंगलों, चारागाहों तथा खेतों में काफी मात्रा में उगती है। लोग इन्हें एकत्रित करके स्वंय खाते हैं अथवा बेच देते हैं। खुम्बी की कई जहरीली किस्मे भी होती हैं जिनकी सही पहचान न होने पर जानलेवा भी सिद्ध हो सकती हैं। इनमें से खाने वाली कुछ किस्मों की खुम्बियों को आसानी से अपने घर पर उगाया जा सकता है जिनमें मुख्य हैं श्वेत (सफेद) बटन खुम्बी और ढींगरी खुम्बी।

भारत एक कृषि प्रधान देश होने की वजह से यहां कृषि फसलों से प्राप्त होने वाले अवशेष जैसे भूसा, पुआल, मोटे अनाजों से प्राप्त कड़वी, गन्ना, चना, मूंग की फलगटी, ग्वार की फलगटी, घास आदि के तने व पत्तियां पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं, जिनका उपयोग प्रायः पशुओं के चारे के रूप में किया जाता है। ऐसे पादप पदार्थों को खुम्बी उत्पादन के लिए प्रयोग किया जा सकता है। साथ ही किसान अपने परिवार को पौष्टिक भोजन भी प्राप्त करा सकता है।

भारत के विभिन्न भागों में भिन्न–भिन्न जलवायु पायी जाती है। जिस कारण हमारे देश में भिन्न–भिन्न प्रकार की खुम्बियों की खेती की जा सकती है। ढींगरी खुम्बी उनमें से एक है, जिसको मरु क्षेत्र में शरद ऋतु में उगाया जा सकता है। पौष्टिकता की दृष्टि से ढींगरी में विटामिन व खनिज लवण की पर्याप्त मात्रा होती है अतः यह हृदय रोग, मधुमेह व मोटापे से ग्रस्त व्यक्तियों के लिए उपयुक्त भोजन है।

ढींगरी की खेती का प्रचलन दक्षिणी व पूर्वी भारत में अधिक है। देश के अन्य भागों में इसकी खेती छोटे स्तर पर की जा रही है। इस खुम्बी की खेती करने की विधि सरल व कम खर्चीली होने के कारण ग्रामीण क्षेत्र के भूमिहीन व सीमान्त किसानों तथा गरीब लोगों के लिए आय का एक उत्तम साधन है।

ढींगरी को उगाने की विधि

ढींगरी की उत्पादन विधि अन्य खुम्बियों की उत्पांदन विधि से काफी भिन्न है तथा इसको सीधे ही फसलों से प्राप्त अवशेषों पर उगाया जाता है। ढींगरी का उत्पादन लेने के लिए श्वेत बटन खुम्बी की भांति खाद (कम्पोस्ट) बनाने की आवश्यकता नहीं होती है। जिससे समय तथा धन दोनों की ही बचत होती है। भारत में ढींगरी की कई प्रजातियाँ पायी जाती हैं। निम्नलिखित प्रजातियॉ 25 – 30 डिग्री सेन्टीग्रेड पर उगाने के लिए उपयुक्त हैं –

प्लूरोटस फ्लेविलेटस

प्लूरोटस साजोर – काजू

प्लूरोटस सैपिडस

प्लूरोटस सिटरिनोपाईलिएटस

प्लूरोटस औसटरियेटस

प्लूरोटस फ्लोरिड़ा

प्लूरोटस कोरनयूकोपई

ढींगरी की खेती में प्रयुक्त होने वाली सामग्रियाँ

क्र.सं.	सामग्री	परिमाण/संख्या
1.	पोलीथिन 45 X 30 से.मी.	8 – 12
2.	स्प्रे पम्प (1 लीटर क्षमता)	1
3.	खाली डीजल के ड्रम (अन्दर रंग किए हुए)	1
4.	रैक (लकड़ी/बांस/लोहे के)	आवश्यकतानुसार
5.	थर्मामीटर	2
6.	गेहूं/धान का भूसा/बाजरा/मूंगफली	10 – 12 किलोग्राम
7.	स्पॉन (बीज)	1 – 2 किलोग्राम
8.	फफूंद नाशक बैविस्टीन	7.5 ग्राम
9.	जर्मनाशी फार्मेलीन	125 मि. ली.

पोषाधार (भूसा, कड़वी आदि) का उपचार करना

ढींगरी की खेती में प्रयोग किये जाने वाले विभिन्न फसल अवशेषों को हानिकारक जीवाणुओं से मुक्त करना पड़ता है जिसके लिए चुने गये फसल अवशेष (पोषाधार) को गर्म पानी विधि या रासायनिक विधि द्वारा उपचारित किया जाता है।

गर्म पानी उपचार : भूसे को गर्म पानी (80–90 डिग्री सेन्टीग्रेड) में डूबो दिया जाता है और लगभग 25 मिनट तक उसी तापमान पर रखा जाता है। इसके पश्चात् भूसे को पानी से निकाल दिया जाता है एवं पानी का रिसाव पूरा होने दिया जाता है अथवा भूसे को 16–18 घण्टे भिगोने के बाद, इसे निकालकर उबलते हुए पानी में 1–2 घण्टे भिगों देते हैं।

रासायनिक उपचार : गर्म पानी के अलावा रासायनिक विधि से भी भूसे को जर्म रहित कर सकते हैं। इसके भूसे को फफूंदनाशी (बैविस्टीन) और जर्मनाशी (फार्मेलीन) द्वारा उपचारित किया जाता है। इस विधि का विवरण इस प्रकार है –

- ड्रम में 90 लीटर पानी लेकर 10 किलोग्राम भूसा डूबो दें।
- इसके साथ ही एक बाल्टी में 7.5 ग्राम बैविस्टीन और 125 मि. ली. फार्मेलीन को 10 लीटर पानी में मिलाकर घोल बना लें।
- बाल्टी में बनाए गए रासायनिक घोल को भूसे वाले ड्रम में उडेल दें और प्लास्टिक से ढक दें तथा ऊपर से वजन रख दें ताकि भूसा ऊपर न उठे।
- करीब 16 – 18 घण्टे बाद भूसे को ड्रम से निकाल कर पॉलीथिन की चादर या पक्के फर्श या छलने पर फैला दें ताकि भूसे से अतिरिक्त पानी निचुड़ जाये तथा फार्मेलीन की महक पूरी तरह से खत्म हो जाये। यह स्थिति लगभग एक घण्टे में आ जाती है।

उपरोक्त किसी एक विधि से उपचारित किया गया पोषाधार (भूसा) बीजाई के लिए तैयार है।

बीजाई

बीजाई करने से पहले, बीजाई स्थल, बीजाई में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों तथा बीजाई करने वाले श्रमिक अपने हाथों को 2 प्रतिशत फार्मेलीन घोल से धोना चाहिए ताकि अवांछनीय संक्रमण से बचा जा सके। इसके पश्चात् उपचारित किये गये भूसे में 30 – 40 ग्राम प्रति किलोग्राम गीले भूसे की दर से बीज मिलाते हैं (चित्र 25.1) और पांच – पांच किलोग्राम के थैले बना लेते हैं (चित्र 25.2) तथा थैलों का मुँह अच्छी तरह से बंद कर देते हैं। थैले में भूसा भरने से पहले 6–8 छेद किये जाते हैं।

फसल प्रबंध

इन बीजाई किए गए थैलों को कवक जाल (माइसिलियम) फैलाव के लिए कमरें में रख दिया जाता है। दो से तीन सप्ताह तक इन बैगों में ढींगरी का कवक जाल बढ़ता रहता है और एक सफेद जाल सा बन जाता है। जब कवक जाल भूसे की पूरी परत को ढक लेता है तथा बैग बिल्कुल सफेद दिखाई देने लगता है तो पोलीथिन को काटकर हटा देते हैं (चित्र 25.3)। इन खोले गये थैलों पर प्रतिदिन दो–तीन बार पानी का छिड़काव किया जाता है।

जिस कमरे में बैग रखे जाते हैं, वहाँ पर स्वच्छ हवा और हल्की रोशनी का उपलब्ध होना जरूरी है इसलिए दिन में कुछ समय के लिए खिड़कियां खुली रखनी चाहिये। कमरें में नमी एवं आवश्यक तापमान बनाये रखना चाहिए। ऐसी स्थिति बनाये रखने पर 5 – 10 दिन के अन्दर खुम्बी की छोटी–छोटी कलिकाएँ बनने लगती हैं जो तीन–चार दिन के अन्दर ही बड़ी होकर पंख का आकार ग्रहण कर लेती हैं।

तुड़ाई करना

जब छोटी–छोटी कलिकायें पंख का आकार ग्रहण कर किनारे से ऊपर की ओर मुड़ने लगें तो इन्हें तुड़ाई के योग्य समझना चाहिए। इस तरह 6 सप्ताह में तीन या चार फसल लेने पर दस किलोग्राम सूखे भूसे के प्रयोग से लगभग 6–7 किलोग्राम खुम्बी प्राप्त होगी।

उपयोग

तुड़ाई के पश्चात् खुम्बी को सीधे (ताजा) भी खा सकते हैं या धूप में सूखा कर पॉलीथिन के लिफाफों में बंद कर रख सकते हैं जिसको भविष्य में सब्जी के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। आवश्यकता से अधिक उत्पादन होने पर इसका अचार भी बनाया जा सकता है।

ढींगरी को धूप में सुखाना

ढींगरी को धूप में सुखाकर आसानी से परिरक्षित किया जा सकता है। इसमें न तो मशीन की और न ही तेल, मसालों व रसायनों की आवश्यकता पड़ती है तथा जरूरत पड़ने पर सूखी हुई खुम्बी को थोड़े समय के लिए पानी में भिगोकर मनपंसद व्यंजन बनाये जा सकते हैं। ढींगरी खुम्बी को धूप में सुखानें की विधि निम्न है –

ढींगरी को धूप में सुखानें से पहले यह आवश्यक है कि ढींगरी की तुड़ाई करने के बाद उसकी अच्छी प्रकार से सफाई कर लें ताकि ढींगरी की सतह पर किसी भी प्रकार की तूड़ी (भूसा) या कोई अन्य अवांछनीय पदार्थ न लगा हो। सफाई करने के बाद ढींगरी को किसी एल्यूमीनियम/स्टील की ट्रे या पॉलीथिन या कपड़े की चादर के ऊपर तब तक तेज धूप में फैला कर रख देते हैं जब तक की चादर पर फैली खुम्बी पूरी तरह से नहीं सूख जाती। यह जानने के लिये कि ढींगरी पूर्णतया सूख गई है एक सूखी ढींगरी को तोड़ने पर यदि कट की आवाज आये तो समझना चाहिये कि यह पूर्णतया सूख चुकी है। इस प्रकार से सूखी खुम्बी को पॉलीथिन के बैग में छोटे या बड़े जैसा भी पैकिंग करनी हो पैक करके अच्छी प्रकार से बंद कर देते हैं। ढींगरी को सुखाने के लिये तेज धूप का होना अति आवश्यक है।

खुम्बी की बीमारियाँ व उनका प्रबन्धन

अन्य फसलों की तरह खुम्बी में भी कई प्रकार की बीमारियाँ लगती हैं। खुम्बी में बीमारियों की संभावना और भी अधिक होती है क्योंकि इसे विशेष माध्यम पर कमरों में उगाया जाता है तथा इसमें लगभग 70–90 प्रतिशत नमी होती है। रोगों द्वारा होने वाला नुकसान इस बात पर निर्भर करता है कि रोग किस अवस्था में लग रहा है व कितना संक्रामक है। विभिन्न प्रकार के रोग एवं विकार जो खुम्बी में प्रायः देखे गये हैं मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं –

जैविक : जो रोग जनित प्राणियों के कारण होते हैं – इस श्रेणी में शामिल किए गये हैं। यह मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं –

- कवक (फफूंद) जनित रोग,
- जीवाणु जनित रोग, व
- विषाणु जनित रोग।

अजैविक : जो रोग निर्जीव कारणों से पैदा होते हैं – इस श्रेणी में आते हैं। लघु किसानों के खेतों पर इन रोगों को प्रायः देखा जा सकता है।

यदि भूसे का किटाणु हनन न किया जाय या गर्म पानी से उपचार न किया जाय और बेविस्टिन तथा फार्मेलीन का उपयुक्त मात्रा में प्रयोग न किया जाय तो बन्द थैलों के अन्दर स्पॉन–रन के समय कई प्रकार के हरे व काले रंग के फफूंद उत्पन्न हो जाते हैं। कभी–कभी ऐसे फफूंद रोग जनित स्पॉन के प्रयोग से भी आ सकते हैं। ऐसी स्थिति में काले, पीले हुए थैलों को अलग कर दें और अगर आधे से ज्यादा बैग के अन्दर रोग फैल चुका हो तो इसे फेंकना ही उचित है। प्रारम्भिक अवस्था में बेविस्टिन के पाउडर को मिलाकर स्थानीय उपचार किया जा सकता है। अगर थैलों को खोलने के बाद बहुत देर तक रखा जाये तो कुछ थैलों में ऐसे रोग उत्पन्न होना सामान्य है।

'बचाव, उपचार से अच्छा है' का सिद्धान्त खुम्बी की खेती में एक विशेष महत्व रखता है क्योंकि बीमारी आने के बाद कोई भी उपचार अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भूसे में बीज स्वच्छ स्थान पर मिलायें, हाथ व अन्य औजार 2 प्रतिशत फार्मेलीन के घोल से धोयें और अगर इसका उत्पादन किसी कमरे में लगातार हो रहा है तो उसमें भी थैले रखने के 24 घण्टे बाद फार्मेलीन के घोल ;1 प्रतिशतद्ध का छिड़काव करें।

यद्यपि ढींगरी में बटन खुम्बी की अपेक्षा बीमारियाँ कम लगती हैं, परन्तु ज्यादा पानी देने से खुम्बी की ऊपरी सतह पर कुछ बैक्टिरिया या फफूँद पनप सकते हैं। इसलिये छिड़काव के बाद ऊपरी सतह से पानी सूखने के लिये कमरा खुला रखना उपयुक्त है।

फसल की तीसरी तुड़ाई के आस–पास अगर कमरे में सफाई का ध्यान न रखा जाय तो भूसे के ढ़ांचो के ऊपर कई छोटी–छोटी मक्खियाँ देखी जा सकती हैं। इनके उपचार के लिये कमरे की दीवारों पर मेलाथियॉन का हल्का छिड़काव किया जा सकता है।

कमरें के दरवाजों पर फार्मेलीन से भीगी टाट रखने से पैरों से बीमारियाँ जाने की संभावना नहीं होती और अगर बारीक जाली के दरवाजे हों तो कीटों से भी बचा जा सकता है। फसल समाप्त होने के बाद बचे भूसे को खाद के गढ्ढों में (फसल कक्ष से दूर) डाल दें। सफाई का ध्यान रखें व स्पॉन भरोसेमंद प्रयोगशाला से खरीदें। किसी भी दवाई का छिड़काव विशेषज्ञ की सलाह के बिना न करें।

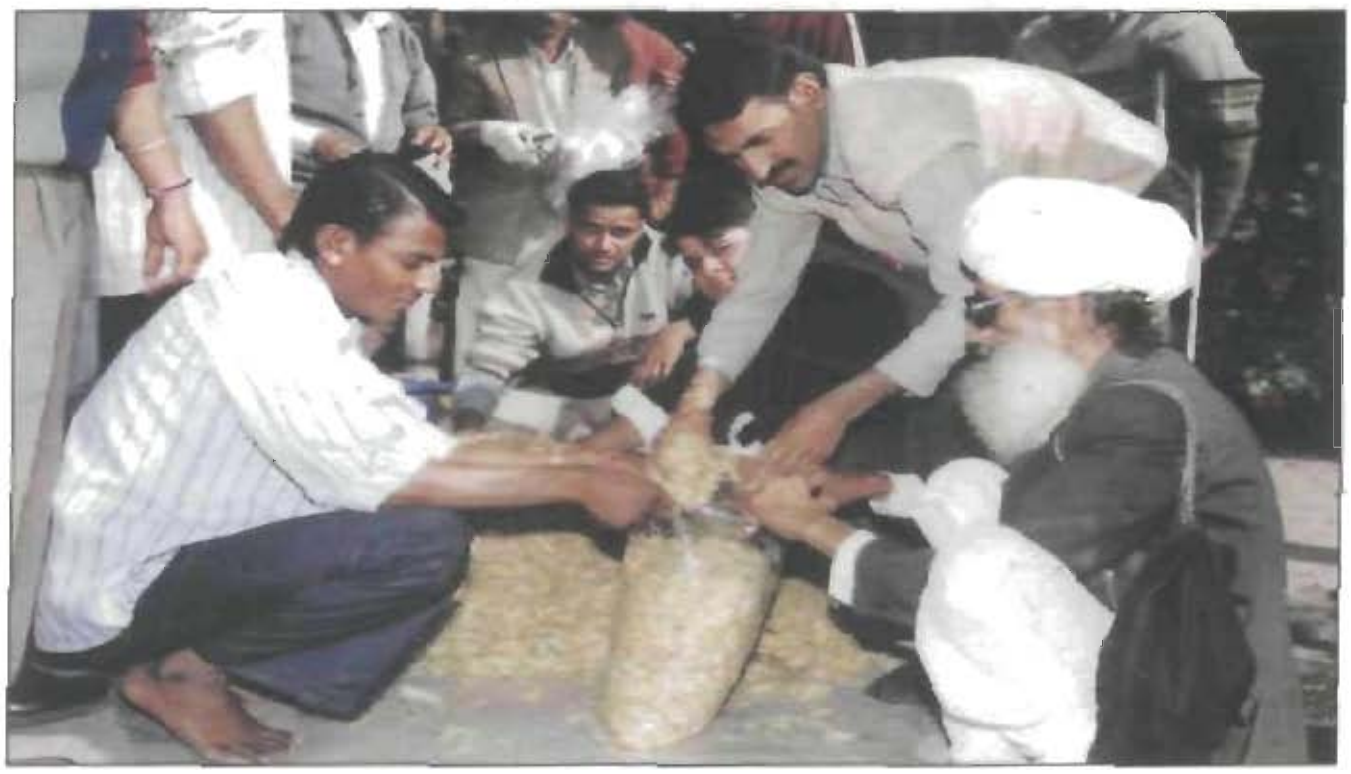

चित्र 25.1. उपचारित भूसे का स्पानीकरण करते प्रशिक्षार्थी

चित्र 25.2. थैली में पूर्ण स्पॉन फैलाव के बाद पॉलीथिन हटानें की प्रक्रिया

चित्र 25.3. थैली के चारों ओर उगती ढींगरी का दृश्य

26 ढींगरी की खेती का आर्थिक विश्लेषण

नन्दलाल व्यास

ढींगरी उत्पादकों को इसके उत्पादन की प्रक्रिया तथा आर्थिक विश्लेषण की जानकारी अति आवश्यक है। ढींगरी का उत्पादन शुरु करने से पहले यह जरुरी है कि इसका प्रशिक्षण किसी भी सरकारी विभाग से प्राप्त कर लेवें तथा शुरु में इसका उत्पादन छोटे स्तर पर प्रारम्भ करें जिससे कि किसान को इसके बारे में समुचित ज्ञान हो जाये। ढींगरी उत्पादन की बड़ी इकाई शुरु करने से पहले निम्नलिखित बातों का अध्ययन कर लेना चाहिए –

फसल अवशेषों की उपलब्धता

ढींगरी को किसी भी तरह के फसल अवशेषों पर उगाया जा सकता है। अतः यह जरुरी है कि वह वर्ष भर सस्ते दामों पर निरन्तर उपलब्ध हो। महंगे फसल अवशेषों के उपयोग से ढींगरी की पैदावार पर होने वाला खर्च अधिक होगा और लाभ कम।

पानी तथा बिजली की उपलब्धता

सभी खुम्बियों को उगाने के लिये पानी की आवश्यकता होती है। अतः ढींगरी के लिये भी पानी की उपलब्धता आवश्यक है तथा बिजली भी 4 से 6 घण्टे होनी चाहिए।

प्रशिक्षण

खुम्बी की खेती में लगे मजदूरों व कर्मचारियों का प्रशिक्षण भी आवश्यक है। अनेकों बार स्वयं को बाहर जाने की स्थिति में कर्मचारीगण अथवा मजदूर ही खुम्बी की देखभाल करते हैं। प्रशिक्षण के अभाव में ज्यादा पानी देने, प्रकाश का प्रबन्ध नहीं करने तथा कार्बन–डाई–ऑक्साइड की मात्रा अधिक होने से पैदावार पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

विपणन

खुम्बी का समय पर विपणन नहीं होने से नुकसान हो सकता है। अतः यह जरूरी है कि ढींगरी को सही तरीके से सुखा लिया जाये या इसका अचार इत्यादि बनाकर पैदावार के नुकसान को कम किया जाये। ढींगरी की पौष्टिकता तथा इसके बारे में लोगों को अधिक जानकारी नहीं होने से विपणन समुचित नहीं है अतः आमजन को इसकी पौष्टिकता तथा व्यंजन के बारे में प्रचार माध्यमों से अवगत कराना चाहिए।

ढींगरी उत्पादन के लिये एक छोटी से छोटी इकाई जिसमें एक कमरा (6 X 5 X 3 मी) जिसमें लगभग 200 से 250 थैले रखे जा सकें, एक परिवार के व्यवसाय के लिये पर्याप्त है। एक बात ध्यान

रखनी चाहिए कि प्रति सप्ताह 40 से 50 थैले बीजाई करें जिससे नियमित पैदावार मिलती रहे तथा इन्हें इसी क्रम में खोलना चाहिए। एक साथ थैलों की बीजाई करने से पैदावार एक साथ प्राप्त होगी तथा इसके विपणन में कठिनाई आने की सम्भावना रहेगी। ढींगरी की खेती करने के लिए विभिन्न तरह की उत्पादन इकाइयां जैसे पॉलीथिन शीट से बनाया गया कमरा, कच्ची ईंटों, धान की पुराली तथा बांस से बना हुआ घर या पक्की ईंटों से बनाये गये कमरों में इसके थैले रखे जा सकते हैं। पॉली हाउस में ढींगरी उत्पादन के लिये आर्थिक विश्लेषण दिया जा रहा है।

पाली हाउस से उत्पादन के लिये आर्थिक विश्लेषण

क्र.सं.	विवरण		खर्च (रु.)
अ)	**स्थायी पूंजी :**		
1.	पाली हाउस (6X5X3 मी.) का खर्चा	-	25,000
2.	छिड़काव पम्प (एक नग)	-	2,500
3.	लोहे की सफेद चद्दर से निर्मित टब या ड्रम, (4 नग)	-	1,200
4.	रैकों का खर्चा (बांस या लोहे की रैक)	-	10,000
5.	थर्मामीटर, बल्ब इत्यादि	-	250
	कुल स्थायी लागत		**38,950**
आ)	**आवर्ती खर्चे :**		
1.	भूसा या पुराली, 5 क्विंटल, 200 रु. प्रति क्विंटल	-	1,000
2.	पॉलीथिन बैग का खर्च (300 नग), 80 रु. प्रति कि.ग्रा., कुल 4 कि.ग्रा.	-	320
3.	स्पॉन की कीमत, (50 कि.ग्रा.) 50 रुपर्ये प्रति कि.ग्रा.	-	2,500
4.	श्रमिक (एक श्रमिक 40 दिनों के लिये) 50 रु. प्रतिदिन	-	2,000
5.	दवाइयॉ (वेविस्टीन तथा फार्मेलीन)	-	250
6.	गेहूं का चोकर या चावल की पॉलिश का सम्पूरक 50 कि.ग्रा (4 रु. प्रति कि.ग्रा.)	-	200
7.	अन्य खर्च (बिजली, पानी इत्यादि)	-	400
	कुल आवर्ती खर्चे		**6,670**
इ)	**स्थायी पूंजी पर अवमूल्यन** : 10 प्रतिशत अवमूल्यन (रु. 3895) व 10 प्रतिशत ब्याज (3895 रु.) 5 फसलों के लिये (प्रति वर्ष)	-	7,790
क)	एक फसल पर अवमूल्यन तथा ब्याज	-	1,558
ख)	अस्थायी खर्चा	-	6,670
	कुल लागत		**8,228**
ई)	**उत्पादन तथा आय :**		
क)	80 प्रतिशत उत्पादन	-	400 कि.ग्रा.
ख)	कुल आय (35 रु. प्रति किलोग्राम की दर से)	-	14,000
ग)	शुद्ध आय (14000–8228)	-	5,772 रु./फसल

27

खुम्बी के विभिन्न व्यंजन

मनजीत सिंह एवं नन्दलाल व्यास

हमारे देश में 70 से 80 प्रतिशत जनसंख्या शाकाहारी हैं। साग–सब्जियों की अपेक्षा खुम्बी में प्रोटीन अधिक मात्रा में पाई जाती है। खुम्बी में पाई जाने वाली प्रोटीन की तुलना किसी भी प्रकार के माँसाहारी भोजन में पायी जाने वाली प्रोटीन से की जा सकती है। रासायनिक विश्लेषणों से यह सिद्ध हो चुका है कि खुम्बी में पायी जाने वाली प्रोटीन में अनिवार्य अमीनोएसिड किसी भी प्रकार के मांस व दूध में पायी जाने वाली प्रोटीन के अमीनोएसिड के लगभग बराबर व अन्य साग–सब्जियों जैसे आलू पालक, गाजर, टमाटर व दालों से अधिक है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि माँसाहारी भोजन से प्राप्त होने वाली उत्तम प्रोटीन शाकाहारी खुम्बी से आसानी से प्राप्त हो सकती है। इतना ही नहीं बल्कि खुम्बी से प्राप्त प्रोटीन को लगभग 90 प्रतिशत तक आसनी से पचाया जा सकता है। भोजन में नियमित खुम्बी के प्रयोग से अनाज में अनुपस्थित अनिवार्य अमीनों अम्ल – लाइसिन व ट्रिप्टोफेन जैसे तत्व की आपूर्ति की जा सकती है।

खुम्बी में खनिज लवण जैसे कि फास्फोरस, पोटेशियम और लोह प्रचुर मात्रा में होते हैं जो शरीर की विभिन्न प्रक्रियाओं के लिए अनिवार्य हैं। खुम्बी में सोडियम बहुत ही कम मात्रा में होता है जो कि हृदय रोग व गुर्दों से जुड़ी बीमारियों वाले रोगियों के लिए उत्तम पौष्टिक आहार है। खुम्बी में विटामिन बी, बी.$_2$ नियासिन, बायोटिन, एस्कोरबिक एसिड़, प्रो विटामिन (ए), विटामिन के और विटामिन (इ) प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। शाकीय आहारों में अनुपस्थित विटामिन बी$_{12}$ व फोलिक एसिड भी खुम्बी में उपलब्ध है। इसलिए खुम्बी के नियमित रूप से भोजन में प्रयोग करने से विटामिन की कमी से उत्पन्न होने वाले रोगों से बचा जा सकता है। खुम्बी में फोलिक ऐसिड प्रचुर मात्रा में होता है जिसके सेवन से रक्त की मात्रा में वृद्धि होती है।

खुम्बी में अनेक प्रकार के औषधीय गुणों का भी पता लगाया जा चुका है। अनेक प्रकार के रोग जैसे कि उच्च रक्तचाप, मधुमेह, कैन्सर आदि अनेक प्रकार के उपचार में खुम्बी का अत्यधिक महत्व है। खुम्बी में कम वसा, कम नमक, कम शक्कर व अधिक रेशे होने की वजह से यह हृदय, मधुमेह व मोटापे से ग्रस्त रोगियों के लिए उत्तम भोजन है। गर्भवती व स्तनपान कराने वाली महिलाओं के लिए पौष्टिक भोजन खुम्बी से प्राप्त होता है। इसलिए खुम्बी को एक अधिक एवं उच्च गुणवत्ता वाली प्रोटीन युक्त शाकाहारी सब्जी माना जाता है।

जिन विधियों का अन्य शाकाहारी भोजन बनाने के लिये प्रयोग किया जाता हैं वही ढींगरी को पकानें के लिये उपयुक्त हैं। ढींगरी का अचार अथवा अन्य व्यंजन बनाये जा सकते हैं। यद्यपि दूसरी सब्जियों के अनुरूप खुम्बी पकानें पर नरम नहीं होती इसलिये खुम्बी को प्रेसर कुकर में डालनें के बाद 5–7 मिनट तक धीमी आंच पर पकाना काफी है। अचार व अन्य व्यंजन बनाने की विधि निम्नलिखित है–

खुम्बी मटर

खुम्बी 200 ग्राम, मटर 500 ग्राम, प्याज दो बड़े, लहसुन छः कलियां, अदरक 10 ग्राम, टमाटर 2 बड़े, हल्दी 1/2 चम्मच, गरम मसाला 1/2 चम्मच, नमक एवं मिर्च स्वादानुसार।

खुम्बी को साफ पानी में धोकर काटें। घी को पकाने वाले बर्तन में गर्म करें। बारीक कटा प्याज, अदरक, लहसुन आदि डालकर भूनें। तत्पश्चात् टमाटर, कटी हुई खुम्बी और छिले हुए मटर डालकर पकायें।

खुम्बी की मिश्रित सब्जी

खुम्बी 250 ग्राम, मटर 500 ग्राम, गोभी 100 ग्राम, टमाटर 100 ग्राम, प्याज एक बड़ा, लहसुन की कलियां 4, नमक व मिर्च स्वादानुसार।

खुम्बी व सब्जियों को साफ पानी में धोकर काट लें। घी गर्म करें, प्याज व लहसुन को गुलाबी होने तक घी में भूने तत्पश्चात् सारे मसाले डालें फिर खुम्बी, मटर व गोभी डालें। थोड़ा पकने पर टमाटर डालकर 5 से 10 मिनट बाद उतार लें।

खुम्बी पुलाव

खुम्बी 100 ग्राम, छिले हुए मटर 50 ग्राम, प्याज दो बड़े, जीरा, व इलायची एक चम्मच, घी 2 बड़े चम्मच, बासमती चावल 200 ग्राम, तीन चार तेज पात के पत्ते, साबुत लोंग और बड़ी इलायची।

साफ चावल कों पानी में धोकर लगभग एक घण्टे तक भिगोयें। घी में जीरे, लोंग, इलायची, तेजपत्ता का छोंक लगाकर कटे प्याज, खुम्बी, छिले मटर, हरी मिर्च डाल कर भूनें तत्पश्चात् चावल डालकर आवश्यकतानुसार पानी डालकर पकायें, स्वादानुसार नमक डालें।

खुम्बी का अचार

सफाई व धुलाई : अचार बनाते समय सबसे पहले खुम्बी चाहे वह बटन हो या ढींगरी, कटाई के पश्चात् साफ पानी से धुलाई व सफाई काफी अच्छी तरह से करें।

टुकड़ों में काटना : धुलाई करने के बाद खुम्बी की कटाई (स्लाइसिंग) करते हैं। इसके लिये बड़े आकार की खुम्बियों को चार भागों में तथा छोटी खुम्बियों को दो भागों में काट लेते हैं।

ब्लीचिंग करना : कटे हुए खुम्बी के टुकड़ों को उबलते हुए पानी में 0.05 प्रतिशत के.एम.एस. (पोटाशियम मेटाबाइसल्फाइट) के साथ 10 मिनट तक रखते हैं। उसके तुरन्त बाद खुम्बी के टुकड़ों को एक साथ ठण्डे पानी में कुछ देर के लिये रखते हैं। ठण्डे पानी से टुकड़ों को निकालकर किसी स्टील के बर्तन में या प्लास्टिक के टब में रखतें हैं।

नमक मिलाकर रखना : ब्लांच किये हुए टुकड़ों को 10 प्रतिशत नमक मिलाकर एक दिन के लिये रखते हैं। अगले दिन पायेंगे कि बर्तन में नमक का घोल काफी मात्रा में बन पाया है, इस नमक युक्त पानी को फेंक देते हैं एवं खुम्बी के टुकड़ों को नमक के घोल से निकाल कर अलग बर्तन में रख लेते हैं।

एसिटिक एसिड तथा परिरक्षक मिलाना : निथरे हुए टुकड़ों में एक प्रतिशत एसिटिक एसिड अर्थात 1 किलोग्राम ब्लांच किये हुए खुम्बी के टुकड़ों में 10 मिली लीटर एसिटिक एसिड तथा 0.065 प्रतिशत सोडियम बेंजोएट (0.65 ग्राम) मिलाते हैं।

मसाले मिलाना : एसिटिक एसिड तथा सोडियम बेंजोएट मिलाने के पश्चात् अचार के मसालों को उसमें मिला देते हैं।

खुम्बी पनीर

खुम्बी 200 ग्राम, पनीर 100 ग्राम, प्याज बड़ी साइज 3, लहसुन 8 कलियां, जीरा 1/2 चाय का चम्मच, गरम मसाला 1/2 चम्मच, टमाटर बड़ी साइज 3, घी 2 बड़े चम्मच, नमक एवं मिर्च स्वादानुसार।

खुम्बी पकोड़ा

खुम्बी 100 ग्राम, प्याज दो छोटे, बेसन एक पाव, अदरक एक छोटा टुकड़ा, तीन–चार हरी मिर्चे, रिफाइण्ड तेल। खुम्बी धोकर बड़े–बड़े टुकड़े काटें। बेसन का घोल बनायें। उसमें कटे प्याज, हरी मिर्च, नमक, लाल मिर्च स्वादानुसार मिलायें, इस मिश्रण को भली–भाँति मिलाकर खुम्बी के पकोड़े बनायें। गर्म–गर्म सॉस या चटनी के साथ परोसें। खुम्बी की भजियाँ बनाने के लिये 100 ग्राम खुम्बी को बारीक काटें और इसमें 2–3 चम्मच सूखा बेसन मिलाएं। नमक, मिर्च स्वादानुसार डालें तथा छोटे–छोटे आकार में तलें।

खुम्बी मिश्रित अचार

खुम्बी का मिश्रित अचार बनाने के लिए खुम्बी, गाजर, फूल गोभी, शलजम, मटर के दाने 3 किलोग्राम, अदरक 100 ग्राम, लहसुन 20 ग्राम, मिर्च 20 ग्राम, नमक स्वादानुसार, राई 100 ग्राम, गुड़ 750 ग्राम, 5 चम्मच एसिटिक अम्ल व एक किलोग्राम सरसों का तेल लें। सब्जियों को टुकड़ों में काटकर

धोकर छाया में सुखायें। खुम्बी को अदरक और लहसुन आदि मसालों के साथ तेल में भूनें। साइट्रिक अम्ल एवं गुड़ का घोल इसमें डालें। तत्पश्चात् कटी सब्जियों को डालकर मिलायें। पिसी राई डालकर भरनी में भर दें। दो दिन धूप में रखने के बाद तेल डालें।

खुम्बी सूप

खुम्बी 50 ग्राम, प्याज एक छोटा, अदरक एक छोटा टुकड़ा, लहसुन 6 कलियां, एक चम्मच मैदा, एक कप दूध, एक चम्मच मक्खन, नमक, काली मिर्च और चीनी स्वादानुसार। कटी खुम्बी, प्याज, अदरक एवं लहसुन को तीन पाव पानी में उबालें। मक्खन पिंघला कर मैदे को हल्का भूनें और दूध मिलायें। उसके बाद 5 से 10 मिनट तक उबालें। काली मिर्च, नमक एवं चीनी स्वादानुसार डालें।

VI कटाई पश्चात् प्रौद्योगिकी प्रबन्धन

28 फल एवं सब्जियों का निर्जलीकरण द्वारा परिरक्षण

पुरखा राम मेघवाल

फल व सब्जियाँ मानव आहार के महत्वपूर्ण अंग हैं परन्तु इनकी उपलब्धता मौसम विशेष पर निर्भर करती है। सभी तरह के फल तथा सब्जियाँ हर जगह उपलब्ध नहीं रहतीं। भारतवर्ष में जलवायु की विविधता पाए जाने के कारण विभिन्न तरह के फल तथा सब्जियाँ देश के किसी न किसी भाग में हर समय पैदा होती रहती हैं। यही कारण है कि भारत दुनिया का दूसरा सबसे अधिक फल व सब्जी उत्पादक देश है। इसके बावजूद यहाँ पर फलों व सब्जियों की पर्याप्त मात्रा आम आदमी तक नहीं पहुँच पाती है, क्योंकि कुल उत्पादन का 20 – 40 प्रतिशत भाग अन्तिम ग्राहक के पास पहुँचने से पहले ही खराब हो जाता है। इसलिए मौसमी पैदावार अधिक होने के कारण इनके मूल्यों में गिरावट रोकने और इच्छानुसार प्रयोग के लिए परिरक्षण अति आवश्यक है। यद्यपि इनकी खपत कुल पैदावार की 0.5 प्रतिशत भी नहीं है इसलिए फलों और सब्जियों के परिरक्षण का महत्व और भी अधिक हो जाता है।

निर्जलीकरण का शाब्दिक अर्थ है – किसी भी जलयुक्त पदार्थ के जल को मूल पदार्थ से पृथक कर देना। फल परिरक्षण में इस अर्थ को मूल रूप से स्वीकृत नहीं किया जा सकता। क्योंकि इसका मुख्य उद्देश्य परिरक्षित पदार्थ को आकर्षक, मधुर सुगन्ध युक्त व पोषक बनाए रखना है। फल परिरक्षण के अनुसार निर्जलीकरण को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है। फल एवं सब्जियों से पूर्ण नियंत्रण में जल के अंश को अलग कर देना जो कि उसके पोषक मूल्य को प्रभावित किये बिना संभव हो निर्जलीकरण कहलाता है। निर्जलीकृत फल एवं सब्जियों को उपयोग करने से पहले उनको जल में भिगोकर पुनः उनके मूल रूप में लाया जाता है, इस क्रिया को पुनः जल योजन क्रिया कहते हैं।

निर्जलीकरण के लाभ : उत्पादन–व्यय में कमी, आयतन व भार में कमी, पैकिंग में सुविधा, सरल तकनीक, सरल संग्रहण और खराब होने की कम संभावना।

निर्जलीकरण की त्रुटियां : निर्जलीकरण हालांकि एक सरल और सस्ती विधि है, किन्तु यह फल व सब्जियों की मौलिकता न बनाए रखने के कारण उतनी लोकप्रिय नहीं हुई जितनी कि होनी चाहिए थी। सूखे हुए फल व सब्जियाँ सिकुड़कर कम आकर्षक, कम मधुर सुगन्ध युक्त और सख्त हो जाते हैं परन्तु कुछ फल जैसे अंगूर, खजूर, अंजीर इत्यादि सूखे हुए रूप में अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

सुखाने की विधियाँ : व्यवसायिक स्तर पर सुखाने की अनेकों विधियाँ प्रयोग की जाती हैं। प्रत्येक का एक खास दशा में उपयोग होता है सुखाने की विधियों का चयन निम्न बातों पर निर्भर करता है –

- पदार्थ का प्रारम्भिक रूप – तरल, पेस्ट, कर्दम, गूदा घना द्रव (Slurry)।
- पदार्थ का गुण धर्म – ऑक्सीकरण से संवेदनशीलता, तापक्षिक संवेदनशील।
- उत्पाद के वांछनीय अभिलक्षण – पूर्ण, तात्क्षणिक, घुलनशील, अत्युत्रम पुनर्जलयोजन, आकृति का धारण पूर्ण या आंशिक।
- सुखाने की लागत – निम्न, मध्यम, अधिक व बहुत अधिक।
- फलों और सब्जियों से नमी दूर करने की दो विधियाँ हैं –

  – धूप में सुखाना।

  – कृत्रिम दशा पैदा करके सुखाना जिसमें ताप, नमी और हवा के प्रवाह पर नियंत्रण रहता है।

इन दोनों विधियों में काफी अन्तर है तथा इनके सापेक्ष गुणवतांक निम्नलिखित हैं –

- धूप में सुखाए गए उत्पाद की तुलना में निर्जलीय उत्पाद पकाने के बाद ताजे पदार्थ की तरह लगते हैं।
- निर्जलित उत्पाद स्वच्छ दशा में तैयार किये जाते हैं।
- निर्जलीकरण से तैयार उत्पाद की गुणवत्ता की देखभाल अच्छी तरह से नियंत्रित की जा सकती है।
- निर्जलीकरण के लिए कम स्थान चाहिए।
- प्राकृतिक विपदा जैसे आंधी या वर्षा के समय निर्जलीकरण द्वारा फल और सब्जियों को इनसे होने वाली क्षति से बचाया जा सकता है।
- धूप में सुखाने से कच्चे फलों का हरा रंग फीका पड़ जाता है, परन्तु निर्जलीकरण से ऐसा कोई परिवर्तन नहीं आता। अतः अगर कटे हुए फलों को निर्जलीकरण से पहले, थोड़े समय के लिए धूप में रखा जाए तो उसका हरा रंग गायब हो जाता है।

फलों को धूप में सुखाना

सर्वप्रथम फलों को साफ पानी से धोया जाता है। तत्पश्चात् इनका छिलका हटाकर आवश्यकतानुसार ट्रे में फैला दिया जाता है। तैयार फलों को गंधक के धुएँ से उपचारित किया जाता है, जिससे इनके रंग को स्थिर किया जा सके तथा सूक्ष्म जीवों से होने वाली खराबी से बचा जा सके। गंधक का धुंआ (धूमन) एक छोटे कक्ष (काठ के डिब्बे) में ज्ञात मात्रा में गंधक (1.8 – 3.6 किलोग्राम प्रति 1000 किलोग्राम फल) को फर्श पर एक बर्तन में जलाकर किया जाता है। फलों को ट्रे में भर कर इस कक्ष में 3 – 12 घण्टे के लिए रखा जाता है। मोटी छीलन वाले फल जैसे अंगूर, आड़ू इत्यादि को लाई घोल से उपचारित किया जाता है। गंधक धूमन के बाद फलों को धूप में सुखाया जाता है। कभी–कभी फलों को उलट–पलट करते रहना चाहिए। सूखे फलों को डिब्बे में नमी को एक समान करने के लिए कुछ समय के लिए रखा जाता है। इसके बाद इन्हें उचित बर्तनों में भर कर रखा जाता है। भण्डारण करने से पहले उत्पाद को कार्बनडाईसल्फाइड से भी धूमित कर लिया जाता है।

फलों एवं सब्जियों के निर्जलीकरण की विधि

निर्जलीकरण में निम्न क्रियाऐं की जाती हैं –

फल एवं सब्जियों का चुनाव
↓
वर्गीकरण एवं श्रेणी चयन
↓
धोना एवं अन्य उपचार
↓
छीलना, काटना एवं क्रोड निकालना
↓
ब्लीचिंग (केवल सब्जियों में)
↓
गंधक का धुँआ देना या गंधक युक्त लवण के घोल में डुबोना
↓
शोषक में सूखने हेतु रखना
↓
सूखने की स्थिति का परीक्षण
↓
उत्स्वेदन या नमी अनुकूलन
↓
पैकिंग

प्रमुख फल व सब्जियों का निर्जलीकरण

कच्चा आम (अमचूर के लिए) : पूर्ण विकसित कच्चे आम स्टेनलेस स्टील के चाकू से लम्बी फाँकों में काट लें। इन कटी हुई फाँकों का श्वेतन उबलते पानी में 2–5 मिनट और भाप में 5 मिनट के लिए रखना चाहिए। उसके बाद 15 मिनट के लिए 1.5 प्रतिशत पोटेशियम मेटाबाइसल्फाइट के घोल में रखकर शुष्कित्र करें या फिर धूप में सुखायें।

खजूर : फलों को पिंड अवस्था में पेड़ों से तोड़ने के बाद इन्हें धूमित किया जाता है। जिससे यह फल कीड़े वगैरह से सुरक्षित रहें। इसके लिए कार्बनडाइसल्फाइड या मिथाइल ब्रोमाइड का प्रयोग किया जाता है। फलों पर लगी धूल इत्यादि साफ की जाती है। फिर गुणवत्ता के आधार पर इनका श्रेणीकरण किया जाता है। पेड़ से फलों को तोड़ने के पश्चात् इनमें थोड़ा बहुत कसैलापन हो सकता है जिसको दूर करने

के लिए इन्हें उपचार कक्ष में 32–38 डिग्री सेन्टीग्रेड पर कुछ दिनों के लिए रखते हैं। प्रायः खजूर में तोड़ाई के बाद निम्नतम नमी होती है, इसलिए बिना सुखाए भी इनका संवेस्टन किया जा सकता है।

भारत वर्ष में आमतौर पर खजूर में पिंड अवस्था आते समय वर्षा शुरू हो जाती है। इसलिए इनको डोका अवस्था पर तोड़ कर छुहारा बनाने के काम में लिया जाता है। छुहारों के लिए खजूर की मेदजूल, खदरावी, हलावी, शामरान इत्यादि किस्में उपयुक्त पाई गई हैं। सर्वप्रथम फलों को साफ पानी में धोकर 15–20 मिनट तक पानी में उबाला जाता हैं इसके पश्चात् फलों को 3000 पीपीएम पोटेशियम मेटाबाइसल्फाइट के घोल में 30 मिनट तक उपचारित किया जाता है तथा अन्त में शुष्कक या धूप में सुखा लिया जाता है।

बेर : बेर की काठा, उमरान, बागवाड़ी तथा छुहारा इत्यादि किस्में निर्जलीकरण के लिए उपयुक्त पाई गई हैं। फलों को 2–6 मिनट तक उबलते पानी में रखकर फिर ठण्डे पानी से धोना चाहिए जिससे फल नरम हो जाए। फल के दो टुकड़े करके बीज निकालकर या पूरे फल को ही सुखाया जाता है, गंधक बॉक्स में 150 ग्राम गंधक चूर्ण को प्रति 8 किलोग्राम फल की दर से जलाकर धुँआ किया जाता है। इसमें फलों को लकड़ी की ट्रे में 6–9 किलोग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से तीन घण्टे तक रखते हैं। इसके बाद केबिनेट में 8 किलोग्राम प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से ट्रे में रखकर 60±5 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान पर 14–17 प्रतिशत नमी तक सुखाने में लगभग 20–36 घण्टे लग जाते हैं।

कैर : कैर का कच्चा फल सुखाया जाता है। कच्चे फल कसैले होते हैं। फलों के कसैलेपन को दूर करने के लिए डंठल सहित एक सप्ताह तक 2 प्रतिशत नमक के पानी में रखते हैं। बाद में साफ पानी से धोकर 5 मिनट तक पानी में उबाला जाता है। फिर तुरन्त ठण्डे पानी में डालकर फलों से लगा डण्ठल अलग कर दिया जाता है। इसके बाद फलों को 0.3 प्रतिशत पोटेशियम मेटाबाइसफल्फाट के घोल में 5–10 मिनट तक उपचारित करके ट्रे शुष्कक या धूप में 7–8 प्रतिशत नमी तक सुखा दिया जाता है।

खेजड़ी की सांगरी : खेजड़ी की सांगरी भी कैर की तरह कच्ची अवस्था में ही उपयोगी होती है। सुखाने के लिए फलियों को 10–15 मिनट या उनके मुलायम होने तक पानी में उबाला जाता है तथा ठण्डे पानी में रखकर तुरन्त ठण्डा कर दिया जाता है। इसके पश्चात् सल्फरडाई ऑक्साइड से धूमित कर धूप में या ट्रे शुष्कक में सुखाना चाहिए।

आलू : सामान्यतया साबुत आलू को अच्छी तरह धोकर व छिलके उतार कर 0.5–0.6 से.मी. मोटाई में गोलाकार टुकडों में काटें। काटते समय उनको 0.5 प्रतिशत पोटेशियम मेटाबाइसल्फाइट के घोल में रखते जाएं, जिससे कि वे भूरे न हो जाएं। टुकड़े तैयार होने पर उनकी 5 मिनट तक ब्लॉचिंग कीजिए। इसके पश्चात् 5–7 किलोग्राम प्रति वर्ग मीटर में फैलाकर 60–65 डिग्री सेन्टीग्रेड तापक्रम पर सुखाएं। सूखने में 7–8 घण्टे का समय लगता है। धूप में भी इनको सुखाया जा सकता है। सूखे पदार्थ का अनुपात 7 : 1 होता है।

29 सूखे में आय उपार्जन के विकल्प – फल एवं सब्जी परिरक्षण

राज नाथ प्रसाद, अमतुल वारिस, सविता सिंघल एवं जबरदान कविया

फल व सब्जियों का हमारे भोजन में अत्यधिक महत्व है क्योंकि इससे हमारे शरीर में विटामिन व खनिज लवण तथा अन्य पोषक तत्वों की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। जिससे हमारे भोजन की गुणवत्ता बढ़ती है व हम स्वस्थ रहते हैं। हमारे यहाँ अधिकांश लोग कुपोषण के शिकार हैं क्योंकि वे दैनिक भोजन में फल व सब्जी का उपयोग बहुत ही कम करते हैं। परिणामस्वरूप प्रति वर्ष हजारों लोग रतौंधी, बेरी–बेरी, रक्तहीनता, स्कर्वी आदि बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 5 वर्ष की उम्र के करीब एक तिहाई बच्चे प्रति वर्ष कुपोषण से मरते हैं। यद्यपि किसानों द्वारा उन्नत कृषि तकनीकी अपनाने से फल–सब्जी उत्पादन बढ़ा है परन्तु वैज्ञानिक परिरक्षण के ज्ञान के अभाव में वे पूरे वर्ष इनका उपयोग नहीं कर पाते हैं। फल व सब्जियों का मौसम में बहुत अधिक उत्पादन होता है व बाजार में इनकी भरमार हो जाती है। फलस्वरूप भावों में अत्यधिक गिरावट आ जाती है। ऐसे समय में यदि उन्हें परिरक्षित कर लिया जाए तो हम वर्ष भर इनका आनंद ले सकते हैं व स्वस्थ रह सकते हैं।

अचार बनाकर सब्जियों का परिरक्षण

नमक, तेल तथा सिरके द्वारा खाद्य पदार्थो का संरक्षण ही अचार बनाने की कला है। मौसम के अनुरूप सब्जियाँ सस्ती एवं बहुतायत में उपलब्ध होती हैं जैसे सर्दियों मे आँवला, मिर्च, गोभी, गाजर, मटर आदि तथा गर्मियो में कैर, कैरी, गून्दा इत्यादि। अतः ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में रहने वाली महिलाएँ इन सब्जियों का अचार बनाकर एवं धूप में सुखा कर (चित्र 29.1) अतिरिक्त आय अर्जित कर सकती हैं।

प्रस्तुत लेख में सब्जियों के अचार बनाने की विधियों की जानकारी दी जा रही है जो कि ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में रहने वाली महिलाओं के लिये उपयोगी सिद्ध होगी।

अचार बनाने से पहले निम्नलिखित जानकारी होना अति आवश्यक है –

- अचार प्लास्टिक के बर्तन में नहीं रखना चाहिए।
- अचार बनाने के बाद तीन दिन तक धूप में अवश्य रखें।
- तेल की एक तह अचार की ऊपरी सतह तक होनी चाहिए।
- तेल रहित अचार में नमक की मात्रा 20 प्रतिशत अवश्य होनी चाहिए।

अचार के सामान्य मसाले निम्न हैं –

तैयार सब्जी	–	1 किलोग्राम
नमक	–	आवश्यकतानुसार
हल्दी	–	15 ग्राम
पिसी लाल मिर्च	–	20 ग्राम
गर्म मसाला	–	15 ग्राम
पिसी राई	–	50 ग्राम
दरदरी सौंफ	–	25 ग्राम
एसिटिक अम्ल	–	10 मि.ली.
सरसों का तेल	–	400 मि.ली.

इसके अतिरिक्त जिन सब्जियों में मसाला भरने के लिये तैयार किया जाता है उनमें उपरोक्त मसालों के अलावा निम्न मसाले बढ़ा देते हैं :

खटाई	–	100 ग्राम
राई	–	50 ग्राम
सौंफ	–	25 ग्राम

नींबू का अचार

सामंग्री :

नींबू	–	1 किलोग्राम
नमक	–	200 ग्राम
लाल मिर्च	–	40 ग्राम
दरदरी दानामेथी	–	20 ग्राम
सौंफ	–	15 ग्राम
किरायता	–	10 ग्राम
हल्दी	–	15 ग्राम

विधि :

- अच्छे किस्म के नींबूओं को धोकर, पोंछकर, चार टुकड़ों में इस प्रकार काटें कि नीचे का हिस्सा जुड़ा रहे।
- नींबूओं को निचोड़ कर आधा रस निकालें।

- उपरोक्त मसालों को मिलाकर, नींबूओं में दबा–दबा कर भरें एवं नींबूओं को साफ एवं सूखी भरनी में ड़ालते जायें।
- निकाले हुए रस को छानकर भरनी में ड़ाल दें।
- भरनी पर पतला मलमल का कपड़ा बांध कर एक सप्ताह के लिये धूप में रखें।

कैर का अचार

सामग्री :

कैर	–	1 किलोग्राम
नमक	–	150 ग्राम
लाल मिर्च	–	25 ग्राम
हल्दी	–	25 ग्राम
गर्म मसाला	–	10 ग्राम
राई	–	75 ग्राम
सौंफ	–	50 ग्राम
अमचूर	–	50 ग्राम
तेल	–	400 मि.ली.

विधि :

- कैर के ऊपर के डंठल तोड़ कर 5 – 6 दिन छाछ में भिगोकर रखें, ताकि इसका कसैलापन निकल जाये।
- कैरों को साफ पानी से धोकर किसी कपड़े पर फैला कर पानी सुखा लें।
- एक बर्तन में कैर लेकर उसमें उपरोक्त सभी मसालें मिला लें।
- तेल गर्म करके फिर ठण्डा करके अचार में ड़ाल दें।
- साफ एवं सूखी भरनी में भरकर 2 – 3 दिन तक धूप में रखें।

कैरी का बिना तेल वाला अचार

सामग्री :

कैरी साफ की हुई	–	1 किलोग्राम
नमक	–	200 ग्राम
हींग	–	10 ग्राम
लाल मिर्च	–	50 – 100 ग्राम

विधि :

- कैरी को छील कर छोटे–छोटे टुकड़ों में काटें।
- हींग को पीसकर सभी मसाले कैरी में मिला दें।
- भरनी में भर कर 2 – 3 दिन तक धूप में रखें।

गूंदे (लसोड़े) का अचार

सामग्री :

गूंदे	–	1 किलोग्राम
नमक	–	150 ग्राम
हल्दी	–	20 ग्राम
गर्म मसाला	–	20 ग्राम
पिसी राई	–	50 ग्राम
अमचूर	–	100 ग्राम
लाल मिर्च	–	40 ग्राम
साइट्रिक अम्ल	–	10 ग्राम
तेल	–	300 मि.ली.

विधि :

- गूंदो को डंठल से अलग करके 15 मिनट तक गर्म पानी में उबालें। जब तक रंग ना बदले।
- इसके पश्चात् गूंदों को ठण्डे पानी में डालें।
- गूंदो से गुठली निकालकर इनको कपड़े पर फैला दें।
- 1 – 2 घण्टे पश्चात् जब गूंदों का पानी सूख जाय तब सभी मसाले एवं साइट्रिक अम्ल मिलाकर गूंदों में दबा – दबा कर भरें।
- तेल गर्म करके ठण्डा करें एवं भरनी में ड़ाल दें।

आँवले का अचार :

सामग्री :

आँवला	–	1 किलोग्राम
नमक	–	150 ग्राम
लाल मिर्च	–	25 ग्राम
हल्दी	–	15 ग्राम
सौंफ दरदरी	–	25 ग्राम
किरायता	–	20 ग्राम

गर्म मसाला	–	15 ग्राम
पिसी राई	–	50 ग्राम
सरसों का तेल	–	400 ग्राम

विधि :

- ○ आँवलों को उबालकर, दबाकर गुठली निकालें।
- ○ उपरोक्त सभी मसाले आँवले में मिला दें।
- ○ तेल को गर्म करके ठण्डा करें एवं आँवले में मिला दें।

सब्जियों का मिश्रित अचार

सामग्री :

फूल गोभी	–	250 ग्राम
शलजम	–	250 ग्राम
गाजर	–	250 ग्राम
हरी मिर्च	–	250 ग्राम
मटर के दाने	–	250 ग्राम
प्याज	–	200 ग्राम
अदरक	–	100 ग्राम
हल्दी	–	20 ग्राम
नमक	–	130 ग्राम
लाल मिर्च	–	20 ग्राम
गर्म मसाला	–	15 ग्राम
राई	–	75 ग्राम
सौंफ	–	35 ग्राम
इमली	–	75 ग्राम
गुड़	–	150 ग्राम
एसीटिक अम्ल	–	15 ग्राम
सरसों का तेल	–	400 मि. ली.

विधि :

- ○ तैयार कटी गोभी, गाजर, शलजम एवं मटर के दानों को 6 – 7 मिनट तक पानी में उबालकर तुरन्त ठण्डे पानी में रखें तथा करीब 1/2 घण्टे के लिये धूप में सुखा दें।
- ○ इमली तथा गुड़ को एक गिलास पानी में गर्म करके छलनी द्वारा छान लें।

- कटी प्याज को तेल में भूनें तथा प्याज भूनने के बाद इमली व गुड़ के तैयार घोल को तेल के साथ थोड़ी देर तक गर्म करें।
- उबली एवं बिना उबली सब्जियों, कटी अदरक व मिर्च, नमक एवं सभी पिसे मसालों को अचार में मिला दें।
- गैस से उतारकर एसीटिक अम्ल डालें।

सांगरी का अचार

सामग्री :

सांगरी	–	1 किलोग्राम
नमक	–	125 ग्राम
लाल मिर्च	–	25 ग्राम
हल्दी	–	15 ग्राम
अमचूर	–	50 ग्राम
दरदरी दानामेथी	–	25 ग्राम
सरसों का तेल	–	300 ग्राम
साइट्रिक अम्ल	–	1 ग्राम

विधि :

- कच्ची तथा ताजी साँगरीयों के टुकड़े करके गर्म पानी में 5 मिनट के लिये उबालकर 1 घण्टे के लिये धूप में सूखायें। साँगरी में सभी मसाले मिलाकर भरनी में भर दें।
- तेल गर्म करके ठण्डा करें और अचार में डाल कर साइट्रिक अम्ल मिलायें तथा भरनी में भरें।

इस प्रकार घर बैठकर महिलाएँ अचार बनाकर अपनी आय बढ़ा सकती हैं तथा उपरोक्त अचार सस्ते एवं लाभप्रद भी हैं।

टमाटर सॉस

सामग्री :

टमाटर	–	2 किलोग्राम
शक्कर	–	175 ग्राम
नमक	–	20 ग्राम
गर्म मसाला	–	10 ग्राम
लाल मिर्च	–	10 ग्राम
अदरक	–	25 ग्राम
प्याज	–	75 ग्राम

लहसुन	–	5 ग्राम
सोडियम बेजोएट	–	1 ग्राम
एसिटिक अम्ल	–	5 ग्राम

विधि :

टमाटर को स्वच्छ जल से धोकर टुकडे करके कूकर मे डाल दे। प्याज, लहसुन अदरक को कूटकर टमाटर के साथ कूकर मे डाल कर ऑच पर रखे। दो सीटी बजने पर कूकर को ऑच से उतार दे। इन सभी को छलनी से छान ले। छने हुए गूदे को पुन ऑच पर रखे। मिर्च व गर्म मसाले की पोटली बनाकर पकते हुए सॉस मे डाल दे। टमाटर का रस गाढा होने पर उसमे शक्कर व नमक डाल दे। यह पता करने के लिये कि सॉस तैयार हो गया है या नही पकते हुए थोडे से सॉस को निकाल कर प्लेट मे रखे। जब पानी छोडना बन्द हो जाये उस समय इसे ऑच से उतार ले। तत्पश्चात् सोडियम बेजोएट पहले थोडे सॉस मे मिलाकर बाद मे पूरे मे मिला दे। सॉस को कॉच की बोतल मे लकडी के तख्ते पर रखकर भरे। इस तरह सॉस बन कर तैयार हो जायेगा।

टमाटर चटनी

सामग्री :

टमाटर	–	1 किलोग्राम
शक्कर	–	500 ग्राम
नमक	–	20 ग्राम
गर्म मसाला	–	10 ग्राम
लाल मिर्च	–	10 ग्राम
अदरक	–	50 ग्राम
छुआरा	–	100 ग्राम
किसमिस	–	50 ग्राम
एसिटिक अम्ल	–	5 ग्राम

विधि :

टमाटर को स्वच्छ जल से धोकर साफ कर ले तथा भगोले मे इतना जल डाले कि टमाटर उसमे डूब जाये। बाद मे उसे ऑच पर रख दे। टमाटर के छिलके फफकने लगे, उस समय ऑच बन्द कर दे। टमाटरो को बाहर निकाल कर उनके छिलके उतार कर छोटे–छोटे टुकडो मे काट ले। छुआरो को पानी मे भिगोकर रख दे तथा बाद मे टमाटरो के साथ डाल दे।

टमाटरो, अदरक व छुआरो को कढाई मे पकाये तथा तब तक पकाते जाये जब तक कि ये सभी गल न जाये। इसके बाद ऑच बन्द कर दे। तत्पश्चात् कढाई को नीचे उतार दे और उसमे एसिटिक अम्ल मिला दे। इस तरह टमाटर की चटनी बन कर तैयार हो जायेगी।

फलों का परिरक्षण जैम, स्क्वैश, मुरब्बा बनाकर

बेर, अनार, आँवला, नींबू, बेल, कैर व गूंदा आदि शुष्क क्षेत्रों में पाये जाने वाले प्रमुख फल हैं। फलों का परिरक्षण जैम, स्क्वैश, मुरब्बा आदि बनाकर किया जा सकता है (चित्र 29.2)। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में इन फलों से बनने वाले परिरक्षित पदार्थों की विधियों का निर्धारण किया गया है वह इस प्रकार हैं –

बेर का स्क्वैश

सामग्री :

फल रस	–	2 लीटर
जल	–	1.5 लीटर
शक्कर	–	2 किलोग्राम
साइट्रिक अम्ल/नींबू का सत	–	20 ग्राम
पोटेशियम मेटाबाईसल्फाइट	–	4 ग्राम

विधि :

अच्छी किस्म के फलों को जल से भली प्रकार धोकर साफ करलें। बेर के छिलके को हटाकर छोटे–छोटे टुकडो में काट लें। इन टुकडों को 1 लीटर जल के साथ मिलाकर मिक्सी से गूदा तैयार करलें। 3 से 4 घण्टे तक बोतल में भर कर रख दें ताकि उसमें मौजूद कण नीचे बैठ जायें। तत्पश्चात् इसको महीन कपड़े से छान लें।

शक्कर की चासनी बनाने के लिये जल, शक्कर और साइट्रिक अम्ल/नींबू के सत को एक साथ मिलाकर गर्म करें। गर्म करते समय एक उबाल ही देवें। इसके बाद पोटेशियम मैटाबाईसल्फाइट को थोडे से रस या जल में घोलकर तैयार स्क्वैश में मिला लें। स्क्वैश को कीटाणु रहित बोतल में भर कर रखें। स्क्वैश को 1 : 3 के अनुपात से जल में मिलाकर प्रयोग करें।

बेर का जैम

सामग्री :

फल (छिलका व गुठली रहित)	–	1 किलोग्राम
शक्कर	–	1 किलोग्राम
पैक्टीन	–	7 ग्राम
साइट्रिक अम्ल	–	10 ग्राम

विधि :

बेर के फलों से अच्छी गुणवत्ता वाले जैम बनाने की विधि केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में विकसित की गई है। जैम बनाने के लिये पूरे पके हुए व अच्छे फलों को छांट लें। फलों का छिलका हटाने के बाद छोटे–छोटे टुकड़ो में काट लें। इन टुकड़ो में आवश्यकतानुसार जल मिला कर मिक्सी द्वारा गूदा बना लें। गूदे व शक्कर को भगोले में मिलाकर मध्यम आँच पर गर्म कर लें। उबाल आना प्रारम्भ होने पर पैक्टीन ड़ाल दें। पैक्टीन को शुरू में नहीं ड़ालना चाहिये क्योंकि यह कम तापमान पर आसानी से घुलता नहीं है। गर्म करते समय सामग्री को अच्छी तरह हिलाते रहें ताकि यह बर्तन के पेदें में नहीं लगे। जैम बनकर तैयार हो गया है या नहीं, जानने के लिये चम्मच में थोडा सा जैम लेकर जल से भरे गिलास में डालें। जल में जैम गिरते ही घुले नहीं, तो जान लें कि जैम बन कर तैयार हो गया है। इस तरह बने जैम का टी एस एस 68 डिग्री ब्रिक्स होना चाहिये। बने हुए जैम को काँच के बर्तन में भर देना चाहिये। जैम को बहुत दिनों तक रखना हो तो इसके ऊपर मोम की परत लगा देनी चाहिये।

अनार का स्क्वैश

सामग्री :

अनार का रस	–	1 लीटर
शक्कर	–	1 किलो ग्राम
जल	–	1.5 लीटर
साइट्रिक अम्ल	–	10 ग्राम
सोडियम बेंजोएट	–	3.0 ग्राम

विधि :

अनार का स्क्वैश बनाने के लिये अच्छे पके हुए फलों को चुनना चाहिये। फलों को जल से धोकर साफ कर लें। फलों में से दाने निकाल कर रख लें। रस निकालने की मशीन से दानों का रस निकाल लें या बारीक कपड़े में दानों को रखकर रस निकालें। छाने हुए रस को 5 से 6 घण्टे के लिये रख दें ताकि उसमें मौजूद बडे कण नीचे बैठ जायें। इसको पुनः कपडे से छान लेना चाहिये।

शक्कर की चासनी बेर के स्क्वैश में बताई गई विधि से बनालें। इसके बाद इसमें सोडियम बेंजोएट 8 ग्राम प्रति लीटर के हिसाब से मिला लें। सोडियम बेंजोएट को पहले थोडे रस में मिलाकर घोल लें, फिर पूरे में मिलाना चाहिये। स्क्वैश को कीटाणु रहित बोतल में भरकर रखें। स्क्वैश 1 : 3 के अनुपात से जल में मिलाकर शरबत बना लें।

आँवले का मुरब्बा

सामग्री :

फल	–	1 किलोग्राम
शक्कर	–	1 किलोग्राम
नमक	–	20 ग्राम
साइट्रिक अम्ल	–	5 ग्राम

विधि:

फलों को जल से धोकर साफ करलें। इसके बाद फलों में चारों ओर छेद कर दें, जिसे गोदना कहते हैं। इस कार्य के लिये काजरी द्वारा एक छिद्रक (प्रिकर) तैयार किया गया है (चित्र 29.3)। कड़वाहट को दूर करने के लिये फलों को 2 प्रतिशत नमक के घोल में डुबा कर दो दिन तक रखें। इसके पश्चात् अच्छी तरह धोकर साफ करलें। तत्पश्चात् फलों को 8 से 10 मिनट तक गर्म जल में उबाल दें। उबालते समय इस बात का ध्यान रखें कि फल फटने न पायें अन्यथा आँवले की फाँकें अलग हो जायेंगी।

उबले हुए फलों को किसी बर्तन में इस प्रकार रखें कि इसके नीचे एक तह शक्कर की और दूसरी फलों की हो। इस तरह भरते हुए सबसे ऊपर शक्कर की तह दें। इसको 24 घण्टे तक पड़ा रहने दें। दूसरे दिन आँवले के फलों को निकाल दें। शक्कर को उबाल कर गाढ़ी चासनी बना दें। अन्त में चासनी में साइट्रिक अम्ल/नींबू के सत को 5 ग्राम प्रति किलो ग्राम के हिसाब से अच्छी तरह मिला दें। अच्छे परिरक्षण के लिये शक्कर की सांद्रता 66 – 70 प्रतिशत होनी चाहिए।

बेल का स्क्वैश

सामग्री :

रस	–	2.5 लीटर
शक्कर	–	2.5 किलोग्राम
जल	–	3.5 लीटर
साइट्रिक अम्ल	–	2.5 ग्राम
सोडियम बेंजोएट	–	6.8 ग्राम

विधि :

बेल के फलों का स्क्वैश बडा ही स्वादिष्ट होता है तथा गर्मी में शरीर को शीतलता प्रदान करता है। यह औषधि की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। पके हुए फलों को धोकर साफ कर गूदे को निकाल दें। गूदे को मिक्सी में ड़ालकर अच्छी तरह मिला लेते हैं। साथ में पर्याप्त जल की मात्रा भी ड़ालते रहना चाहिये। मोटी छलनी से छान कर बीज व रेशों को निकाल दें तथा बाद में बारीक मलमल के कपडे से छान लें।

चित्र 29.1. धूप में मिर्च सुखाने की पारम्परिक विधि

चित्र 29.2. शुष्क क्षेत्रों में पाये जाने वाले फलों से विकसित जैम, जैली, स्क्वैश

चित्र 29.3. काजरी द्वारा विकसित हस्तचलित आंवला छिद्रक (प्रिकर)

शक्कर की चासनी बनाने के लिए बेर के स्क्वैश में बतलाई गई विधि से बना लें। इसके बाद इसमें सोडियम बेंजोएट मिला दें। कीटाणु विहीन कांच की बोतल में इसको भर लें। स्क्वैश को 1 : 3 के अनुपात में पानी मिलाकर उपयोग में लें।

तरबूज (मतीरे) का स्क्वैश

सामग्री :

तरबूज का रस	–	2 लीटर
शक्कर	–	2 किलोग्राम
जल	–	1.5 लीटर
साइट्रिक अम्ल	–	20 ग्राम
सोडियम बेंजोएट	–	4 ग्राम

विधि :

तरबूज का स्क्वैश बनाने के लिये अच्छे पके हुए फल लें। तरबूज को पतली–पतली फाँकों के रूप में काट लें। चाकू से लाल रंग के गूदे को फाँकों से अलग करलें तथा साथ ही साथ बीजों को भी निकाल दें। मलमल के कपडे में गूदे को ड़ालकर रस निचोड़ कर निकाल दें। मिक्सी में रस ड़ालकर अच्छी तरह मिला लेना चाहिये।

शक्कर, जल व साइट्रिक अम्ल की चासनी बेर की तरह बना लें। सोडियम बेंजोएट भी मिला दें। इस तरह बनाये गये स्क्वैश को जल के साथ 1 : 3 के अनुपात में मिलाकर उपयोग करें।

संतरे का स्क्वैश

सामग्री :

संतरे का रस	–	1 लीटर
जल	–	1.5 लीटर
शक्कर	–	1 किलोग्राम
नींबू का सत	–	7 ग्राम
पोटेशियम मेटाबाईसल्फाइट	–	2.5 ग्राम

विधि :

पूरे पके व ताजे संतरे के छिलके अलग कर लें। ज्यूसर मशीन से या मलमल के कपडे में बांधकर उसे निचोड कर रस निकाल लें। एक लीटर रस के लिये 2 से 2.5 किलो ग्राम संतरे पर्याप्त होगें। शक्कर जल में घोल कर उसे एक उबाल देकर गर्म करलें। ठंडा होने पर नींबू का सत मिला दें। पोटेशियम मेटाबाईसल्फाइट पहले थोड़े घोल में मिलाकर बाद में पूरे में मिला दें। इससे स्क्वैश अधिक

दिन तक खराब नहीं होगा। बाद में बोतल में भरकर रख लें। शरबत बनाने के लिये गिलास में 1 : 3 के अनुपात में जल के साथ मिला दें।

नींबू का स्क्वैश

सामग्री :

नींबू का रस	–	1 लीटर
जल	–	2 लीटर
शक्कर	–	1.5 किलोग्राम
पोटेशियम मेटाबाईसल्फाइट	–	3.5 ग्राम

विधि :

ताजे व अच्छे रसदार नींबू का रस निकाल लें। शक्कर व जल को मिलाकर एक उबाल देकर गर्म कर लें। ठंडा होने पर पोटेशियम मेटाबाईसल्फाइट पहले कम घोल में मिलाकर तत्पश्चात् पूरे घोल में मिला दें। बाद में काँच की साफ बोतल में भर लें। भरते समय बोतल ऊपर थोड़ी खाली रखें।

पपीते का जैम

सामग्री :

पपीते का गूदा	–	3 किलोग्राम
जल	–	800 मिलीलीटर
शक्कर	–	3.4 किलोग्राम
साइट्रिक अम्ल	–	3.5 ग्राम

विधि :

ताजे व बड़े पपीते का छिलका उतार कर गूदा निकाल लें। पपीते के बीज निकालकर गूदे को मिक्सी से या हाथ से मसलकर मुलायम बना लें। इसमें शक्कर डालते हुए गर्म करते रहें। साइट्रिक अम्ल को अन्त में जब जैम तैयार होने वाला हो उस समय डालें। यह जानने के लिये कि जैम बनकर तैयार हो गया है या नहीं, बनाते समय एक चम्मच जैम लेकर पानी में डालें। यदि यह जैम नीचे पेंदे में बैठ जाय तो समझना चाहिये कि जैम बनकर तैयार हो गया है। ठंडा कर वांछित बर्तन में भर लें। बोतल को ऊपर से मलमल के कपड़े से ढ़क देना चाहिये।

30

प्याज भण्डारण की विधियाँ

हरपाल सिंह एवं जबरदान कविया

प्याज ऐसी नकदी फसल है जिसकी हमेशा मांग बनी रहती है। भारत में प्याज की खेती प्रायः सभी राज्यों में की जाती है। प्याज उत्पादन में चीन के बाद भारत का दूसरा स्थान है। हमारा देश विश्व में प्याज का 11 प्रतिशत उत्पादन करता है। देश में प्याज का सर्वाधिक उत्पादन गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा आन्ध्र प्रदेश में होता है। वर्ष 1998 – 99 के आकडों के अनुसार भारत में प्याज का कुल उत्पादन 54.7 करोड़ टन रहा। कुल उत्पादन का 60 – 70 प्रतिशत भाग इन्ही प्रदेशों में पैदा होता है। प्याज के उत्पादन का मुख्य क्षेत्र नासिक (महाराष्ट्र) माना जाता है। प्याज का निर्यात खाड़ी व अन्य यूरोपीयन देशों को किया जाता है। खाड़ी के देशों में चरपरी प्याज ज्यादा पसन्द की जाती है जबकि यूरोपीयन देशों में कम चरपरी प्याज की खपत है। राजस्थान के जयपुर व इसके आसपास के क्षेत्रों में पीले रंग की कम चरपरी प्याज बहुतायत में होती है व इसको यूरोपीयन देशों में बहुत पसन्द किया जाता है। प्याज ऐसा कृषि उत्पाद है जिसे सलाद, सब्जी, मसाले आदि के रूप में तो प्रयोग में लिया ही जाता है दवाई के रूप में भी काम में लेते हैं जैसे गर्मियों में लू (गर्म हवा) से बचने के लिये तथा हैजे आदि के समय प्याज का सेवन लाभकारी रहता है। प्याज को साधारण तापमान पर घरेलू परिस्थितियों में 2–3 सप्ताह तक रखा जा सकता है। हमारे देश के विभिन्न हिस्सों में इसकी कम व मध्यम अवधि के लिए भण्डारण करने की विभिन्न विधियाँ अपनाई जाती हैं। प्याज भण्डारण की विभिन्न तकनीकें इस प्रकार हैं –

सिरकी के नीचे

राजस्थान के जोधपुर जिले के मथानिया क्षेत्र में प्याज भण्डारण की यह लोकप्रिय विधि है। इस विधि द्वारा प्याज दो प्रकार से भण्डारित की जाती है।

लम्बा ढ़ेर (थड़ी) लगाकर : अप्रैल – मई में प्याज की कटाई के उपरान्त भण्डारण के लिये खेत में ऊँचाई वाले स्थान की सफाई कर समतल करने के बाद प्याज के सूखे पत्तों का विछावन बना देते हैं। तत्पश्चात् इसके ऊपर प्याज का ढ़ेर (थड़ी) लगा देते हैं और सिरकी से ढ़क दिया जाता है। ढ़ेर की चौड़ाई 1.5 – 2.0 मी. तथा लम्बाई आवश्यकतानुसार रखते हैं। ढ़ेर की ऊँचाई 1.0 – 1.2 मी. से ज्यादा नहीं रखी जाती। 125 क्विंटल प्याज का भण्डारण करने में लगभग 2000 रू खर्च आता है। हर वर्ष नई सिरकी बनानी पड़ती है तथा भण्डारण में प्याज की छीजत अधिक होती है।

बोरों में भरकर : यह विधि मूलतः उपरोक्त विधि के अनुरूप ही है। इस विधि द्वारा प्याज का भण्डारण बोरों में भरकर किया जाता है। 50 – 55 किलोग्राम वाले बोरों में प्याज को भरकर थड़ी इस प्रकार लगाते

हैं कि भण्डारण के समय उत्पन्न ऊर्जा व नमी हवा द्वारा बाहर निकलती रहे। बोरों के ढ़ेर को सिरकी से ढक दिया जाता है। आवश्यकतानुसार भण्डारण की लम्बाई रखी जाती है लेकिन चौड़ाई 1.5–2.0 मी. से ज्यादा नही रखी जाती। औसतन ऊँचाई 1.0 – 1.2 मी. तक रखते हैं। इस विधि द्वारा 125 क्विंटल प्याज का भण्डारण करने पर लगभग 4500 रू का खर्च आता है लेकिन भण्डारण में प्याज की छीजत उपरोक्त विधि की अपेक्षा थोड़ी कम होती है। तेज हवाएं या अधिक बरसात से भारी नुकसान होने की संभावना रहती है। प्याज व सिरकी के बीच रिक्त स्थान कम होने से धूप का असर भी ज्यादा होता है। सिरकी तथा बोरे हर वर्ष बदलने पड़ते हैं इसलिये भण्डारण का खर्च अधिक आता है।

किराड़ी में भरकर

किराड़ी का नीचे का आकार गोलाकार तथा ऊपर से झोंपीनुमा टोपी से ढका रहता है। किराड़ी के बनाने में खींप (*लेप्टाडेनिया पायरोटैकनिका*) का प्रयोग किया जाता है। खींप से बना यह ढाँचा स्थानीय भाषा में किराड़ी कहलाता है। इसमें ढॉचा खींप का तथा ऊपर की झूँपी खींप/मूजें की बनाते हैं। झूँपी को ढांचे पर इस तरह बनाकर ढ़कते हैं ताकि बरसात का पानी ढांचे से दूर गिरे। झूँपी बीच में से कोण की तरह उठी हुई तथा चारों ओर से गोल व ढ़लावदार बनाते हैं। किराड़ी का ढांचा बिखरे नहीं इसलिये इसे तीन जगह पर बातियों से बांधते हैं। पहली बाती तले से 0.6 मी. ऊपर, दूसरी बाती 1 मी. पर तथा तीसरी बाती ऊपरी भाग पर बांधते हैं। किराड़ी के गोलाकार हिस्से का व्यास 2 मी. तथा ऊँचाई 2 मी. रखते हैं। किराड़ी की कुल ऊँचाई 2.0 – 2.5 मी. तक रखते हैं। इसमें लगभग 8 – 10 क्विंटल प्याज का भण्डारण किया जा सकता है। आवश्यकतानुसार एक से ज्यादा किराड़ियाँ बनायी जा सकती हैं। किराड़ी का ढाँचा बनाते समय प्याज निकालने के लिये तले से थोड़ा ऊपर 0.6 x 0.6 मी. का छोटा निकास (द्वार) रखते हैं जिसे प्याज भरते समय बन्द कर देते हैं। किराड़ी केवल ऊपर से ही भरी जाती है तथा प्याज भरने के बाद झूँपी द्वारा ऊपर से ढ़क देते हैं। भण्डारण की अवधि समाप्त होने पर या फिर आवश्यकतानुसार प्याज निकालने के लिये दिये गये द्वार का प्रयोग करते हैं। किराड़ी का तला कच्चा ही रखते हैं। रेतीली सतह पर 15 – 30 से. मी. खेजड़ी या कपास की सूखी टहनियों का बिछावन बनाकर प्याज भरते हैं। किराड़ी को प्याज से भरकर ढांचे के चारों ओर लगभग 15 से. मी. मिट्टी चढ़ाकर पानी की अच्छी निकासी कर देते हैं ताकि बरसात का पानी किराड़ी/झूँपें के अन्दर न जा पाये अन्यथा प्याज के सड़ने का ड़र रहता है। किराड़ी बनाते समय इस बात का ध्यान रखना जरूरी है कि यह खुली जगह में हो तथा वहाँ पानी इकट्ठा नहीं होता हो। प्याज के सुरक्षित भण्डारण के लिये चारों तरफ से हवा का प्रवाहित होना अति आवश्यक है। किराड़ी का व्यास 2 मी. से ज्यादा रखने पर भण्डारित प्याज खराब हो सकती है इसलिये इसका व्यास नहीं बढ़ाना चाहिये। किराड़ी की विशेषता ही यह है कि कम व्यास होने से हवा प्याज में उत्पन्न गर्मी को आसानी से बाहर निकाल ले जाती है और किराड़ी के अन्दर का तापमान कम हो जाता है जिससे प्याज खराब नहीं होती। दूसरे किराड़ी का

आकार गोलाकार होने से किसी भी दिशा की हवा बहने पर भण्डारित प्याज से उत्पन्न गर्मी को हवा बाहर निकाल ले जाती है। इससे भण्डारित प्याज सुरक्षित रहती है। ढाँचें के ऊपर झूँपी रखी जाती है झूँपी व प्याज के बीच करीब 1 मीटर वायु का रिक्त स्थान रहता है। इससे प्याज भण्डारण में उत्पन्न गर्मी व वाष्पीकरण द्वारा भण्डारित प्याज से निकली नमी प्याज व झूँपी के बीच के रिक्त स्थान में ऊपर की तरफ जमा हो जाती है और धीरे–धीरे बाहर निकल जाती है जिससे प्याज की छीजत कम होती है।

किराड़ी में प्याज भण्डारण की यह विधि नागौर तथा अजमेर जिलों में लोकप्रिय है। किराड़ी की कीमत मूलतः खींप की उपलब्धता पर निर्भर है। दो मीटर गोलार्द्ध तथा 2 मीटर ऊँचे आकार की किराड़ी बनाने में लगभग 350 रू की लागत आती है।

खींप मिश्रित ढाँचे में भरकर

किराड़ी की तरह खींप मिश्रित ढाँचे का नीचे का भाग गोलाकार तथा ऊपर का भाग झोंपीनुमा बना होता है। गोल ढाँचा बाहर की तरफ खेजड़ी/बबूल/कपास की पतली टहनियों को छीदी–छीदी रखकर बनाते हैं तथा अन्दर की तरफ खींप छीदा–छीदा रखते हैं (चित्र 30.1)। किराड़ी की तरह झूँपी खींप या मूंज की बनाकर इस तरह से ढ़कते हैं कि बरसात का पानी ढाँचें से दूर गिरे। इस तरह के खींप मिश्रित ढाँचे में 20 – 25 क्विंटल प्याज का भण्डारण किया जा सकता है। आवश्यकतानुसार छोटा/बड़ा ढाँचा बनाया जा सकता है। आकार छोटा होने पर भण्डारण में प्याज का नुकसान कम होता है।

चित्र 30.1. राजस्थान के नागौर व अजमेर जिले में प्रचलित प्याज भण्डारण का पारम्परिक ढाँचा

ढाँचे को बिखरने से बचाने के लिये 3 बातियों से किराड़ी को बांध देते हैं। प्याज ऊपर से भरकर झूँपी से ढ़क देते हैं तथा प्याज को आवश्यकतानुसार निकालने के लिये बनाये गये द्वार का प्रयोग करते हैं। ढ़ाँचा खुले में बनाते हैं, जिससे हवा का प्रवाह भली–भाँति हो सके। किराड़ी की तरह इसका तल भी कच्चा ही रखा जाता है। ढाँचे के पास से बरसात के पानी का निकास सुनिश्चित करने के लिये ढाँचे के चारों ओर लगभग 15 से. मी. मिट्टी चढ़ा देते हैं। नागौर जिले की डेगाना तहसील में प्याज भण्डारण की यह लोकप्रिय विधि है। इस ढ़ॉचे को एक बार बनाकर करीब 4 – 5 वर्ष तक काम में लिया जा सकता है। लघु उत्पादकों के लिये यह विधि बहुत ही लाभदायक है क्योंकि भण्डारण में प्याज की छीजत कम होने के साथ–साथ भण्डारण की लागत भी कम आती है। एक बार ढाँचा बनाने पर 4 – 5 वर्ष तक काम में लिया जा सकता है।

किराड़ी तथा झूँपे की बनावट गोल व लगभग एक जैसी होती है। आवश्यकतानुसार आकार छोटा या बड़ा कर सकते हैं। किसान छोटी किराड़ी या छोटी–छोटी कई झोंपियॉ बनाकर प्याज संग्रह करते हैं क्योंकि इससे प्याज कम खराब होती है।

कवेलू की ओसरी (खपरेल की छत के ढाँचे) के नीचे

राजस्थान की तरह महाराष्ट्र में भी पूणे तथा नासिक जिले के किसान प्याज भण्डारण के लिये पारम्परिक ढाँचे बनाते हैं (चित्र 30.2)। सभी ढाँचों में छत बनाने में कवेलू (खपरेल) का उपयोग किया जाता है। ढाँचे उत्पादन तथा आर्थिक सम्पन्नता के आधार पर बनाते हैं। कवेलू की ओसरी के नीचे वाले भाग को खुराड़े (लोहे) की जाली, कमची (लकड़ी) की ताटी और भराटे (बांस) की ताटी से बनाया जाता है।

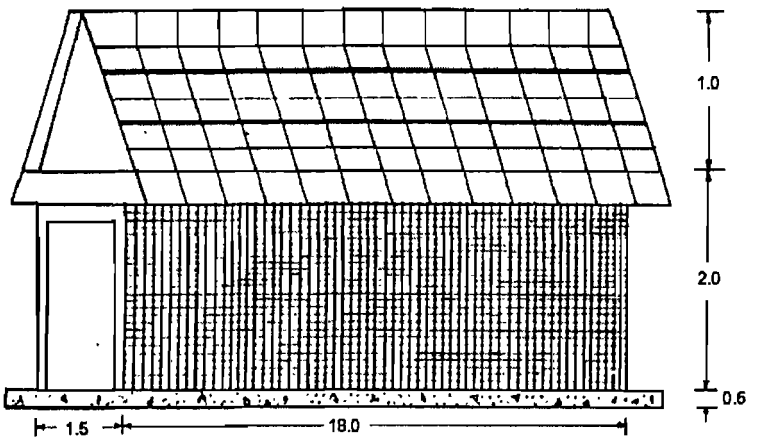

सभी नाप मीटर मे

चित्र 30.2. महाराष्ट्र के नासिक व पूणे क्षेत्र में प्रचलित प्याज भण्डारण का पारम्परिक तरीका

बनावट : पूणे तथा नासिक जिलों में प्याज भण्डारण के पारम्परिक ढॉचे बनावट मे सैलून की तरह के होते हैं। ढॉचों की लम्बाई व आकार एक जैसा होता है और स्थानीय सामग्री का उपयोग किया जाता है लेकिन छत कवेलू (खपरेल) की बनायी जाती है। विभिन्न जगहों के पारम्परिक ढॉचे देखने पर निम्न बाते सामने आई –

- ढॉचा खेत में उस जगह बनाते है जहॉ प्याज ढोने के लिये वाहन आसानी से पहुॅच जाये,
- ढॉचा प्रायः जमीन से 0.6 मी. उठे हुए चबूतरे पर बनाते हैं ताकि बरसात का पानी ढॉचे में प्रवेश न कर सके,
- ढॉचा लगभग 1.5 मी. चौडा तथा 2.0 मी. ऊॅचा रखते हैं। कवेलू की छत लोहे/लकडी/बांस की जाली से बनाये गये ढॉचे के ऊपर 1 मी. ऊॅची व दोनों तरफ से ढाल रखते हुए बनाते हैं, व
- गर्मी में लू तथा बरसात में पानी की बौछार से प्याज को बचाने के लिये उस दिशा में ढॉचे पर टाट या बांस की चिक लगाते हैं।

लागत : स्थानीय सामग्री की उपलब्धता के अनुसार पक्के ढॉचे बनाते है। पक्का ढॉचा बनाने में कीमत तो अधिक आती है लेकिन उसका उपयोग 15 – 20 वर्ष तक किया जा सकता है। लकडी की जाली तथा बांस की लाठियॉ लगाकर ढॉचा बनाने की अपेक्षा लोहे की जाली वाले ढॉचों पर खर्च अधिक आता है। 600 क्विंटल प्याज भण्डारण के लिये 18 मी. लम्बा, 1.5 मी. चौडा तथा 2 मी. ऊॅचा ढॉचा बनाना जरूरी होता है।

ढॉचा 1.5 मी. चौड़ा व 2 मी. ऊॅचा होने से भण्डारित प्याज में उत्पन्न गर्मी व नमी हवा द्वारा बाहर निकल जाती है जिससे प्याज की छीजत बहुत कम होती है। प्याज और ढलावदार छत के बीच का रिक्त स्थान 1 मीटर रहने से वहॉ इकट्ठी गर्म व नमीदार हवा आसानी से बाहर निकल जाती है इससे प्याज सुरक्षित रहती है। ढॉचा पक्का बनाने पर लागत अधिक आती है लेकिन ढॉचे की उम्र 15–20 वर्ष होने से सही मायने में भण्डारण का खर्च प्रति क्विंटल बहुत ही कम आता है। नासिक व पूणे क्षेत्र में प्रयोग में लिये जा रहे ये ढॉचे बडे किसानों के लिये बहुत ही उपयोगी हैं।

सावधानियाँ

- प्याज की किस्म का चयन करते समय छोटे आकार वाली प्याज की किस्म लगायें। क्योंकि अधिक मोटी व दलदार प्याज जल्दी खराब हो जाती है।

- प्याज की खेती करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखें कि खेत में पानी का ठहराव न हो अन्यथा भण्डारण में प्याज के खराब होने का डर रहेगा। प्याज में कम पानी दें तथा आवश्यकतानुसार थोड़े–थोडे समय बाद सिचाई करते रहें।

- प्याज की कटाई होने पर छाया में सुखाएँ।

- भण्डारण करते समय ध्यान रखें कि प्याज के साथ मिट्टी कम से कम हो। इसके लिये बडी जाली के लम्बे छलनों का उपयोग करते हैं। छलने का एक किनारा ऊँचा तथा दूसरा नीचा रखते हैं ताकि प्याज स्वतः ही ढ़लान में लुढ़क जाये और मिट्टी जाली द्वारा नीचे गिर जाये।

- भण्डारण करने के कुछ दिन बाद प्याज से भरे हुए झूँपे में हाथ डालकर देखें। अगर पसीना लगता है तो प्याज को जल्दी बेच देना चाहिये अन्यथा प्याज खराब हो जायेगी।

- मथानिया तथा पुष्कर क्षेत्र में किसान प्याज की खेती करते समय व कटाई के बाद भण्डारण के समय ऊपर दर्शायी गयी कई बातों का विशेष ध्यान रखते है। जिससे 90 प्रतिशत तक प्याज का भण्डारण सुरक्षित रहता है।

प्याज भण्डारण की पारम्परिक तकनीकों की तुलना

प्याज भण्डारण की विभिन्न विधियों के अवलोकन करने पर पता लगता है कि कवेलू की ओसरी (कवेलू की छत के ढॉचे) ज्यादा लाभप्रद हैं। इस विधि द्वारा प्याज का भण्डारण करने पर प्रति क्विंटल कम खर्च के साथ – साथ छीजत भी कम होती है। ये ढॉचे प्रायः बडे किसानों के लिये बहुत ही उपयोगी हैं जबकि किराड़ी व खींप मिश्रित ढॉचे छोटे उत्पादकों के लिये उपयोगी हैं। प्याज भण्डारण की पारम्परिक तकनीक चाहे वह राजस्थान के किसानों द्वारा अपनायी जा रही हो या महाराष्ट्र के किसानों द्वारा उपयोग में ली जा रही हो ढॉचे की चौड़ाई एक जैसी 1.5–2.0 मी. तक ही रखी गयी है। ढॉचे की चौडाई इससे अधिक रखने पर भण्डारित प्याज सडने लगती है। ढाँचे की चौड़ाई कम रखने पर भण्डारित प्याज से गर्म व नमी युक्त हवा आसानी से बाहर निकल जाती है। इसके अलावा भण्डारित प्याज व ढॉचे की ऊपरी छत के बीच का रिक्त स्थान लगभग 1 मी. तक रहता है। भण्डारित प्याज से उत्पन्न गर्म व नमीदार हवा इस रिक्त स्थान में भर जाती है व धीरे–धीरे बाहर निकल जाती है। इससे भण्डारित प्याज 5 – 6 माह तक सुरक्षित रहती है।

31 अनाज व दलहन के भण्डारण में नाशीकीटों से बचाव

महेन्द्र प्रताप सिंह

अनाज तथा दलहनी फसलों में खेत–खलिहानों के अलावा भण्डारण के समय भी नाशीकीटों का प्रकोप जारी रहता है। चूंकि ये खाद्य पदार्थ काफी समय के लिए सुरक्षित रखने होते हैं। अतः भण्डारण के समय इनको कीट बीमारियों से संरक्षित रखना आवश्यक है। स्वच्छ व नमी रहित वातावरण में सूखे हुए अनाज को काफी समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इस अध्याय में भण्डारण के समय अनाज को हानि पहुँचाने वाले कीटों का संक्षिप्त वर्णन दिया जा रहा है।

भण्डारण के दौरान हानि पहुँचाने वाले कारक

- नाशीकीट : कीड़े व मकड़ियाँ
- सूक्ष्म जीव : बीमारियों के कीटाणु
- मूषक वर्गी जीव : चूहे, छछूंदर व गिलहरियाँ
- अनाज की जैविक क्रियाओं जनित परिवर्तन

संक्रमण के स्रोत

- खेत में खड़ी फसल पर
- खलिहान में फसल कटाई के पश्चात्
- भण्डारगृह में
- पुराना संक्रमण
- संक्रमित बोरियाँ
- भण्डारगृह में दरारों से
- पहले से पड़े अनाज से
- परिवहन के दौरान

भण्डारित अनाज एवं दालों के प्रमुख कीट एवं उनकी रोकथाम के उपाय

गेहूँ का खपरा /खपड़ा/ पई/ बांवरी (ट्रोगोडरमा ग्रेनेरियम)

पोषक अन्न : गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का आदि।

क्षति एवं महत्व : यह कीट अनाज के ढ़ेर में ऊपर ही करीब 30 से. मी. की गहराई तक क्षति पहुँचाता है। यह ढ़ेर के अन्दर ज्यादा गहराई तक घुसकर नहीं खा सकता है क्योंकि इसके विकास के लिये

आक्सीजन की अधिक आवश्यकता पड़ती है। जिस समय इसका प्रकोप अधिक हो जाता है तथा संख्या बढ़ जाती है तो भण्डारगृह में कीड़े चलते हुए नजर आते हैं तथा दरवाजों व खिड़कियों के बाहर निकलते हुए भी दिखलाई पड़ते हैं।

इस कीट की सूंडी (ग्रब) ही ज्यादा नुकसान पहुँचाती है प्रौढ़ कीट नहीं के बराबर ही नुकसान करते हैं। इस कीट के द्वारा क्षति साधारणतः वर्ष भर चलती है परन्तु अधिक क्षति जुलाई से अक्टूबर के महीनों में होती है। यह दानों के भ्रूण वाले भागों को अधिक पसन्द करते हैं तथा दानों के अन्दर प्रविष्ट नहीं करते इसलिये दाना खोखला नहीं होता। कुछ भाग कटा हुआ दिखाई पड़ता है। इस प्रकार दानों के भार में कोई विशेष कमी नहीं होती। भ्रूण वाला भाग खा लेने से बीज के उगने की क्षमता नष्ट हो जाती है तथा उसकी पौष्टिकता वाले गुणों में भी कमी आ जाती है। इस प्रकार से कीट द्वारा ग्रसित दानों की गुणवत्ता, मात्रा की अपेक्षा अधिक प्रभावित होती है।

लाल सुरही / ईली/ थूथन विहीन सूंडी (राहिजोप्रथा डोमीनिका)

पोषक अन्न : गेहूँ, चावल, ज्वार, मक्का, चना, आटा आदि।

क्षति एवं महत्व : इस कीट की सूंडी (ग्रब) तथा प्रौढ़ दोनों ही नुकसान पहुँचाते हैं। इसके काटने तथा चबाने वाले मुखांग होते हैं परन्तु प्रौढ़, सूंडी की अपेक्षा अधिक हानिकारक होता है। प्रौढ़ दानों मे टेढ़े–मेढ़े छेद करके उन्हें खाकर आटे में बदल देते हैं, जिससे केवल लूसी और आटा शेष बचता है। ये खाते कम तथा नुकसान अधिक पहुँचाते हैं। सूंडी दानों के स्टार्च को खाकर केवल छिलका छोड़ती है। सूंडी प्रारम्भ में तो दाने के अन्दर घुस कर खाती है परन्तु बड़ी हो जाने पर जब ये टेढ़ी–मेढ़ी हो जाती हैं तो दाने के अन्दर प्रवेश नहीं कर पाती। अतः प्रौढ़ द्वारा छोड़े गये बेकार टुकड़ों अथवा आटे को खाकर जीवन निर्वाह करती है। प्रौढ़ कीट कभी–कभी खेतों से ही आक्रमण प्रारम्भ कर देते हैं, जिससे ग्रसित दाने भण्डारगृहों में आ जाते हैं। जहाँ पर उचित वातावरण मिल जाने से इनकी संख्या काफी बढ़ जाती है तथा ये अत्यधिक नुकसान पहुँचाते हैं। इस कीट का अधिक प्रकोप मई से अगस्त तक रहता है।

सुरसाली/लाल सुरी (ट्राईबोलियम कास्टेनियम)

पोषक अन्न : आटा, मैदा, सूजी, मूंगफली, कपास तथा सेम के बीज एवं अन्य संग्रहित अनाज तथा मेवे आदि।

क्षति एवं महत्व : यह कीट पूर्ण दानों को नुकसान नहीं पहुँचाता व केवल कटे दानों या अन्य कीटों के द्वारा ग्रसित दानों को ही हानि पहुँचाता है। अतः गोदामों में प्रायः खपरा, बीटिल तथा घुन आदि के साथ पाया जाता है। इन कीटों के द्वारा अधिकतर हानि आटा, मैदा, सूजी आदि पदार्थों को होती है। इनकी संख्या अधिक हो जाने के कारण आटा पीला पड़ जाता है तथा उसमें कवक विकसित हो जाती है एवं एक विशेष प्रकार की बदबू आने लगती है। आटे में जाले बन जाते हैं तथा कीट का मल भी मिल

जाता है। इस प्रकार यह आटा मनुष्यों के खाने योग्य नहीं रह जाता। कभी–कभी ज्वार के स्वस्थ दाने इसके द्वारा ग्रसित हो जाते हैं। सूंडी तथा प्रौढ़ दोनों हानि पहुँचाते हैं। कीट प्रायः पूरे वर्ष सक्रिय रहते हैं परन्तु सर्दियों में क्रियाशीलता में कुछ कमी आ जाती है। इसके द्वारा सर्वाधिक क्षति बरसात के दिनों में होती है।

दालों का घुन/डोरा/चिरइया घुन

पोषक अन्न : अरहर, मूंग, उड़द, मटर, चना, मसूर, मोठ, लोबिया तथा सेम आदि।

क्षति एंव महत्व : इस कीट का प्रकोप मुख्य रूप से दालों में खेत तथा भण्डारगृहों दोनों जगह ही होता है। यह भण्डारगृहों में ज्यादा नुकसान पहुँचाते हैं परन्तु अधिक क्षति सूंडी के द्वारा ही होती है। खेतों में इस कीट का प्रकोप पौधों में हरी फलियाँ लगते ही शुरू हो जाता है। मादा हरी फलियों पर अण्डे देती है। अण्डों से निकलने के बाद ग्रब (सूंडी) फली में छेद करके अन्दर घुस जाती है तथा दानों को खाती है। दाने के अन्दर ग्रब जिस जगह से घुसता है वह बन्द हो जाता है तथा दाना बाहर से स्वस्थ दिखलाई पड़ता है। इस प्रकार ग्रसित दाने के अन्दर ही कीट भण्डारगृहों में पहुँच जाता है तथा प्रौढ़ बनकर निकलता है व प्रजनन कार्य शुरू कर देता है।

भण्डारगृहों में कीट दरारों व बोरों आदि में छिपा रहता है। जिस समय दालें भण्डारगृहों में रखी जाती हैं मादा उनकी सतह पर चिपक कर अण्डे देती है। ये अण्डे दानों की सतह पर चिपके हुए आसानी से देखे जा सकते हैं। अण्डे से निकलने के बाद ग्रब दानों के अन्दर प्रविष्ट कर जाते हैं तथा अन्दर ही अन्दर खाकर पूरा दाना खोखला कर देते हैं। बड़े दानों में कई ग्रब रहते हैं। ये ग्रब दानों के अन्दर ही कृमिकोष अवस्था में बदलते हैं तथा बाद में प्रौढ़ एक गोल छेद काट कर दानों से बाहर निकलते हैं। इसके द्वारा ग्रसित दाने न तो खाने योग्य रहते हैं और न ही बुवाई के। वैसे तो यह कीट वर्ष भर सक्रिय रहता है परन्तु अधिक क्षति जुलाई से सितम्बर महीनों में करता है।

चावल की घुन/ सूंड वाली सुरसरी/किल्ला/धनेडा (राईस विविल)

पोषक अन्न : चावल, गेहूँ, धान, मक्का, ज्वार तथा जौ आदि।

क्षति एवं महत्व : इसके प्रौढ़ तथा ग्रब (सूंडी) दोनों ही नुकसान पहुँचाते हैं। दोनों के काटने एवं चबाने वाले मुखांग होते हैं। प्रौढ़ के मुकाबले में ग्रब अधिक नुकसान करते हैं। मादा कीट दानों में एक छोटा सा छिद्र बनाकर अण्डा देती है। जिसके फूटने के बाद ग्रब उसी के अन्दर प्रवेश कर जाता है तथा अन्दर के समस्त भाग को खा लेता है। इस प्रकार दाने खोखले हो जाते हैं तथा वे खाने और बोने योग्य नहीं रह जाते। उनका वजन भी बिल्कुल हल्का हो जाता है किसी–किसी दाने का तो केवल छिलका ही शेष रहता है। जिस समय इसका आक्रमण प्रारम्भ होता है तो बाहर से दाना स्वस्थ दिखाई पड़ता है, क्योंकि जिस छिद्र के द्वारा ग्रब अन्दर घुसता है वह बहुत छोटा होता है एवं बाहर से दिखाई नहीं पड़ता।

साधारणतः यह कीट वर्ष भर सक्रिय रहता है परन्तु इससे सबसे अधिक क्षति जुलाई से नवम्बर तक होती है। अधिक जाड़े तथा गर्मी में इसकी क्रियाशीलता कमजोर पड़ जाती है। इसकी संख्या बढ़ने के लिये नमी का होना अति आवश्यक है। यदि भण्डारित अनाज में नमी अधिक है तो खाये हुए अनाजों में कवक का भी आक्रमण हो जाता है जिससे अनाज में काले–काले पिण्ड बन जाते हैं। ऐसे अनाज से दुर्गन्ध आने लगती है तथा इसे पशु भी नहीं खाते।

गेहूँ का शलभ/अन्न व आटे की सूंडी/सुरेरी (ग्रेन एंड फ्लोर कैटर पिलर)

पोषक अन्न – गेहूँ, मक्का, चावल, जौ, ज्वार, आटा तथा सूजी आदि ।

क्षति एवं महत्व – इस कीट की केवल सूंडी ही नुकसान पहुँचाती है। जिसके काटने तथा चबाने वाले मुखांग होते हैं। प्रौढ़ से कोई हानि नहीं होती। यह केवल संतति बढ़ाने में सहायता करता है। मादा कीट गोदामों से उड़कर खेतों में पके हुए अनाजों पर भी कभी–कभी अण्डा दे देती है। जिसकी वजह से इसका आक्रमण खेत से ही शुरू हो जाता है। अण्डे से निकलने के बाद सूंडी छोटा छेद करके दानों के अन्दर घुस जाती है जो कि साधारण नंगी आखों से दिखाई नहीं पड़ता। इस प्रकार पहले से ही ग्रसित दाने गोदामों में आ जाते हैं।

यह कीट भण्डारों तथा बोरों और गोदामों से भरे हुए अनाज की ऊपरी सतह पर अधिक हानि पहुँचाता है। साधारणतया एक दाने के अन्दर एक ही सूंडी मिलती है। यह अन्दर ही अन्दर दाने को खाकर खोखला कर देती है और केवल छिलका शेष रह जाता है। आमतौर पर इसके प्रकोप को तब तक नहीं पहचाना जा सकता जब तक कि प्रौढ़ कीट उड़ते हुए दिखाई नहीं पड़ते हैं। खाये हुए खोखले दाने से जब प्रौढ़ कीट निकलता है तो एक बड़ा गोलाकार छेद बन जाता है जो कि टोपी की तरह होता है।

इसका प्रकोप प्रायः जब तक भण्डारों में खाद्य–सामग्री रहती है तब तक होता है। जाड़े व गर्मियों में आक्रमण कम हो जाता है तथा अत्यधिक क्षति जुलाई से अक्टूबर तक होती है। सूजी, मैदा तथा आटा इसके आक्रमण से सड़ जाते हैं और उनमें बदबू आने लगती है।

गोदामों के हानिकारक कीटों की रोकथाम व नियन्त्रण के उपाय

गोदामों की सफाई :

- जहाँ तक संभव हो गोदाम पक्का हो तथा उसकी दीवारें नमी रोधी हों और स्वच्छ वायु जाने के लिये खिड़कियाँ हों परन्तु खिड़कियाँ ऐसी हों कि उन्हें बाहर से बन्द एवं खोला जा सके ताकि भ्रमण में कोई परेशानी न हो।

- गोदामों की सारी दरारें, गड्ढ़े तथा छेद आदि सीमेन्ट से भर देने चाहियें ताकि कीट उसमें शरण न ले सके।

- पुराने गोदामों की सफाई करके ही उसमें अनाज रखा जाय। कूड़ाकरकट, भूसा आदि साफ करके बाहर जला देना चाहिये।

- यदि गोदाम के फर्श, छत अथवा दीवारों पर कीट के रहने की संभावना हो तो उसे अनाज रखने से पहले निम्नलिखित दवाओं में से किसी एक के द्वारा उपचारित कर लेना चाहिये–

  - एल्यूमिनियम फौस्फाइड की 7 गोलियाँ (21 ग्राम) प्रति 81 घन मीटर स्थान की दर से प्रयोग करना चाहिये।

  - 0.3 प्रतिशत मैलाथियन का घोल बनाकर गोदाम के अन्दर छिड़कना चाहिये।

बोरों की सफाई :

- जहाँ तक संभव हो नये बोरे प्रयोग में लाने चाहियें।

- एक प्रतिशत मैलाथियन के घोल में बोरों को 10 मिनट तक डुबोकर सुखाने पर प्रयोग करना चाहिये।

- बोरों को उलटकर गर्मियों की तेज धूप में कम से कम 6 घण्टे तक सुखाने पर सभी कीट मर जाते हैं।

- बोरों को 15 मिनट तक उबलते पानी में रखने के पश्चात् सभी कीट मर जाते हैं।

अनाज की सफाई तथा सावधानियाँ :

- अनाज को खलिहान से लाकर कड़ी धूप में अच्छी प्रकार सुखा लें जिससे उसमें नमी 8–10 प्रतिशत से ज्यादा न रह पाये। इस नमी पर कीटों का प्रकोप नहीं होता।

- भण्डारण से पहले अनाज को अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिये तथा जहाँ तक संभव हो एक गोदाम में एक ही प्रकार का अनाज भण्डारित किया जाये।

- यदि अनाज को बोरियों में भरकर रखना है तो नीचे पर्याप्त मात्रा में भूसे की तह बिछा देनी चाहिये तथा दीवारों से 50 से. मी. की दूरी पर बोरे रखने चाहिये।

- यदि अनाज में पहले ही हानिकारक कीटों का आक्रमण हो गया है तो उसे रखने से पहले ही उपचारित कर लेना चाहिये।

- अनाज को यदि 100:1 के अनुपात में नीम सीड़ करनल पाउडर के साथ मिलाकर रखें तो कीट का प्रकोप नहीं होता।

उपचार :

- ईडीसीटी आधा कि. ग्रा. प्रति मैट्रिक टन अनाज का उपयोग करें।
- ईडीबी 3 मि. ली. प्रति क्विंटल अनाज व एल्युमिनियम फॉस्फाइड 21 ग्राम प्रति 81 घन मीटर की दर से प्रयोग करना चाहिए।

32

बकरी के दूध से उत्पाद बनाने की विधियाँ

मोहम्मद शरफुद्दीन खान

पिछले कुछ वर्षों में विकसित देशों में बकरी के दूध पर खोज से ज्ञात हुआ है कि बकरी का दूध पोषकता एवं औषधीय मान के लिहाज से अन्य पशुओं के दूध की तुलना में ज्यादा लाभकारी है। कई वैज्ञानिकों द्वारा किये गये अनुसंधान कार्यों से पता चला है कि दुग्ध पदार्थ जैस पनीर, पनीर का व्हे, पेय, खोया, बर्फी, छैना और छैना आधारित मिठाइयाँ (सन्देश), दही, योगर्ट, चीज जैसे मोजरेला और चैडर चीज, घी और बकरी के दूध का सूखा पाउडर गाय या भैंस के दूध में एक निश्चित अनुपात में मिलाकर बनाए जा सकते हैं।

बकरी के दूध का पनीर

पनीर, जो कि भारतीय चीज के रूप में मशहूर है, को अम्ल एवं ताप की इकट्ठी क्रिया से बनाया जाता है। पनीर का प्रयोग विभिन्न प्रकार के शाकाहारी व्यंजनों, स्नैक्स एवं पकोड़ा बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है। पनीर में प्रोटीन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है इसलिए शाकाहारियों के लिए यह माँस का विकल्प है। बकरी के दूध का पनीर उन मरीजों के लिए सर्वोत्तम है जो गाय के दूध के प्रोटीन के प्रति संवेदक होते हैं। बकरी के दूध को 90 डिग्री सैन्टीग्रेड पर गर्म करके साइट्रिक अम्ल से फाडें तो अच्छी गुणवत्ता का पनीर बनाया जा सकता है। बकरी के दूध से पनीर बनाने के लिए निम्नलिखित प्रवाह चार्ट का प्रयोग करें –

बकरी का दूध

↓

मलमल के कपडे से छानना

↓

90 डिग्री सेन्टीग्रेड तक गर्म करना

↓

0.15 प्रतिशत की दर से दानेदार साइट्रिक अम्ल मिलाना

↓

दूध को फाड़ना

↓

व्हे को मलमल के कपड़े से अलग करना

पनीर कर्ड को 2–3 मिनट के लिए ठण्ड़े पानी में डुबोना

↓

पनीर कर्ड को 30 मिनट के लिए दबा कर रखना

↓

90 मिनट के लिए फ्रिज में रखना

↓

ताजा पनीर

बकरी के स्वच्छ, ताजे दूध को मलमल के कपड़े से छानें। दूध को धीरे–धीरे 89–90 डिग्री सेन्टीग्रेड तक हिलाते हुए गर्म करें। उसके बाद साइट्रिक अम्ल (दानेदार) 0.15 प्रतिशत की दर से मिलायें तथा दूध को हिलाते रहें। जैसे ही हरे पीले रंग का व्हे दिखाई देने लगे, पनीर को मलमल कपड़े से छान लें। उसके बाद पनीर को ठण्डे पानी में दो से तीन मिनट तक डुबो कर रखें। तत्पश्चात् पनीर कर्ड को कपड़े में बाँध लें तथा उसके ऊपर लकड़ी या पत्थर रख दें ताकि बचा हुआ व्हे भी निकल जाए तथा पनीर के टुकड़े आपस में अच्छी तरह जुड जाएँ। उसके बाद पनीर को कपड़े में से निकाल लें तथा इसे 90 मिनट के लिए फ्रिज में रखें ताकि पनीर अच्छी तरह सैट हो जाए। बकरी के दूध से उत्पादित पनीर (चित्र 32.1) का रासायनिक संघटन इस प्रकार है (तालिका 32.1)।

तालिका 32.1. बकरी के दूध से निर्मित पनीर का रासायनिक संघटन

संघटक	परिमाप (प्रतिशत में)
उत्पादन	14.59 ± 0.574
नमी	48.16 ± 0.438
कुल ठोस	51.84 ± 0.438
वसा	25.34 ± 0.436
प्रोटीन	21.45 ± 0.623
राख	1.83 ± 0.047
पी.एच.	5.55 ± 0.034

बकरी के दूध से बनाए गए पनीर में नमी 48.16 प्रतिशत तथा कुल ठोस 51.84 प्रतिशत है। प्रोटीन व वसा क्रमशः 21.45 प्रतिशत तथा 25.34 प्रतिशत हैं। पनीर में 1.83 प्रतिशत राख होती है व उत्पादन 14.59 प्रतिशत है।

बकरी के दूध का दही

समूचे विश्व में किण्वित दुग्ध पदार्थ अपने स्वाद, पोषण मान एवं जैविकीय गुणों के लिए प्रसिद्ध हैं। भारत में तो दही, लस्सी इत्यादि किण्वित दुग्ध पदार्थो का प्रयोग प्राचीन काल से ही प्रचलन में रहा हैं। कुछ लोग जो दूध का उपयोग नहीं कर सकते उन के लिए दही बहुत ही लाभदायक है क्योंकि दही में लैक्टोज बहुत कम मात्रा में उपस्थित होता है। बकरी के दूध से निर्मित दही गाय एवं भैंस के दूध से बनी दही की अपेक्षा अधिक पाचक होती है। निम्नलिखित विधि द्वारा बकरी के दूध से दही बनाई जाती है –

बकरी के शुद्ध, ताजे एवं छने हुए दूध को 15 मिनट तक लगातार हिलाते हुए अच्छी तरह उबालें। उसके बाद उबले हुए दूध को 40 डिग्री सेन्टीग्रेड तक ठण्ड़ा कर लें। तत्पश्चात् उसमें 1.25 प्रतिशत की दर से जामन मिलाएं। अब दूध को पांच घण्टे तक 40 डिग्री सेन्टीग्रेड निश्चित तापमान पर रखें, किण्वित दुग्ध पदार्थ दही अब तैयार है। इसके बाद इसे फ्रिज में भण्डारण के लिए रखें।

दही बनाने का प्रवाह चित्र :

स्वच्छ, ताजा बकरी का दूध

↓

मलमल कपड़े से छानना

↓

15 मिनट के लिए उबालना

↓

40 डिग्री सेन्टीग्रेड़ तक ठण्ड़ा करना

↓

1.25 प्रतिशत की दर से जामन मिलाना

↓

5 घण्टे के लिए 40 डिग्री सेन्टीग्रेड ताप पर रखना

↓

ताजा दही

बकरी के दूध से बनाई गई दही में कुल ठोस व पानी क्रमशः 18.30 प्रतिशत तथा 81.70 प्रतिशत हैं (तालिका 32.2) जो कि अन्तर्राष्ट्रीय डेयरी फैडरेशन द्वारा निर्धारित मानकों के करीब है। दही में वसा 6.66 प्रतिशत, अम्लता 1.14 प्रतिशत तथा प्रोटीन 5.04 प्रतिशत है।

प्रयोग बताते हैं कि बकरी के दूध की दही में अम्लता तेजी से बढ़ती हैं और यह गाय के दूध से बने दही की अपेक्षा थोड़ा नरम बनती है। बकरी के दूध से निर्मित दही से विभिन्न प्रकार के सुगन्धित पेय पदार्थ भी बनाये जा सकते हैं (चित्र 32.2)।

तालिका 32.2. बकरी के दूध से निर्मित दही का रासायनिक संघटन

संघटक	परिमाप (प्रतिशत में)
पानी	81.70 ± 0.951
कुल ठोस	18.30 ± 0.951
वसा	6.66 ± 0.353
प्रोटीन	5.04 ± 0.422
अम्लता	1.14 ± 0.044
पी.एच.	4.32 ± 0.035
वसा रहित ठोस	11.64 ± 0.691

बकरी के दूध का चीज

चीज एक महत्वपूर्ण दुग्ध पदार्थ है, जो खाने में स्वादिष्ट, पौष्टिक एवं सुपाच्य है। इसके उत्पादन में मुख्यतया दुग्ध केसिन व वसा को संरक्षित किया जाता है जो आवश्यक अमीनों अम्ल, वसा व वसा में घुलनशील विटामिनों का मुख्य स्रोत है। इसके अलावा इसमें आवश्यक खनिज भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

बकरी के दूध से बना चीज स्वास्थ्यवर्धक भोज्य पदार्थ खाने वालों में प्रसिद्धि पा रहा है। बकरी व भैंस के दूध को 1:1 अनुपात में मिलाकर मोजरेला चीज़ बनाया जा सकता है। इस चीज को ज्ञानेन्द्रिय परीक्षण में भी अच्छा पाया गया।

चीज बनाने की विधिः

बकरी का दूध (स्वच्छ, ताजा)

↓

छानना

↓

पाश्चुरिकृत करना

↓

ठण्ड़ा करना

↓

कैल्शियम क्लोराइड़ मिलाना

↓

अम्लीयकरण करना

↓

गरम करना

↓

रेनेट मिलाना

↓

स्कन्दन के लिए रखना

↓

स्कन्दित ठोस को काटना

↓

कटे ठोस को पकाना (38–40 डिग्री सेन्टीग्रेड)

↓

व्हे को अलग करना

↓

चीज कर्ड को 83–84 डिग्री तापमान वाले पानी में रखना (एक मिनट के लिए)

↓

गर्म पानी में गूंथना, खींचना व गोल आकार देना

↓

20 प्रतिशत नमक के घोल में 3 घण्टे के लिए रखना

↓

ताजा चीज

↓

भण्डारण

बकरी के स्वच्छ, ताजे एवं छने हुए दूध को एच.टी.एस.टी. विधि द्वारा पाश्चुरिकृत किया जाता है। उसके बाद दूध के तापमान को 35 डिग्री सेन्टीग्रेड करके उसमें 2 मिलीलीटर कैल्शियम क्लोराइड (10 प्रतिशत) प्रति लीटर की दर से मिलाया जाता है। तत्पश्चात् दूध को 8–10 डिग्री सेन्टीग्रेड तक ठण्ड़ा किया जाता है। इसके बाद दूध में 50 प्रतिशत तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल तब तक मिलाया जाता है जब तक कि दूध का पी.एच. 5.4 न हो जाए। इसके बाद दूध को 30 डिग्री सेन्टीग्रेड तक गर्म किया जाता है व इसमें 10 मिलीग्राम प्रति लीटर की दर से रेनेट मिलाया जाता है। अब दूध को स्कन्दन के लिए 10–15 मिनट तक बिना हिलाए रखा जाता है। स्कन्दित ठोस को चाकू से 1 सेंटीमीटर आकार के टुकड़ो में काट लिया जाता है तथा दस मिनट तक बिना हिलाए रखा जाता है, इसके बाद स्कन्दित ठोस को 38–40 डिग्री सेन्टीग्रेड तक नियंत्रित तापमान वाले पानी में रखकर पकाया जाता है। पके चीज एवं व्हे को अलग कर लिया जाता है। पके चीज को 83–84 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान वाले पानी में एक मिनट के लिए डुबो कर रखा जाता है। उसके बाद चीज कर्ड़ को गर्म पानी में गूंथा एवं खींचा जाता है और गोल आकार देकर उसे 20 प्रतिशत नमक के विलयन (4–5 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान पर) में तीन घण्टे के लिए रखा जाता है। बाद में ताजा चीज को नमक के घोल में से निकाल कर भण्डारण के लिए रख देते हैं।

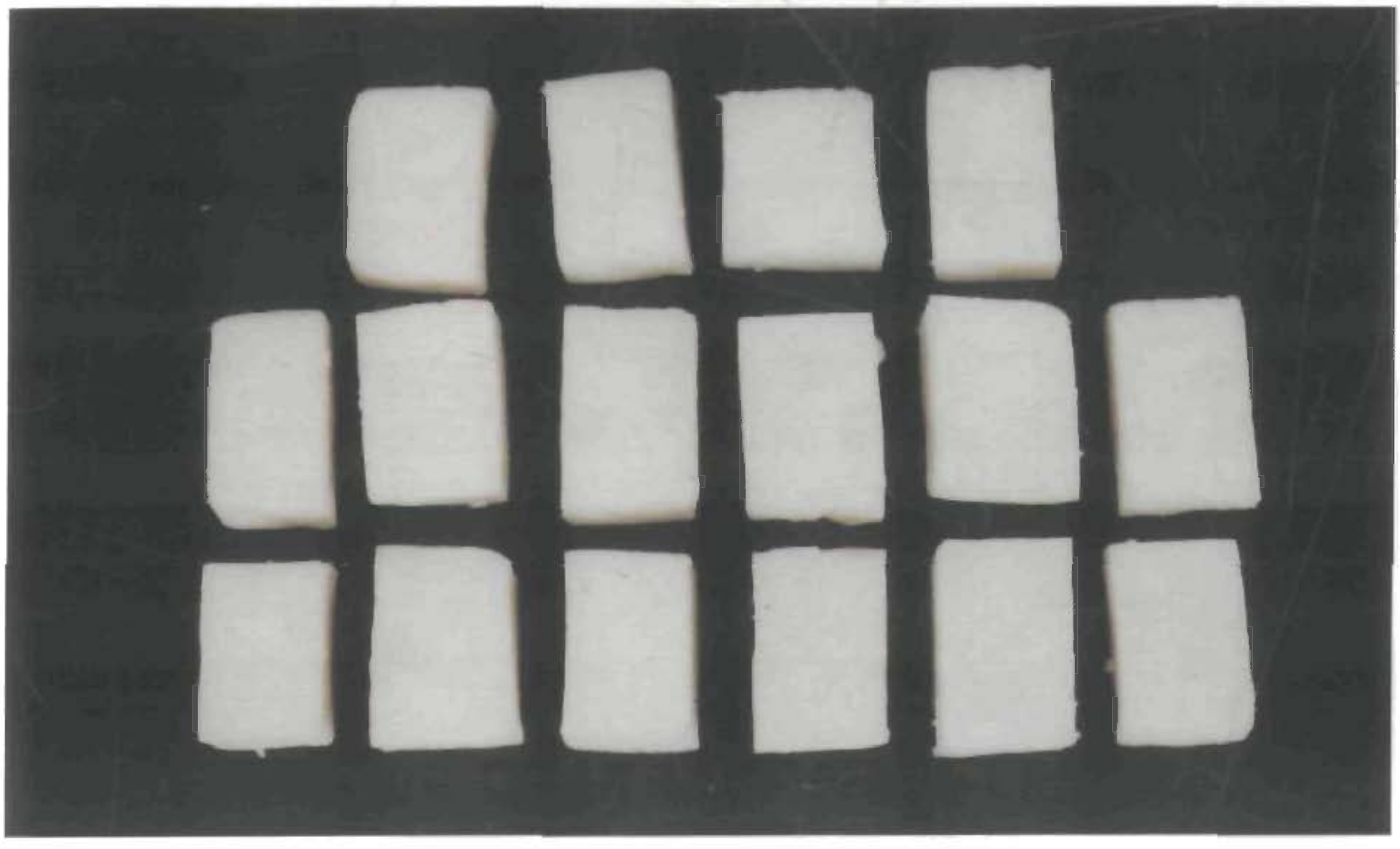

चित्र 32.1. बकरी के दूध से निर्मित पनीर

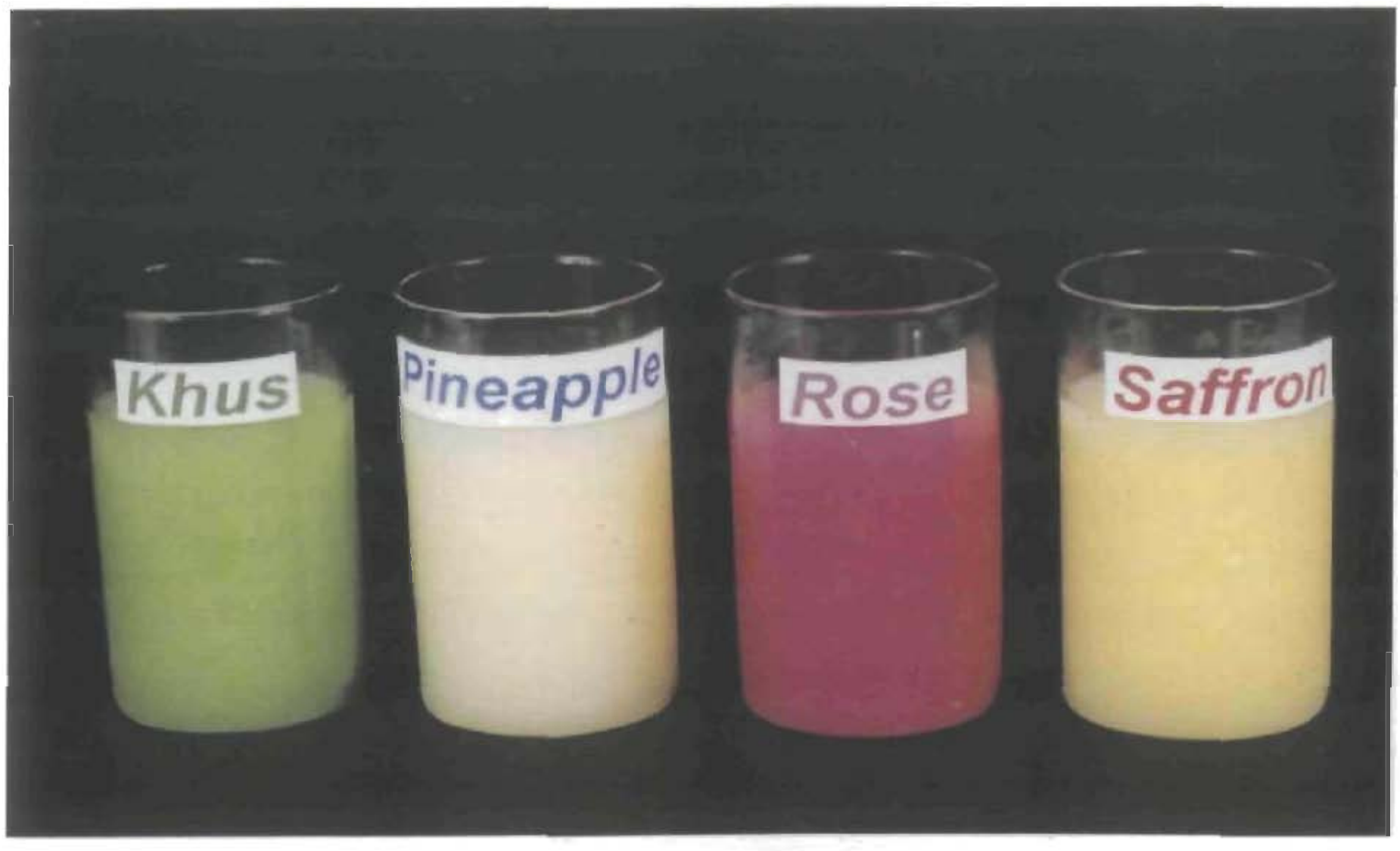

चित्र 32.2. बकरी के दूध से निर्मित विभिन्न सुगन्धित पेय

VII सौर ऊर्जा द्वारा सूखे से मुकाबला एवं आय उपार्जन

33 मसाले एवं सब्जियों को सौर शुष्कक में सुखाना

नवरत्न मल नाहर

थार रेगिस्तान में बसे गांवों की उन्नति एक बड़ी भारी चुनौती है क्योंकि यहां की जलवायु बड़ी विचित्र है। यहां वर्षा बहुत कम होने से यह क्षेत्र अधिकतर अकाल की चपेट में रहता है। जिससे यहां के युवा किसान गांव छोड़कर नौकरियों की तलाश हेतु शहरों में पलायन करते हैं। यह प्रक्रिया भविष्य में देश के सामने एक विकराल रुप धारण कर लेगी। अतः युवा किसानों का गांवो से शहरों की ओर पलायन को रोकने की आवश्यकता है। इस समस्या को हल करने के लिए गांवो में ऐसे उद्योग लगाने चाहिएं जिससे कि किसानों को कच्चा माल वहीं उपलब्ध हो सके।

हमारा देश कृषि प्रधान देश है अतः गांवों में कृषि आधारित उद्योग लगाने चाहिये। कृषि क्षेत्र में सब्जियाँ पैदा करने में चीन के बाद भारत का दूसरा स्थान है अतः इन ताजी सब्जियों एवं मसालों को सुखाने के उद्योग ही गांवो में लगाना उचित होगा लेकिन इन उद्योगों के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यह ऊर्जा हमें तेल, गैस व बिजली से मिल सकती है। बिजली की उपलब्धता होने पर भी यह सब्जियों व मसालों को सुखाने के लिए महंगी पड़ेगी। वैसे तो समस्त भारत में सौर ऊर्जा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है लेकिन थार रेगिस्तान में यह सबसे अधिक उपलब्ध होती हैं जहां एक वर्ग मीटर समतल सतह पर प्रति दिन 6 किलोवाट ऊर्जा प्राप्त होती है। अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में इसकी मात्रा 4.5 से 5.5 किलोवाट प्रति वर्ग मीटर प्रतिदिन तथा सबसे कम (4 किलोवाट) पहाड़ी क्षेत्रों में मिलती है। अतः सौर ऊर्जा का प्रयोग मसाले एवं सब्जियों को सुखाने में कर सकते हैं।

सूर्य के प्रकाश से खुले मैदान में मसालों व सब्जियों को सुखाने की विधि दीर्घकाल से प्रचलित है लेकिन यह विधि ठीक नहीं है क्योंकि इस विधि से सुखाये जा रहे पदार्थ में धूल गिरती है। कीड़े लग जाते हैं तथा उत्पाद वर्षा से नष्ट होने का भय बना रहता है। खुली धूप में कभी–कभी कुछ सूखी हुई पत्तीदार सब्जियाँ तेज हवा में उड़ जाती हैं। इस प्रकार खुली धूप में सब्जियों व मसालें की गुणवत्ता अच्छी न होने से विश्व बाजार में अपनाई नही जाती है। सब्जियों एवं मसालों को सुखाने के लिए तापमान 60 से 70 डिग्री सेन्टीग्रेड के मध्य होना चाहिए। यह तापमान हमें केवल खुली धूप में नहीं मिल सकता अतः हमें सौर ऊर्जा के वैज्ञानिक तरीके अपनाकर उचित तापमान प्राप्त करना आवश्यक है। इस संदर्भ में सौर ऊर्जा को इक्ट्ठा करके सब्जियों व मसालों को सुखाने के लिए जो उपकरण काम में आता है उसे सौर शुष्कक कहते हैं।

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में 100 किलोग्राम की क्षमता का एक व्यवसायिक सौर शुष्कक बनाया गया है। इस संयत्र में 10 सौर शुष्कक एक पंक्ति में जुड़े हैं। प्रत्येक सौर शुष्कक एल्युमिनियम की चद्दर व लोहे की एंगलो से बना एक संदूक के आकार का बक्सा होता है जिसमें ऊपरी सिरे पर एक पारदर्शक कांच लगा होता है। सूर्य की किरणें जब इस कांच से पारगत होकर स्टेनलेस स्टील की जाली पर रखी सूखने वाली सब्जी या मसालें पर गिरती है तो सब्जी या मसाले के इर्द–गिर्द की वायु का तापमान अधिक होने से पदार्थ की गर्म वाष्प शुष्कक में बने एक लम्बे छिद्र से बाहर निकलकर वायुमण्डल में जाती रहती है और ताजी हवा ट्रे के नीचे से बक्से में आती रहती है। इस प्रकार सौर शुष्कक में रखा पदार्थ सूखता रहता है। इस संयत्र की निम्नलिखित विशेषताएं हैं –

- एक सौ किलोग्राम क्षमता वाले इस सम्पूर्ण सौर शुष्कक को केवल एक ही युवक घुमाकर ऋतुनुसार उपयुक्त झुकाव पर रख सकता है। जिससे वर्ष भर अत्यधिक सौर ऊर्जा प्राप्त होती है। देश के उत्तरी भागों में इस संयत्र को सर्दियों में उपयुक्त झुकाव पर रखने से क्षैतिज तल के सापेक्ष करीब 50 प्रतिशत अधिक सौर ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है तथा इस संयत्र को किसी भी स्थान के अक्षांश तथा ऋतु के अनुसार समायोजित करके अधिकतम सौर ऊर्जा प्राप्त कर सकते हैं।

- इस संयत्र में मसाले व सब्जियों को रखने वाली स्टेनलेस स्टील की ट्रे को पांच भागों में विभाजित करने से सूखने वाला पदार्थ तिरछे तल में भी ठहर सकता हैं।

- इस संयत्र की कीमत कम करने के लिए सूखी बाजरे की डंठलों का प्रयोग किया गया है जो कि उष्मारोधक का कार्य करते हैं।

- इस संयत्र को बनाने के लिए काम में आने वाली सभी वस्तुएं जैसे लोहे की एंगले, स्टेनलेस स्टील की जाली, कांच, एल्यूमिनियम या जस्त लगे लोहे की चद्दरे, नट–बोल्ट इत्यादि बाजार में आसानी से उपलब्ध हैं।

- इस संयत्र को बनाने की विधि इतनी सरल है कि इसको गांव का साधारण मिस्त्री भी बना सकता है।

- इस संयत्र की बनावट की विशेषता यह है कि इसके सभी हिस्सो को अलग–अलग खोलकर एक जगह से दूसरी जगह आसानी से ले जाया जा सकता है।

- मसाले व सब्जियों को सुखाने के लिए इस संयंत्र को किसानों के खेतों में सीधा लगाया जा सकता है तथा सुखाने वाली सब्जियों की मात्रा को ध्यान में रखते हुए इस संयंत्र की क्षमता बढ़ाई/घटाई जा सकती है।

- पदार्थ के सूखते समय ट्रे के तिरछे तल में तापमान असमान देखा गया है। इस समस्या का निवारण करने हेतु प्रत्येक दो घण्टे बाद ट्रे को बक्से से बाहर निकालकर तथा पदार्थ को पलटकर व ट्रे को 180 डिग्री के कोण से घुमाकर सौर शुष्कक में वापस रख देते हैं जिससे कि पदार्थ समान रूप से सूखता रहे।

- सौर शुष्कक के अन्दर की सफाई तथा आवश्यंकता पड़ने पर इसकी पानी से सम्पूर्ण धुलाई भी आसानी से हो सकती है।

- इस संयंत्र में सब्जियों के सूखने का समय खुली धूप में सूखने की अपेक्षा 50 प्रतिशत कम है।

इस सौर शुष्कक में विभिन्न प्रकार के मसाले व सब्जियों को सुखाने के सफल प्रयोग किए गये हैं। इस सौर शुष्कक में मसाले जैसे लाल व हरी मिर्च, लहसुन, अदरक, हल्दी, धनियां, पोदीना, मैथी इत्यादि व सब्जियाँ जैसे पालक, बथुआ, भिण्डी, टमाटर, लौकी, शकरकंद, करेला, गोभी, ग्वारफली, प्याज, मटर, चुकन्दर, अरबी, मूली, गाजर, इमली इत्यादि सुंखायी गयी हैं। प्रायः यह भी देखा गया है कि हरी सब्जियों के सूखने के बाद उनका रंग लगभग हरा ही रहता है तथा कुछ सूखी हुई सब्जियों के टुकड़ो को कुछ समय के लिए गर्म पानी में भिगोने से उनका आकार ताजी सब्जियों के बराबर हो जाता है। सौर ऊर्जा से सूखे कुछ पदार्थो के चूर्ण (पाउडर) में स्वाद के मुताबिक कुछ मसाले मिलाकर तत्काल उत्पाद भी तैयार किए गये हैं जैसे सूखे धनिये की चटनी का मसाला, टमाटर चटनी व टमाटर सूप का मसाला, हरी मिर्च के सॉस का मसाला इत्यादि। इनमें जरूरत के अनुसार केवल पानी डालने से तुरन्त चटनी व सूप तैयार हो जाते हैं। सूखे हुए पालक चूर्ण में पानी मिलाकर पालक पनीर की सब्जी बनाई जा सकती है। कसी हुई गाजर के सूखे टुकड़ो से उस समय भी गाजर का हलवा तैयार किया जा सकता है जब बाजार में गाजर उपलब्ध नहीं हो। शकरकंद के चूर्ण का हलवा बहुत ही स्वादिष्ट बनता है जिसको उपवास में भी काम में लिया जा सकता है। सूखे बथुए की पत्तियों के चूर्ण को 5 से 7 मिनट तक पानी मे भिगोने के बाद दही डालने से बथुए का तुरन्त रायता तैयार हो जाता है।

इस संयंत्र से सूखे मसाले व सब्जियाँ अच्छी गुणवत्ता वाले होते हैं जिनकी अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में खपत हो सकती है। अतः इन सूखी हुई सब्जियों जैसे प्याज का पाउडर, हरी मिर्च का पाउडर, पालक इत्यादि का व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जोड़कर विदेशी मुद्रा भी कमाई जा सकती है।

इस संयंत्र में मसाले व सब्जियों को सुखा कर स्वरोजगार योजना निश्चित रुप से सफल हो सकती है और युवकों का नौकरी के लिए गाँवो से शहरो की ओर पलायन बंद हो सकता है तथा उनका नौकरी संबंधी उपद्रव भी समाप्त हो सकता है। मसाले व सब्जियाँ सुखाने के लिए इस सौर शुष्कक का उपयोग महिला उद्योग में भी सफल हो सकता है।

सौर शुष्कक द्वारा सूखे हुए मसाले व सब्जियों की मांग बढ़ेगी क्योंकि हमारे देश की सीमाओं पर बसे जवानों की भोजनशालाओं में इन्सटेन्ट धनिये व टमाटर तथा इमली की चटनियों व बेमौसम में गाजर व शकरकंद का हलवा तथा विभिन्न प्रकार की सब्जियों की मांग अधिक है तथा बड़े शहरों में फास्ट फूड की बढ़ती प्रवृति को ध्यान में रखते हुए सूखी हुई सब्जियों व मसाले युक्त सूखी चटनियों की भी अधिक मांग है।

34

सौर ऊर्जा आधारित विभिन्न उपकरण

पीयूष चन्द्र पाण्डे, नवरत्न मल नाहर एवं हरपाल सिंह

थार मरुस्थल देश का एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ सबसे ज्यादा सौर ऊर्जा उपलब्ध रहती है (तालिका 34.1) और सबसे ज्यादा समय तक सूर्य उपलब्ध रहता है। इस क्षेत्र में वर्षा केवल 20 दिन तक ही हो पाती है और कभी–कभी तो नहीं भी होती। इसलिये इस क्षेत्र में सौर ऊर्जा का दोहन अधिक से अधिक हो सकता है। सौर ऊर्जा को खाना पकाने, कृषि उत्पादों को सुखाने, पानी गर्म करने, पशु आहार उबालने, पानी का आसवन करने, मोम पिघालने, शीत भण्डारण आदि के उपयोग में लिया जा सकता है। इसके अलावा सौर ऊर्जा को बिजली में भी बदला जा सकता है ताकि पम्प चलाया जा सके, रोशनी हो सके, टेलीविजन व रेडियो जैसे उपकरणों में प्रयोग किया जा सके।

तालिका 34.1. थार मरुस्थल के विभिन्न स्थानों पर सौर ऊर्जा प्राप्ति के औसत आकड़े (किलो वाट्स घण्टा/वर्ग मीटर प्रति दिन)

माह	राजस्थान					गुजरात	हरियाणा
	जोधपुर	बीकानेर	जैसलमेर	बाड़मेर	हनुमानगढ़		
जनवरी	4.7	4.5	4.6	4.7	3.9	5.0	4.0
फरवरी	5.6	5.4	5.6	5.6	4.9	5.8	5.0
मार्च	6.2	6.4	6.5	6.6	5.9	6.2	5.9
अप्रैल	7.1	7.5	7.5	7.5	6.5	6.9	6.7
मई	7.5	8.1	8.1	8.1	6.7	7.4	6.9
जून	7.2	8 2	8.2	7.9	6.0	6.5	6.0
जुलाई	6.3	7.3	7.4	6.6	6.3	5.3	6.0
अगस्त	6.1	6.8	7.1	6.3	6.1	5.2	6.0
सितम्बर	6.2	6.8	6.8	6.6	6.2	5.9	6.2
अक्टूबर	6.0	6.0	6.1	6.1	5.6	5.9	5.5
नवम्बर	5.1	4.8	5.0	5.1	5.6	5.3	4.7
दिसम्बर	4.5	4.2	4.4	4.5	3.8	4.8	4.0
औसत	6.0	6.3	6.4	6.3	5.5	5.9	5.6

सौर चूल्हा

भारत में कुल ऊर्जा की खपत का 50 प्रतिशत सिर्फ भोजन पकाने में खर्च हो जाता है। लकड़ी की खपत करीब 400 कि. ग्रा. प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष है। गाँवों में उपलों को भी जलाया जाता है। अगर उपलों को जलाने के बजाय खाद के रूप में खेतों में प्रयोग करें तो कृषि उत्पादन बढ सकता है। अतः सौर चूल्हे ईंधन बचाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

सौर चूल्हा दोहरी दीवार वाला बक्सा होता है। दीवारों के बीच में कुचालक भरा जाता है। ऊपर दो पारदर्शी काँच तथा एक दर्पण लगा रहता है। इसे दक्षिण दिशा की तरफ रखा जाता है। भोजन जो पकाना हो उसको एल्युमिनियम के डिब्बों में उचित मात्रा में पानी के साथ रखने से दो से तीन घण्टे में पक जाता है। सर्दियों में समय ज्यादा लगता है। गर्मियों में कम से कम चार व्यंजन एक साथ बना सकते हैं। इन चूल्हों में घाट, राब, दाल, चावल, सब्जी, बाटी (रोटा), खीच इत्यादि पका सकते हैं। कठिन भोजन जैसे चने को उबालने में समय अधिक लगता है। नरम भोजन जैसे चावल में समय कम लगता है। बाजार में उपलब्ध सौर चूल्हे के प्रयोग से 5 व्यक्तियों का भोजन एक साथ पका सकते हैं तथा भोजन में लगने वाली ऊर्जा की करीब आधी खपत को बचा सकते हैं। इस चूल्हे के प्रयोग से प्रतिवर्ष करीब 400 किलो ग्राम लकड़ी या तीन गैस (एल.पी.जी.) के सिलेण्डर की बचत कर सकते हैं। बाजार में सौर चूल्हे की कीमत लगभग 1500 रूपये प्रति चूल्हा है।

पशु आहार सौर चूल्हा

पशु आहार (बांटा) को उबालने के लिये एक बहुत ही कम कीमत का विशेष प्रकार का सौर चूल्हा बनाया गया है। इसमें एक साथ 10 किलो बांटा तैयार कर सकते हैं। यह चूल्हा काली मिट्टी, बाजरे के डूरे व गोबर के मिश्रण से बनाया गया है। इसमें सिर्फ उसका फ्रेम जो कि ऊपर लगाया गया है बाजार से खरीदना पड़ता है (चित्र 34.1)। कोई भी अप्रशिक्षित व्यक्ति या औरत इसका निर्माण कर सकता है। इसमें बाजरे के डूरे को ही कुचालक के रूप में प्रयोग किया गया है अतः इसकी कीमत कम है। इसमें प्रातः काल में बांटे को पानी में मिलाकर एल्युमिनियम की तगारी में रखकर चूल्हे के अन्दर रख देते हैं। दिन में करीब 3 बजे तक बांटा पककर तैयार हो जाता है। इसके बाद कभी भी इसे जानवरों को खिला सकते हैं। इस चूल्हे के प्रयोग से प्रति वर्ष करीब 2000 किलो ग्राम लकड़ी बचा सकते हैं। एल्युमिनियम की तीन तगारी सहित एक सौर चूल्हे की कीमत लगभग 1500 रूपये है।

सौर शुष्कक

थार रेगिस्तान फल व सब्जियाँ सुखाने के लिये बहुत ही उपयुक्त क्षेत्र है। यहाँ की जलवायु शुष्क व गर्म है तथा बंजर भूमि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। सूर्य के प्रकाश से खुले मैदान में फलों व सब्जियों को सुखाने की विधि दीर्घकाल से प्रचलित है लेकिन यह विधि ठीक नहीं है क्योंकि इस विधि से उपज में धूल गिरती है, कीड़े लग जाते हैं तथा उत्पाद को वर्षा से नष्ट होने का डर रहता है। सूखी हुई पत्तेदार सब्जियाँ तेज हवा में उड़ जाती हैं। सौर शुष्कक के प्रयोग से इस हानि से बचा जा सकता है।

काजरी द्वारा एक ऐसे सौर शुष्कक का निर्माण किया गया है जिसमें 100 किलो ग्राम फल व सब्जियों को सुखा सकते हैं। इसके निर्माण में लगने वाले पदार्थ जैसे एल्युमिनियम या सफेद लोहे की चद्दर, लोहे की एंगल, काँच, जाली इत्यादि बाजार में उपलब्ध हैं। इस सौर शुष्कक में विभिन्न प्रकार की सब्जियों को सुखाया गया है (चित्र 34.2)। इनमें मुख्यतः पालक, धनिया, पोदीना, मेथी, बथुआ, भिण्डी, गोभी, ग्वारफली, प्याज, लहसुन, हरी व लाल मिर्च, मटर, चुकन्दर, अरबी, हल्दी, मूली, गाजर, इमली, काचरा, बेर, खजूर, अंगूर इत्यादि 2 से 4 दिन में सुखाई गई हैं। हरी सब्जियों का रंग हरा ही रहता है। सूखी सब्जियों को गर्म पानी में भिगोने से उनका आकार वापस ताजी सब्जी के बराबर हो जाता है तथा बाद में सब्जी बना सकते हैं। किसानों के पास जब सब्जियों की मात्रा व उत्पादन अधिक हो तो उस समय सुखाकर बाद में अधिक कीमत पर बेच सकते हैं। एक सौर शुष्कक, जिसकी क्षमता 10 कि. ग्रा. है, की कीमत करीब 3000 रू है। इस तरह पूरी इकाई जिसमें 10 सौर शुष्कक लगे होते हैं की कीमत करीब 30,000 रूपये है।

संग्राहक सहित संचयन टंकी वाला सौर जल तापक

गर्म जल का उपयोग नहाने, कपड़े व बर्तन धोने आदि घरेलू कार्यों के लिये किया जाता है। देश में प्रचलित प्राकृतिक परिभ्रमण जलतापक यंत्र बाजार में उपलब्ध है जिसकी कीमत अधिक होती है। साधारण आदमी इसे खरीदने में असमर्थ है अतः एक नये प्रकार का सौर जलतापक बनाया गया है जिसमें सौर संग्राहक व संचयन टंकी को एक ही में बना दिया गया है। यह टंकी संग्राहक का कार्य भी करती है तथा गर्म पानी को इकट्ठा भी रखती है। इससे इसकी कीमत कम हो गयी है।

यह सौर जल तापक आयताकार जस्ते लगे लोहे की टंकी का बना होता है जिसकी क्षमता 100 लीटर है। टंकी की ऊपरी सतह को श्याम पट्ट रंग से रंग दिया जाता है। टंकी को जस्ते लगे लोहे की चद्दर की बनी ट्रे में 100 मि.मी. कुचालक पदार्थ भरकर रख लिया जाता है। इसके ऊपर 4 मि. मी. मोटे दो साधारण पारदर्शी काँच लगाये गये हैं। तापक को उचित कोण पर लोहे के एंगल स्टैण्ड पर खड़ा रखा जाता है जिससे शीत ऋतु में तापक की सतह पर अधिकाधिक सौर विकिरण गिरे। इस सौर जल तापक से प्रतिदिन 100 लीटर पानी (55 से 65 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान) शाम को प्राप्त किया जा सकता है तथा कुचालक ढ़क्कन से शाम को ढ़कने पर दूसरे दिन प्रातःकाल तक 40 – 50 डिग्री सेन्टीग्रेड तक गर्म जल प्राप्त कर सकते हैं। इस जल तापक के प्रयोग से प्रतिदिन 4 किलोवाट विद्युत की बचत कर सकते हैं। सौर जलतापक की कीमत लगभग 5000 रूपये है।

सौर आसवन संयंत्र

शुष्क क्षेत्र के बहुत से गाँवों में पीने के पानी की काफी कमी है। खारा पानी उपलब्ध है लेकिन स्वच्छ पानी नहीं है। सौर आसवन ऐसा साधन है जो सूर्य की ऊर्जा का उपयोग करके खारे या गन्दे पानी को आसवित पानी बना देता है। आसवित पानी की आवश्यकता जीप व ट्रैक्टर की बैटरियों में तथा

विद्यालय की रसायन प्रयोगशाला में होती है। आसवित पानी में उचित मात्रा में खारा पानी मिलाकर पीने के पानी के रूप में काम में ले सकते हैं। एक वर्ग मीटर क्षमता के संयंत्र से 3 – 4 लीटर आसवित पानी प्रति दिन प्राप्त कर सकते हैं। इस संयंत्र की कीमत लगभग 2000 रूपये है। गॉव की जनता इन सौर आसवन संयंत्रों को आमदनी का साधन बना सकती है।

पानी के वाष्पीकरण द्वारा शीतलता के सिद्धान्त पर आधारित कूल चैम्बर

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर ने एक बहुत सस्ती घरेलू शीतल तकनीकी का विकास किया है जो रेगिस्तान जैसे क्षेत्रों में सब्जी एवं फलों का लघु समय के लिये आसानी से संरक्षण कर सकती है। इस नई शीतल विधि की विशेषता यह है कि इसमें न तो बिजली की कोई आवश्यकता होती है और न ही इसे बनाने में किसी विशेष निर्माण सामग्री की जरूरत पड़ती है। गाँव में ही उपलब्ध निर्माण सामग्री से इसे आसानी से बनाया जा सकता है।

यह नई शीतल विधि पानी के वाष्पीकरण द्वारा शीतलता के सिद्धान्त पर कार्य करती है और गर्मियों में काफी उपयोगी है विशेषकर ऐसे प्रदेशों/क्षेत्रों में जहाँ पर हवा में आर्द्रता कम हो। राजस्थान में अधिकतर जगहों पर गर्मियों के दिनों में आर्द्रता कम ही रहती है। पानी के वाष्पीकरण द्वारा शीतलता से ठण्डक पैदा करना आर्द्रता पर निर्भर करता है। जैसे–जैसे आर्द्रता कम होती है ठंडक का प्रभाव बढ़ता चला जाता है। ज्ञात रहे कि डेजर्ट कूलर भी इसी वाष्पीकरण द्वारा शीतलता के सिद्धान्त पर कार्य करता है। अन्तर इतना है कि डेजर्ट कूलर में बिजली की आवश्यकता होती है और इसे घरों को ठण्डा करने के लिये प्रयोग में लिया जाता है जबकि इस विधि (कूल चेम्बर) में बिजली की कोई आवश्यकता नहीं होती और सब्जी, फलों, बचा हुआ खाना एवं दूध आदि को ठण्डा रखकर उनका लघु समय के लिये संरक्षण किया जाता है।

यह नई शीतल विधि एक दोहरी ईंट की दीवार से बनाया गया छोटा चैम्बर है जिसकी अन्दरूनी नाप लगभग 60 x 60 x 50 से.मी. है। इस दोहरी ईंट की बनी दीवार के बीच (10 से.मी. का फासला) पानी (दिन में एक बार) भर देते हैं। यह पानी ईंट की बाहरी दीवार की सतह से वाष्पीकरण द्वारा चैम्बर के अन्दर के तापमान को कम कर देता है जैसे मटके में पानी का तापमान स्वतः ही समय के साथ घटता जाता है। कूल चैम्बर की अन्दर वाली ईंट की दीवार से पानी का वाष्पीकरण होने से चैम्बर में आर्द्रता काफी ऊँची (80 – 90 प्रतिशत तक) बनी रहती है जबकि खुली जगह में आर्द्रता लगभग 50 प्रतिशत या इससे भी कम रहती है। अधिक आर्द्रता और तापमान कम होने के कारण कूल चैम्बर में लघु समय के लिये फलों एवं सब्जियों का संरक्षण किया जाता है (चित्र 34.3)। इस संस्थान में पिछले दो सालों से कुछ सब्जियों जैसे टमाटर, मिर्च, बैंगन, पत्ता गोभी, गाजर, भिण्डी, फूलगोभी, आलू इत्यादि का गर्मी एवं सर्दी के दिनों में सफलतापूर्वक संरक्षण किया है। इस तरह की यह नई शीतल विधि किसानों और सब्जी विक्रेताओं के लिये एक वरदान है। सब्जी का सही समय पर खेतों से निकास नहीं होने तथा

चित्र 34.1. पशु आहार सौर चूल्हा

चित्र 34.2. सौर शुष्कक

चित्र 34.3. पानी के वाष्पीकरण द्वारा शीतलता के सिद्धान्त पर आधारित कूल चैम्बर

बाजार तक नहीं पहुँच पाने के कारण खराब हो जाती है। किसान को उचित मूल्य नहीं मिलने पर सब्जी का अल्प समय के लिये सरंक्षण करना पड़ता है इससे किसान को दोहरी मार झेलनी पड़ती है। पहली सब्जी का कम भाव मिलना व दूसरा संरक्षण के समय सब्जी में होने वाला नुकसान। बचा हुआ खाना एवं दूध आदि भी अधिक गर्मी से खराब हो जाते हैं। इस शीतल चैम्बर के प्रयोग से किसान सब्जी का लघु समय (4–5 दिन) के लिये सुरक्षित संरक्षण कर सकते हैं तथा अच्छा भाव मिलने पर सब्जी का विक्रय किया जा सकता है।

इसी तरह सब्जी विक्रेता भी कूल चैम्बर का उपयोग कर सब्जियों को खराब होने से बचा सकते हैं और लाभ में बढ़ोतरी कर सकते हैं। कूल चैम्बर में 4–5 दिन तक प्रायः सभी प्रकार की सब्जियाँ ताजी बनी रहती हैं जिससे बाजार में इनकी कीमत अच्छी मिल सकती है। इसको बनाने का खर्चा लगभग 2000 रु आता है।

सौर ऊर्जा आधारित मोमबत्ती उपकरण

सौर ऊर्जा आधारित मोमबत्ती उपकरण की यह विशेषता है कि इसमें मोम को सूर्य की गर्मी द्वारा पिघला कर इसे साचों में भर दिया जाता है (चित्र 34.4)। एक दिन में 15 – 16 किलो ग्राम मोमबत्तियाँ बनाई जा सकती हैं। इस उपकरण की कीमत 5000 रू आती है। इसको गृहणियाँ एवं बच्चे तथा बुजुर्ग आसानी से काम में ले सकते हैं।

इस विधि में क्योंकि मोम एक बन्द डिब्बे में ही पिघलाया जाता है इसलिये वाष्पीकरण द्वारा मोम नहीं उड़ पाता। इसके अलावा काम करने वाले व्यक्ति के स्वास्थ पर भी विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता। वाष्पीकरण द्वारा लगभग 25 – 30 प्रतिशत तक होने वाले मोम के नुकसान से भी बचा जा सकता है।

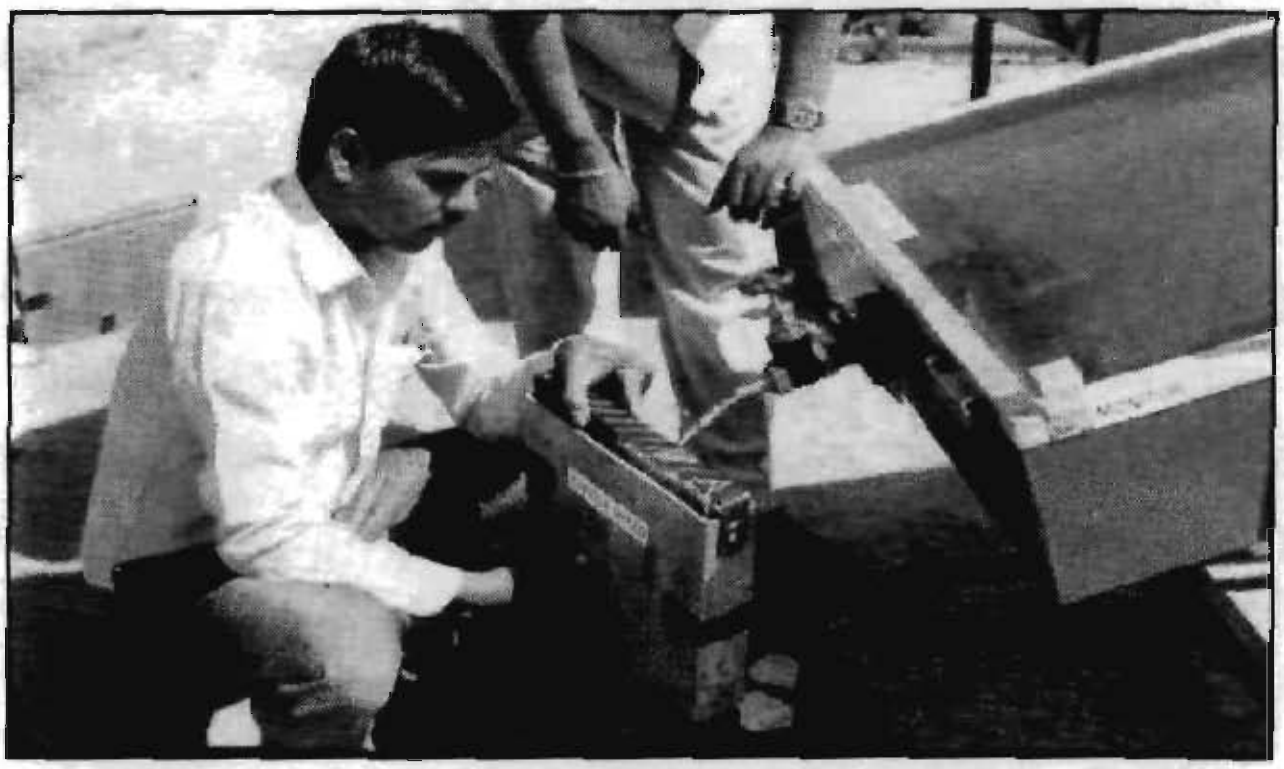

चित्र 34.4. सौर ऊर्जा आधारित मोमबत्ती उपकरण

एक दूसरे यंत्र से मोम व तेल को गर्म कर फर्श, चमड़े, कार आदि की पॉलिश तैयार की जा सकती है। इन यंत्रों की कीमत लगभग 5000 रूपये है तथा इनके उपयोग से 2000 से 2500 रूपये प्रति माह की अतिरिक्त आमदनी प्राप्त की जा सकती है।

बहुउद्देश्यीय सौर यंत्र

एक ही यंत्र से दो या उससे अधिक कार्य करने हेतु बहुउद्देश्यीय सौर संयंत्र भी काजरी में बना लिये गये हैं। इसमें एक सौर शुष्कक मय चूल्हे से भोजन भी बन सकता है और फल सब्जियों को भी सुखाया जा सकता है। एक अन्य संयंत्र सौर जलतापक मय शुष्कक से पानी भी गर्म किया जा सकता है। इस प्रकार एक बहुउद्देश्यीय संयंत्र से पानी भी गर्म हो सकता है, भोजन भी बन सकता है और फल व सब्जियों को भी सुखाया जा सकता है। इसकी कीमत लगभग 5000 रूपये है। इनके उपयोग से घरेलू कार्यों में खर्च होने वाले ईंधन की बचत की जा सकती है।

सौर प्रकाश वोल्टीय उपकरण

सिलिकॉन जैसे अर्द्ध चालकों से बने यह सौर सैल सौर ऊर्जा के 10 – 12 प्रतिशत भाग को सीधे बिजली में बदल देते हैं। इन सौर सैल से चलने वाले यंत्रो का प्रयोग कर विभिन्न प्रकार के उन सभी कार्यों को किया जा सकता है जिनमें बिजली की आवश्यकता होती है। घरों में रोशनी करने के लिये आजकल सौर लालटेन उपलब्ध हैं जो 2500 से 3000 रू में मिल जाती हैं। सूखे में जानवर आदि मरने से उत्पन्न बीमारियों से बचने के लिये कीटनाशक दवाइयों को छिड़कने की जरूरत पड़ती है। ऐसे में सौर स्प्रेयर व डस्टर का उपयोग किया जा सकता है। इसमें जहाँ सौर पेनल आदमी को छाया प्रदान करता है वहीं स्प्रेयर व डस्टर को चलाने के लिये बिजली भी पैदा करता है। सौर सैल से चलने वाले पम्प इन्दिरा गाँधी नहर के आस–पास के भागों में उद्यानों के विकास हेतु अत्यन्त उपयोगी हैं। इन सौर पम्पों से बूँद–बूँद सिंचाई द्वारा जहाँ एक ओर जल की बचत होती है वहीं दूसरी ओर अत्यधिक जल के उपयोग से होने वाली समस्याओं जैसे लवणीयता एवं जल टिकाव से भी बचा जा सकता है। सौर पम्प का प्रयोग गाँवों में जल के वितरण के लिये भी किया जा सकता है। सौर पम्प में आजकल सरकार की ओर से अनुदान भी उपलब्ध है। सौर सैल से चलने वाले फ्रिज भी बाजार में उपलब्ध हैं। गाँव के अस्पतालों में वैक्सीन व दवाईयों को रखने के लिये यह उपकरण उपयुक्त है। सूखे की स्थिति में दवाइयों की उपलब्धता भी जरूरी है। अतः यह उपकरण भी लाभदायी है। ग्रामीण जनता को सूखे से बचाव हेतु विभिन्न जानकारी को टेलिविजन, रेडियो, आदि से प्रसारित करने के लिये सौर सैल का उपयोग किया जा सकता है।

पादपों के वानस्पतिक नाम

क्र.सं.	विवरण
वृक्ष (Tree)	
1	इजरायली बबूल *(Acacia tortilis)*
2	विलायती बबूल *(Prosopis juliflora)*
3	देशी बबूल *(Acacia nilotica)*
4	कुमट *(Acacia senegal)*
5	सिरस *(Albizia lebbek)*
6	बाईनेटा *(Hardwickia binata)*
7	नीम *(Azadirachta indica)*
8	मोपेन *(Colophospermum mopane)*
9	नूतन *(Dichrostachys nutans)*
10	खेजड़ी *(Prosopis cineraria)*
11	बेर *(Ziziphus mauritiana)*
झाड़ियाँ/औषधीय पौधे (Bushes/Medicinal Plants)	
1	हिंगोटा *(Balanites roxburghii)*
2.	कैर *(Capparis decidua)*
3	आंवला *(Emblica officinalis)*
4	जिंजानी *(Mimosa hamata)*
5	खींप *(Leptadenia pyrotechnica)*
6	बुई *(Aerva pseudotomentosa)*
7	आक *(Calotropis procera)*
8	सिणिया *(Crotalaria burhia)*
9	सोनामुखी *(Cassia angustifolia)*
10	मेहन्दी *(Lawsonia inermis)*
11	गुग्गल *(Commiphora wightii)*
12	तुलसी *(Ocimum sanctum)*
13	ग्वार पाठा *(Aloe vera)*

14 गिलोय *(Tinospora cordifolia)*
15 रतनजोत *(Jatropha curcas)*
16 बड़ा गोखरु *(Pedalium murex)*
17 छोटा गोखरु *(Tribulus terrestris)*
18 सहजन *(Moringa oleifera)*
19 शंखपुष्पी *(Convolvulus microphyllus)*
20 मकोय *(Solanum nigrum)*
21 इन्द्रायन *(Citrullus colocynthis)*
22 अपामार्ग *(Achyranthes aspera)*
23 पुनर्नवा *(Boerhavia diffusa)*
24 शरपुखाँ *(Tephrosia purpurea)*
25 बल *(Sida cordifolia)*
26 चामकस *(Corchorus depressus)*
27 कालमेघ *(Andrographis paniculata)*

सब्जियाँ एवं फल (Fruits & Vegetables)

1 टमाटर *(Lycopersicon lycopersicum)*
2 भिण्डी *(Abelmoschus esculentus)*
3 बैंगन *(Solanum melongena)*
4 मिर्च *(Capsicum annum)*
5 मूली *(Raphanus sativus)*
6 आलू *(Solanum tuberosum)*
7 प्याज *(Allium cepa)*
8 केला *(Musa paradisiaca)*
9 अंगूर *(Vitis vinifera)*
10 पपीता *(Carica papaya)*
11 तरबूज *(Citrullus lanatus)*
12 खरबूजा *(Cucumis melo)*
13 खजूर *(Phoenix dactylifera)*
14 नींबू *(Citrus aurantifolia)*
15 गूंदा *(Cordia myxa)*

16 अनार *(Punica granatum)*

17 बेल *(Aegle marmelos)*

18 बथुआ *(Chenopodium album)*

19 फूलगोभी *(Brassica oleracea var. botrytis)*

20 पत्तागोभी *(Brassica oleracea var. capitata)*

21 मटर *(Pisum sativam)*

22 चुकुन्दर *(Beta vulgaris)*

23 गाजर *(Daucus carota)*

24 अरबी *(Colocasia esculenta)*

25 शलजम *(Brassica rapa)*

मसाले (Spices)

1 जीरा *(Cuminum cyminum)*

2 इसबगोल *(Plantago ovata)*

3 लहसुन *(Allium sativum)*

4 सौंफ *(Foeniculum vulgare)*

5 राई *(Brassica nigra)*

6 हल्दी *(Curcuma domestica)*

7 मेथी *(Trigonella foenum-graceum)*

8 किरायता *(Swertia chirata)*

9 हींग *(Ferula assafoetida)*

10 इमली *(Tamarindus indica)*

अनाज, दालें व तिलहन (Grains, Pulses, Oil seeds etc.)

1 बाजरा *(Pennisetum glaucum)*

2 मोंठ *(Vigna aconitifolia)*

3 ग्वार *(Cyamopsis tetragonoloba)*

4 मूंग *(Vigna radiata)*

5 चवला *(Vigna unguiculata)*

6 चना *(Cicer arietinum)*

7 जौ *(Hordeum vulgare)*

8 कुसुम *(Carthamus tinctorius)*

9 गेहूँ *(Triticum aestivum)*

10 तिल *(Sesamum indicum)*

11 अरण्डी *(Ricinus communis)*

12 तारामीरा *(Eruca sativa)*

13 रायड़ा/सरसों *(Brassica juncea/B. campestris)*

14 सुरजमुखी *(Helianthus annus)*

15 गन्ना *(Saccharum officinarum)*

16 कपास *(Gossypium spp.)*

घासें (Grasses including pasture legumes)

1 रूदार धामण/अंजन *(Cenchrus ciliaris)*

2 बुरड़ा *(Cymbopogon jwarancusa)*

3 सेवण *(Lasiurus sindicus)*

4 करड़ *(Dichanthium annulatum)*

5 मोड़ा धांमण *(Cenchrus setigerus)*

6 ग्रामणा *(Panicum antidotale)*

7 मुरठ *(Panicum turgidum)*

8 खारड़ा *(Sporobolus marginata)*

9 लापड़ा *(Aristida funiculata)*

10 झेरनिया *(Digitaria marginatus)*

11 सेहीमा *(Sehima nervosum)*

12 क्लाइटोरिया *(Clitoria ternatia)*

13 सेम *(Lablab purpureus)*

14 स्टाइलो *(Stylosanthes hamata)*

खुम्बी (Mushroom)

1 श्वेत बटन खुम्बी *(Agaricus bisporus)*

2 ढींगरी *(Pleurotus spp.)*

3 कनचपड़ा खुम्बी *(Auricularia spp.)*

4 दूधिया खुम्बी *(Calocybe indica)*

5 शिटाके खुम्बी *(Lentinus edodes)*

6 पुआल खुम्बी *(Volvariella volvacea)*

योगदान कर्ता

1.	डॉ. रविशंकर सिंह	वरिष्ठ वैज्ञानिक (कृषि मौसम विज्ञान)	1
2.	डॉ. सुरेन्द्र पूनिया	तकनीकी सहायक (कृषि मौसम विज्ञान)	1
3.	डॉ. प्रताप नारायण	निदेशक, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर	7
4.	श्री जबरदान कविया	प्रधान वैज्ञानिक (कृषि प्रसार)	7, 33, 91, 135, 147
5.	डॉ. हरपाल सिंह	प्रधान वैज्ञानिक (कृषि संरचना एवं प्रसंस्करण अभियां.)	7,25,29,33,147,169
6.	डॉ. मोहम्मद अलाउद्दीन खान	प्रधान वैज्ञानिक (मृदा एवं जल संरक्षण अभियांत्रिकी)	13
7.	डॉ. रिद्ध·करण बेनीवाल	प्रधान वैज्ञानिक (मृदा)	19
8.	डॉ. रामपाल जांगिड	प्राध्यापक (शस्य विज्ञान), कृषि अनुसंधान केन्द्र, मण्डोर	19
9.	डॉ. अनिल कुमार सिंह	वरिष्ठ वैज्ञानिक (कृषि यंत्र एवं शक्ति)	25
10.	श्री दिनेश मिश्रा	प्रधान वैज्ञानिक (कृषि यंत्र एवं शक्ति)	29
11.	डॉ. नरेन्द्र देव यादव	वरिष्ठ वैज्ञानिक (शस्य विज्ञान)	33
12.	श्री काली चरण सिंह	प्रधान वैज्ञानिक (शस्य विज्ञान), सेवानिवृत	37
13.	डॉ. महावीर सिंह यादव	प्रधान वैज्ञानिक (पादप प्रजनन), सेवानिवृत	45
14.	डॉ. सन्तोष कुमार शर्मा	प्रधान वैज्ञानिक (आर्थिक वनस्पति विज्ञान), सेवानिवृत	45
15.	डॉ. आशुतोष कुमार पटेल	वरिष्ठ वैज्ञानिक (पशुधन उत्पादन एवं प्रबन्धन)	53
16.	डॉ. सतीश कुमार कौशिश	प्रधान वैज्ञानिक (पशुधन उत्पादन एवं प्रबन्धन)	53
17.	डॉ. तेजेन्द्र कुमार भाटी	प्रधान वैज्ञानिक (शस्य विज्ञान)	53, 91
18.	श्री रतन लाल डागा	प्रगतिशील किसान	57
19.	डॉ. बसन्त कुमार माथुर	वरिष्ठ वैज्ञानिक (पशु पोषण)	65
20.	श्री आलोक चन्द माथुर	प्रशिक्षण सहकर्ता (पशु चिकित्सा)	65
21.	डॉ. प्रहलाद राय कोठारी	सहायक निदेशक अनुसंधान (जनन द्रव्य), रा.कृ.वि.वि., बीकानेर	71
22.	डॉ. मनजीत सिंह	प्रधान वैज्ञानिक (आनुवंशिक एवं कोशिकानुवंशिकी)	71,75,111,115,119,127

23	डॉ. अजीत सिह शेखावत	सहायक प्राचार्य (पादप प्रजनन), रा.कृ.वि.वि., बीकानेर	71
24.	डॉ. प्रनव कुमार राय	वरिष्ठ वैज्ञानिक (पादप प्रजनन)	75
25.	डॉ. सज्जन सिंह राव	वरिष्ठ वैज्ञानिक (शस्य विज्ञान)	75
26.	डॉ. खेमचन्द	वरिष्ठ वैज्ञानिक (कृषि अर्थशास्त्र)	75
27.	डॉ. सुभाष कुमार जिन्दल	प्रधान वैज्ञानिक (पादप प्रजनन)	75
28.	डॉ. सुरेश कुमार	प्रधान वैज्ञानिक (आर्थिक वनस्पति विज्ञान)	83, 97
29.	डॉ. फरजाना परवीन	सहअनुसंधानकर्ता	83, 97
30	डॉ. पुरखा राम मेघवाल	वरिष्ठ वैज्ञानिक (बागवानी)	87, 131
31.	डॉ. हामिद अली खान	प्रधान वैज्ञानिक (कार्बनिक रासायनीकी)	95
32.	डॉ. लक्ष्मीनारायण हर्ष	प्रधान वैज्ञानिक (कृषि वानिकी)	95, 101
33.	डॉ. जीवन चन्द्र तिवारी	वरिष्ठ वैज्ञानिक (कृषि वानिकी)	101
34.	डॉ. सत्यवीर	प्रधान वैज्ञानिक (कीट शास्त्र)	107
35.	डॉ. नन्दलाल व्यास	प्रधान वैज्ञानिक (पादप व्याधि)	111,115,119,125,127
36.	डॉ. राज नाथ प्रसाद	वरिष्ठ वैज्ञानिक (बागवानी)	135
37.	डॉ. अमतुल वारिस	वरिष्ठ वैज्ञानिक (कृषि प्रसार)	135
38.	श्रीमती सविता सिंघल	प्रशिक्षण सहायक (गृह विज्ञान)	135
39.	डॉ. महेन्द्र प्रताप सिंह	प्रधान वैज्ञानिक (कीट शास्त्र)	153
40.	डॉ. मोहम्मद शरफुद्दीन खान	प्रधान वैज्ञानिक (पशु जैव रासायनीकी)	159
41.	डॉ. नवरत्न मल नाहर	प्रधान वैज्ञानिक (भौतिक शास्त्र)	165, 169
42.	डॉ. पीयूष चन्द्र पाण्डे	प्रधान वैज्ञानिक (भौतिक शास्त्र)	169

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान

(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली)

जोधपुर – 342 003 (राजस्थान)